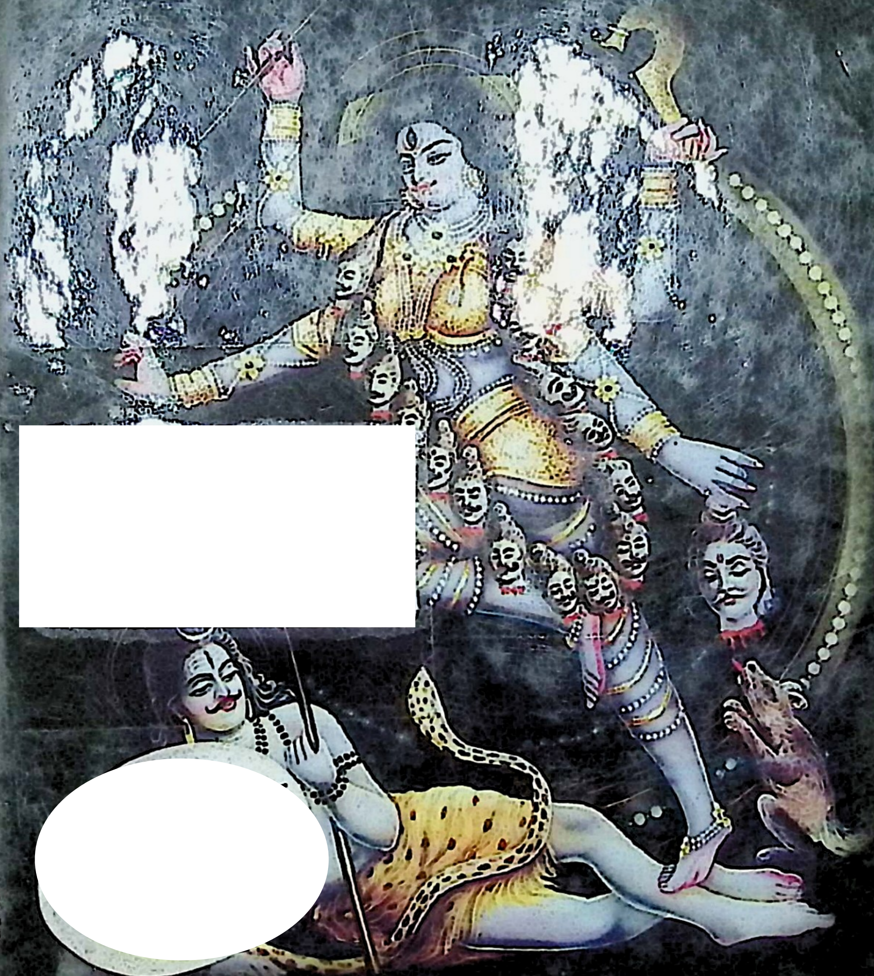
कालीतत्त्वम्

KĀLĪTATTVAṂ



सम्पादक एवं टीकाकार

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी

Tantra





नवशक्ति ग्रन्थमाला—६

कल्याणी हिन्दी टीका सहित

श्रीमद्राघवभट्टकृत

कालीतत्त्वम्

सम्पादक/टीकाकार

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी



नवशक्ति प्रकाशन

चौकाघाट, वाराणसी

२००८ ई.

प्रकाशक :
नवशक्ति प्रकाशन
जे० १३/२४ के० चौकाघाट, वाराणसी-२
दूरभाष : ०५४२-२२०२२३७, ०९९५६०१४७०४
ई-मेल : navsaktiprakasan@sify.com

प्रथम संस्करण : २००८ ई.
मूल्य : २५०/-

I.S.B.N. 81-87904-08-9

अक्षर विन्यास :
न्यूमाप्रॉस कम्प्यूटर्स
चौकाघाट, वाराणसी-२
मो. ०९८३८९२७०९५

मुद्रक :
प्रभा प्रेस
चौकाघाट, वाराणसी-२
दूरभाष : ०९८३८९२७०९५

Navshakti Granthmala - 6

With Kalyāṇī Hindī Tīkā

KĀLĪTATTVAṂ

By

Śrīmada Rāghavabhatta

Edited & Translated

By

Acharya Mrityunjay Tripathi

NAVSHAKTI PRAKASHAN
CHOUKAGHAT, VARANASI-221002
2008

Published By :
Navshakti Prakashan
J. 13/24 K. Choukaghat, Varanasi
Phone : 0542-2202237, 09956014704
E-mail : navsaktiprakasan@sify.com

First Edition : 2008
Price : Rs. 250/-

I.S.B.N. 81-87904-08-9

Composed By :
Numaproce Computers
Choukaghat, Varanasi-2
Mobile : 09838927095

Printed By :
Prabha Press
Choukaghaṭ, Varanasi-2
Phone : 09838927095

प्रकाशकीय

कालीतत्त्वम् जैसा कि नाम से ही बोधगम्य है, यह ग्रन्थ भगवती-कालिका की उपासनाविधि सम्बन्धी एक प्रायोगिकग्रन्थ है। जिस प्रकार वरिवस्यारहस्य तथा भुवनेश्वरीरहस्य, श्रीकुलअर्चाविधान के प्रतिपादक ग्रन्थ हैं उसी के समतुल्य श्यामारहस्य तथा श्रीमद्राघवभट्टकृत यह ग्रंथ, कालीतत्त्व जो नामान्तर से कालीरहस्य ही है एवं कालीकुल अर्चाविधान का प्रतिपादक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ, रत्नों से पूरित रत्नमंजूषा है जो काली पूजकों के लिये अमूल्य हैं। इस ग्रन्थ के प्रणेता श्रीभट्ट को कोटिशः नमन करता मैं, इसके कल्याणी टीकाकार तथा सम्पादक आचार्य श्रीमृत्युञ्जयत्रिपाठी का भी हार्दिक आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये नवशक्ति प्रकाशन का चयन किया तथा हमारे शाक्तसाहित्य सेवा सम्बन्धीसंकल्प को पूरा करने में श्रीबृहद्देवीसूक्तम्, महाभागवतउपपुराण, त्रिकूटारहस्यम् तथा कालिकापुराणम् के बाद एक अन्य पड़ाव प्राप्त करने में सहयोग दिया।

लोकेश कृष्ण त्रिपाठी



अपनी बात

मातः सर्वमयी प्रसीद परमे विश्वेशि विश्वाश्रये ,
त्वं सर्वं नहि किञ्चिदस्ति भुवने तत्त्वं त्वदन्यच्छिवे ।
त्वं विष्णु गिरिशस्त्वमेव नितरां धातासि शक्तिः परा ,
किं वर्ण्यं रहस्यं त्वचिन्त्य-चरिते ब्रह्माद्यगम्यं मया ।।

परासत्ता का प्रभाव, प्राणिमात्र की प्रज्ञा का प्रारम्भ से ही प्रमथन करता रहा है। उसका नाम-रूप चिन्तन, दर्शन की अनेक विधाओं तथा साधना की विविध पद्धतियों का जनक रहा है। इसके लिङ्गनिरूपण में विद्वज्जन् वैमत्य ग्रस्त रहे हैं किन्ही ने उसे पुरुष, किन्ही ने स्त्री तो कुछ ने उसे नपुसंक कहा है। किन्तु वस्तुत: वह एक नाम-रूप लिङ्गातीत सत्ता है जिसके द्वारा सब कुछ संचालित है किन्तु स्वयमेव भासमान वह सत्ता और ऊर्जा का आदिम बिन्दु है इसीलिए श्रुति ने नेति-नेति कहकर अपने चिन्तन को विराम देने का प्रयत्न किया है।

उसका आकार मूलत: बिन्दु या शून्य ही है, जिसका पहला मूर्तरूप तार या प्रणव रूप में दिखाई देता है। यही समस्त शास्त्रों का आदि श्रोत है। आगम-शास्त्र बिन्दु को मूलसत्ता का प्रतीक मानते हैं तो निगम-शास्त्र प्रणव को। ब्रह्म और परशिव उसका पुरुष नाम है तो शक्ति उसका स्त्री नाम। तत्त्वत: वह नपुंसक है। शक्ति उसका नादात्मक तथा चैतन्यरूप है जो स्वयं क्रियाशील है तथा समस्त सृष्टिक्रिया की संचालिका है। स्त्रीरूप होने के कारण मातृत्व उसका स्वभव है। मार्कण्डेय पुराण उसे सर्वस्वरूपा, सर्वशक्ति समन्विता बताता है—

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति समन्विते।

—मार्कण्डेय पुराण

यही पराशक्ति, महालक्ष्मी, पराप्रकृति आदि नामों से आहूत होती है—शाक्तानन्द तरंगिणी के अनुसार उन्हें ही उमा, शक्ति, लक्ष्मी, भारती, गिरिजा, अम्बिका, दुर्गा, भद्रकाली, चण्डी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, ब्राह्मी, विद्या, अविद्या, माया और प्रकृति कहते हैं—

उमेति केचिदाहुस्तां शक्तिलक्ष्मीति चापरे ।
भारतीयत्यपरे चैनांगिरिजेत्यम्बिकेति च ।।
दुर्गेति भद्रकालीति चण्डी माहेश्वरी तथा ।
कौमारी वैष्णवी चैव वाराहैन्द्रीतिचापरे ।।
ब्राह्मीतिविद्याविद्येति मायेति तथ परे ।
प्रकृतिश्चापरा चैव वदन्ति परमेर्षयः ।।

यही महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती नामवाली, त्रिदेवी तथा राधा, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी तथा सावित्री नामवाली पंचप्रकृति भेदों को धारण कर नवदुर्गा, नवशक्ति, दशमहाविद्यादि भेदों को धारण करती है। पुराणों में त्रिदेवी आदि उपर्युक्त भेदों की चर्चा हुई है। जिसमें नारदीयमहापुराण महाविद्याओं को तीन देवियों का ही अवान्तर भेद मानता

है। तन्त्रशास्त्र में इनका भिन्न विभाजन मिलता है। शारदातिलक के अनुसार, परा ही वागेश्वरि है और चार, आठ, सोलह, बत्तीस, चौसठ भेदों से उसी का वर्णन हुआ है—

अम्बिका वाग्भवीदुर्गा श्रीशक्तिश्चोक्तलक्षणा ।
ब्राह्मयाद्याः पूर्ववत् प्रोक्ताः कराली विकाराल्युमा ।।
सरस्वती श्रीदुर्गोषा लक्ष्मीश्रुत्यौ स्मृतिर्धृतिः ।
श्रद्धा मेधा मतिः कान्तिरार्या षोडशशक्तयः ।।
खड्गखेटकधारिण्यः श्यामाः पूज्याः स्वलङ्कृताः ।
विद्या ह्री पुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूः पुनः ।।
रुद्रा वीर्या प्रभा नन्दा स्याद्घोषा ऋद्धिदा शुभा ।
कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपर्दिनी ।।
विकृतिर्द्दण्डिमुण्डिन्यौ सेन्दुखण्डा शिखण्डिनी ।
निशुम्भशुम्भमथिनी महिषासुरमर्दिनी ।।
इन्द्राणी चैव रुद्राणी शङ्करार्द्धशरीरिणी ।
नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी ।।
अम्बिका ह्लादिनी चैव द्वात्रिंशच्छक्तयः स्मृताः ।
चक्रहस्ताः पिशाचास्याः सम्पूज्याश्चारुभूषणाः ।।
पिङ्गलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च ।
श्रद्धा स्वाहा स्वधाऽभिख्या माया संज्ञा वसुन्धरा ।।
त्रिलोकधात्री सावित्री गायत्री त्रिदशेश्वरी ।
सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाताऽच्युतप्रिया ।।
विमला चामला पश्चादरुणी पुनरारुणी ।
प्रकृतिर्विकृतिः सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च ।।
सन्ध्या माता सती हंसी मर्द्दिका कुब्जिका ऽपरा ।
देवमाता भगवती देवकी कमलासना ।।
त्रिमुखी सप्तमुख्यान्या सुरासुरविमर्दिनी ।
लम्बोष्ठी चोर्ध्वकेशी च बहुशीर्षा वृकोदरी ।।
रथरेखाह्वया पश्चाच्छशिरेखा तथाऽपरा ।
गगनवेगा पवन-वेगा च तदनन्तरम् ।।
ततोभुवनपालाख्या ततः स्यान्मदनातुरा ।
अनङ्गाऽनङ्गमदना तथैवानङ्गमेखला ।।
अनङ्गकुसुमा विश्वरूपाऽसुरभयङ्करी ।
अक्षोभ्यासत्यबादिन्यौ वज्ररूपा शुचिव्रता ।।
वरदाख्या च वागीशा चतुः षष्टिः समीरिताः ।।

—*शारदातिलक* ७/२८-४२/२

अर्थात् एक शक्ति-परावागीश्वरी।

चतुर्शक्ति—अम्बिका, वाग्भवी, दुर्गा, श्री।

अष्टमातृका—ब्राह्मी, चामुण्डा, ऐन्द्री, वैष्णवी, माहेश्वरी, कौमारी लक्ष्मी, ईश्वरी।

षोडशशक्ति—कराली, विकराली, उमा, सरस्वती, श्री, दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति, आर्या।

बत्तीसशक्ति—विद्या, ह्री, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली, कुदू, रुद्रा, वीर्या, प्रभा, नन्दा, उषा, ऋद्धिदा, कालरात्री, महारात्री, भद्रकाली, कपर्दिनी, विकृति, दण्डिनी, मुण्डिनी, सेन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुम्भ-शुम्भ मथिनी, महिषासुरमर्दिनी, इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्द्ध-शरीरिणी, नारी, नारायणी, त्रिशूलिनी, पालिनी, अम्बिका, ह्लादिनी।

चौसठशक्ति—पिङ्गलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, माया, संज्ञा, वसुन्धरा, त्रिलोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपाश्च, स्कन्दमाता, अच्युतप्रिया, विमला, अमला, अरुणी, आरुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, संहृति, सन्ध्या, माता, सती, हंसी, मर्दिका, कुब्जिका, परा, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना, त्रिमुखी, सप्तमुखी, विमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी, रथरेखा, अपरा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, भुवनपालिनी, मदनातुरा, अनङ्गा, अनङ्ग-मदना, अनङ्गमेखला, अनङ्गकुसुमा, विश्वरूपा, असुरभयंकरी, अक्षोभ्या, सत्यवादिनी, वज्ररूपा, शुचिव्रता, वरदा, वागीशा, असुर-विमर्दिनी।

तन्त्रालोक में महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त ने शक्ति के निम्नलिखित भेद बताये है—

श्रीसार शास्त्रे चाप्युक्तं मध्य एकाक्षर ।
पूजयेभैरवात्माख्यां योगिनी द्वादशावृताम् ।।
ताभ्य एव चतुर्षष्टि पर्यन्तं शक्ति चक्रकम् ।
एकारतः समारभ्य सहस्रारं प्रवर्तत ।
तासां कृत्यभेदेन नामानि बहुधागमे ।।

—तन्त्रालोक तृतीयाह्निक २५३-२५५

मुख्य वागीशी एकाररूपा पराशक्ति है जो १२ कालिकाओं से घिरी है। यहाँ चौसठ की संख्या तक शक्ति भेद है तथा आगमों में कृत्य भेद से इनके अनेक नाम बताये गये हैं।

शास्त्रों में देवी, प्रकृति, मातृका, दुर्गा, शक्ति, महाविद्या, योगिनी आदि अनेक उपाधियों से शक्त्यर्चन की परम्परा प्रचलित है। तथापि दुर्गार्चन और महाविद्यार्चन क्रम विशेषतः प्रचलित हैं। निगम में दुर्गार्चन का प्रचलन है तो आगम में महाविद्यार्चन का। महाविद्याक्रम में काली, तारा, षोडशी, बगला, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, मातङ्गी, कमलात्मिका, नामक दशमहाविद्याएँ विशेष प्रचलित हैं।

मुण्डमालातन्त्र, चामुण्डातन्त्र, शक्तिसङ्गमतंत्र और पौराणिक ग्रन्थों में महाविद्याओं की यही नामावली उपलब्ध है-

भैरव के मत में महाविद्या की संख्या सोलह है। उपर्युक्त नामावली में वनदुर्गा, शूलिनी, अश्वारूढ़ा, त्रैलोक्यविजया, वाराही, तथा अन्नपूर्णा के समावेश में महाविद्याओं की संख्या १६ हो जाती है। निरुत्तरतन्त्र में अष्ठारह महाविद्याओं का उल्लेख है। यहाँ प्रसिद्ध १० महाविद्याओं के अतिरिक्त ८ अन्य का उल्लेख हुआ है—अन्नपूर्णा, नित्या, महिषमर्दिनी, दुर्गा, त्वरिता, त्रिपुरा, त्रिपुटा, जयदुर्गा।

शाक्तानन्द तरंगिणी में काली, नीला, महादुर्गा, त्वरिता, छिन्नमस्तिका, वाग्वादिनी, अन्नपूर्णा, प्रत्यंगिरा, कामाख्यावासिनी, बाला, मातङ्गी, शैलवासिनी विद्याओं का उल्लेख हुआ है—

काली नीला महादुर्गा त्वरिता छिन्नमस्तिका ।
वाग्वादिनी चान्नपूर्णा तथा प्रत्यङ्गिरा पुनः ।।
कामाख्यावासिनी बाला मातङ्गी शैलवासिनी ।
इत्याद्याः सकला विद्याः कलौपूर्ण फलप्रदाः ।।

–शाक्तानन्दतरंगिणी तृतीय उ० ४०-४१

महाकालसंहिता के कामकला खण्ड में ५१ देवियों, महाविद्याओं का उल्लेख मिलता है—

आदौ ज्ञेया महालक्ष्मीस्ततो वागीश्वरी मता ।
अश्वारूढ़ा च मातङ्गी नित्यक्लिन्ना ततः परम् ।।
भुवनेशी तथोच्छिष्टचाण्डालिनी भैरवी ततः ।
शूलिनी वनदुर्गा च त्रिपुटा त्वरिताततः ।।
अघोरा जयलक्ष्मीश्च वज्रप्रस्तारिणी ततः ।
पद्मावत्यन्नपूर्णा च काली संकर्षिणी ततः ।।
धनदा कुककुटी भोगवती च शबरेश्वरी ।
कुब्जिका सिद्धिलक्ष्मीश्च बाला च त्रिपुरा ततः ।।
तारा दक्षिणकाली च छिन्नमस्ता त्रिकण्टकी ।
ततो नीलपताका च चण्डघण्टा ततः परम् ।।
चण्डेश्वरी भद्रकाली गुह्यकाली ततः परम् ।
अनङ्गमाला चामुण्डा वाराही बगलापि च ।।
जयदुर्गा नारसिंही ब्रह्माणी वैष्णवी ततः ।
माहेश्वरी तथेन्द्राणी हरसिद्धा तथोऽपि वा ।।
फेत्कारी लवणेशी च नाकुली मृत्युहारिणी ।
ततः कामकलाकालीत्येक पञ्चाशदीरिता ।।

–महाकालसंहिता कामकला खण्ड ८/२०२-२०१४

वे महालक्ष्मी, वागीश्वरी, अश्वारूढ़ा, मातङ्गी, नित्यक्लिन्ना, भुवनेशी, उच्छिष्टचाण्डालिनी, भैरवी, शूलिनी, वनदुर्गा, त्रिपुटा, त्वरिता, अघोरा, जयलक्ष्मी, वज्रप्रस्तारिणी, पद्मावती, अन्नपूर्णा, कालसंकर्षिणी, धनदा, कुक्कुटी, भोगवती, शबरेश्वरी, कुब्जिका, सिद्धिलक्ष्मी, बाला, त्रिपुरा, तारा, दक्षिणकाली, छिन्नमस्तिका, त्रिकण्टकी, नीलपताका, चण्डघण्टा, चण्डेश्वरी, भद्रकाली, गुह्य-काली, अनङ्गमाला, चामुण्डा, वाराही, बगला, जयदुर्गा, नारसिंही, ब्रह्माणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, इन्द्राणी, हरसिद्धा, फेत्कारी, लवणेशी, नाकुली, मृत्युहारिणी, कामकलाकाली।

तन्त्रकौमुदी में सत्ताईस महाविद्याएँ निर्दिष्ट है—

काली तारा भैरवी च षोडशी भुवनेश्वरी ।
अन्नपूर्णा महामाया दुर्गा महिषमर्दिनी ।।

त्रिपुरा बगला छिन्ना धूमा च त्वरिता तथा ।
मातङ्गी धनदा गौरी त्रिपुटा परमेश्वरी ।।
प्रत्यङ्गिरा महामाया भेरुण्डा शूलिनी तथा ।
चामुण्डा सर्वदा बाला तथा कात्यायनी शिवा ।
सप्तविंशति महाविद्याः सर्वशास्त्रेषु गोपिताः ।।

–तन्त्रकौमुदी

इसमें काली, तारा, भैरवी, षोडशी, भुवनेश्वरी, अन्नपूर्णा, महामाया, दुर्गा, महिषमर्दिनी, त्रिपुरा, बगला, छिन्ना, धूमा, त्वरिता, मातङ्गी, धनदा, गौरी, त्रिपुटा, परमेश्वरी, प्रत्यंगिरा, महामाया, भेरुण्डा, शूलिनी, चामुण्डा, सर्वदाबाला, कात्यायनी तथा शिवा, सत्ताईस महाविद्याएं हैं।

नारदपाञ्चरात्र में सातकोटि महाविद्याएँ तथा इतनी ही उपविद्याएँ हैं।

महाविद्याक्रम में जितनी विद्याओं की गणना हुई हो किन्तु उनमें प्रचलित दश महाविद्याएँ ही मुख्य हैं। इनमें एक की प्रमुखता रहती है जो यथानुसार आद्यापद को सुशोभित करती है–

सत्ये व सुन्दरी आद्या त्रेतायां भुवनेश्वरी ।
द्वापरे तारिणी विद्या कालौ काली प्रकीर्तिता ।।

–शाक्तानन्द तरंगिणी तृतीय उ० ४२-४४

काली—यह काली कलिकाली में महाविद्याक्रम में आद्यापदविभूषित पराशक्ति का आधिकारिक रूप है। कहा भी गया है—

कलौकाली कलौकाली कलौकाली तु केवला।

मानव शरीर में दक्षिणकर्ण की अधिष्ठी ये ही हैं। इनका अवन्तीदेश (उज्जैन) आविर्भाव स्थान, आविर्भावरात्रि फाल्गुनकृष्ण एकादशी तिथि महारात्रि है। पुराणों में फाल्गुनशुक्ल द्वादशी को विष्णु-मधुकैटभ युद्धप्रसङ्ग में महाकाली का प्राकट्य हुआ था। ऐसा कहा गया है।

द्वादश्यां फाल्गुनस्यैव शुक्लायां समभून्नृप ।
महाकालीति विख्याता शक्तिस्त्रैलोक्यमोहिनी ।।

नामकरण—इस पहली विद्या के नामकरण पर भी अनेक रूपों में विचार हुआ है। तन्त्रालोककार आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार—

परामर्शात्मकत्वेन विसर्गाक्षेप योगतः ।
इयत्ता कलानाज्ज्ञानाततः प्रोक्ताः कालिकाक्वचिन् ।।

–तन्त्रालोक तृतीय आह्निक-२५२

परामर्श, विमर्श, क्षेप, इयत्ता का आकलन, संहार, गणना और ज्ञान इन अर्थों में कला धातु का प्रयोग होता है। कल धातु के कल (भ्वादिग गण शब्दों संख्याने कल) गतौ संज्ञाने, कलक्षेपे, कलगतौ (चुरादि प्रकरण) कथादौ आदि धात्वर्थ के अनुसार कल शब्द के विविध अर्थ निकल रहे हैं।

इसप्रकार सर्वपरामर्श करने वाली सृष्टि निर्मात्री, सर्ग का विक्षेप करने वाली, सृष्टि का संहार करने वाली, विश्व की गणना करने वाली और सर्वदाशक्ति का नाम

कालिका कहा गया है। कल शब्द के योग से कालिका का या काली शब्द की उत्पत्ति बताई गई है।

काल+ई कालः—कलयति इति कालः, लोकानां अन्तकः कालः।

अन्तकः कालः के अनुसार गणना और अन्त करने वाली सत्ता का नाम काल हैं यही अपने व्यापक रूप में महाकाल हो जाता है जो काली महाविद्या का भैरव है। जिसका अवस्थान उज्जैन है। इसने समस्त जगत् को पराधीन किया हुआ है। ई=शक्ति। उसकी भी नियन्त्रिणी होने के कारण काली शब्द की व्युत्पत्ति काली को काल नियन्त्रिणी सिद्ध करती है, इसी से इनका साधक कालजयी हो जाता है। उसकी सर्वत्र सर्वदा अबाधगति हो जाती है।

क्+आ+ल्+ई=काली, क ब्रह्मा, आ विष्णु, ल=इन्द्र

इन तीनों की नियामिका काली। क जलतत्त्व ल=पृथ्वीतत्त्व रूपा शक्ति, कालीका, का+अली का, पराशक्ति का उससे परिचय कराने वाली, उसी की सहायिका शक्ति काली।

भक्तों के सर्वस्व देने को उद्यत तथा का क्या, ली लेगा इसका सतत् उद्घोष करने वाली शक्ति, काली।

उत्पत्ति की दृष्टि से सृष्टि से आरम्भ में महालक्ष्मी के तमोंऽश से सृजित् महाशक्ति महाकाली। मार्कण्डेयपुराण के अनुसार कौशिकी अवतार के पश्चात स्थितशक्ति रूप कालिका या काली, चण्ड-मुण्डवध में कौशिकी की सहायिका शक्ति, काली कही गई है।

काली के भेद—तोडलतन्त्र में काली के ८ भेद, महाकालसंहिता में ९ भेद तथा तन्त्रालोक में १२ भेद बताये गये हैं—

दक्षिणकालिका सिद्धकालिका गुह्यकालिका।
श्रीकालिका भद्रकाली चामुण्डाकालिका परा।
श्मशानकालिका देवी महाकालीतिचाष्टधा।।

—तोडलतन्त्र ३, १८-१९

दक्षिणकाली, सिद्धकाली, गुह्यकाली, श्रीकाली, भद्रकाली, चामुण्डाकाली, श्मशानकाली, महाकाली ८ भेद।

काली नव विधा प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
आद्या दक्षिणकाली सा भद्रकाली तथापरा।।
अन्याश्मशानकाली च कालकाली चतुर्थिका।
पञ्चमी गुह्यकाली च पूर्वं या कथिता मया।।
षष्ठी कामकलाकाली सप्तमी धनकालिका।
अष्टमी सिद्धिकाकाली नवमी चण्डकालिका।।

—महाकालसंहिता कामकला खण्ड पटल १, ४२-४४

इस दृष्टि से आद्या, दक्षिणकाली, भद्रकाली, श्मशानकाली, काल-काली, गुह्यकाली, कामकलाकाली, धनकाली और सिद्धिकाली में नौ भेद हैं।

सृष्टिस्थितिश्च संहारो रक्तकाली तथैव च ।
स्वकाली यमकाली च मृत्युकाली तथैव च ।।
रुद्रश्च परमार्कश्च मार्तण्डश्च ततः परः ।
कालाग्नि रुद्रकाली च महाकाल्यभिधा पुनः ।।
महाभैरवशब्दश्च घोरशब्दस्ततः परः ।
चण्डकालीपदंश्चान्ते त्रयोदश उदाहृताः ।।

–तन्त्रालोक ४ आह्निक १४८ की व्याख्या

तन्त्रालोके के अनुसार सृष्टिकाली, स्थितिकाली, संहारकाली, रक्तकाली, स्वकाली, यमकाली, मृत्युकाली, रुद्रकाली, परमार्ककाली, मार्तण्डकाली, कालाग्निरुद्रकाली, महाकाल काली, महाभैरवचण्डोग्रघोरकाली, ये १३ काली बताई गई हैं। एक स्थान पर इनकी संख्या १२ बताई है। प्रसिद्धपौराणिकश्लोक—

जयन्ती मङ्गलाकाली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवाधात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते।।

मंगलाकाली का भी उल्लेख करता है। 'तन्त्रालोक' के भेद, क्रमसाधना के विविधस्तरों के सूचक हैं। 'महाकालसंहिता' का कालिकाभेद, काली साधकों में विशेष लोकप्रिय है। वैदिक साधकों में महाकाली तथा तांत्रिक साधकों में दक्षिणकाली आदि भेदों का विशेष प्रचलन हैं।

कालीसाधक—श्री गदाधर भट्टाचार्य, रामप्रसाद कमलाकान्त, रामकृष्ण परमहंस, तैलंग स्वामी, महेशठक्कुर, दरभंगा नरेश रामेश्वर सिंह आदि ख्यातिलब्ध काली साधक हुए है।

काली की उपासना से सम्बद्ध उपनिषद्सूत्र, मूलतन्त्र, सारसंग्रह, संहिता, स्वतन्त्र निबन्ध तथा पूजा पद्धतियाँ उपलब्ध है। काली उपनिषद्कालज्ञान, अपने कालोत्तर परिशिष्ट सहित काली उपासना का प्रसिद्ध ग्रन्थ रहा है। जिसका उल्लेख क्षेमराज ने साम्बपञ्चाशिका की टीका में किया हैं कालीकुलक्रमार्चन, भद्रकालीचिन्तामणि, कालीकल्प कालीसपर्या क्रमवल्ली, काली विलासतन्त्र, कालिकार्णव, कालीकुलसपर्या, कालिकार्चामुकुर, शक्तिसंगमतन्त्र का कालीखण्ड, व्योमकेशसंहिता, भैरवीतन्त्रिका कालीमाहात्म्य, महाकालसंहिता का कामकला तन्त्र, चिद्गगन चन्द्रिका, पुरश्चर्यार्णव का नवमखण्ड, विश्वसारतन्त्र, तन्त्रसार, प्राणतोषिणी, शाक्तप्रमोद, तत्राह्निक, कालीयामल, श्यामारहस्य, कालीपरा, कामेश्वरीतन्त्र, कौलावली, कुलचूडामणि, कालीकालामृत कुलमुक्तिकल्लोलिनी, कौलिकार्चनदीपिका, कुमारीतन्त्र, कुब्जिकातन्त्र, कालीकल्पद्रुवल्लरी तथा अनेक काली नित्यार्चन पद्धतियाँ कालिका रहस्य नाम से आधुनिक विद्वानों के पद्धति रचित ग्रन्थ, देवीपुराण, महाभागवत, कालिकापुराण, मार्कण्डेयपुराण, देवीभागवत, बृहद्धर्मपुराण में भी कालीतत्त्वं की चर्चा मिलती है किन्तु इस दृष्टि से गोपीनाथ कविराज ने अपनी तान्त्रिक साहित्य की भूमिका में शारदातिलक के टीकाकार श्री राघवभट्ट कृत कालीतत्त्वनामक ग्रंथ का उल्लेख किया है। जिसका कभी उत्तर भारत के काली साधकों में विशेष प्रचलन था।

कालीतत्त्वकार श्रीराघवभट्टः—तीन लोक से न्यारी नगरी काशी, 'ज्ञान रखानि अद्य हानि' कर रही है। 'काश्यते प्रकाश्यते इति काशी' इस व्युत्पत्ति के अनुसार

काशी स्वयं ज्ञानरूप है। वह विष्णु की प्रिय तथा शिवस्वरूप नगरी है जो अपने सेवकों, निवासियों को, ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न तथा आगन्तुकों को अपने निकष पर कसकर उनके व्यक्तित्व को निखारती रही है। यहाँ की मही इतनी मनोरमा है कि आगन्तुक एकबार इसके अञ्चहा में आने पर इसी का हो जाता है। काशीखण्ड के अनुसार दिवोदास के दोषदर्शन हेतु पधारे ब्रह्मा, विष्णु, गौरी, योगिनी, यक्षगण, गणेश जो भी देव यहाँ आये वे यहीं के हो गये। काशीवास, ज्ञानप्राप्ति आदि अनेक उद्देश्यों से देशान्तर से आने वाले विद्वज्जनों ने यहाँ रहकर वैदिक लौकिक एवं तान्त्रिक साहित्य की अनुपम सेवा की और वे आये कहीं से हों किन्तु काशी के होकर रह गये। इन्होंने वेद, पुराण, न्याय-वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, सांख्ययोग, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण के साथ-साथ तान्त्रिक वाङ्मय को भी अपनी साहित्य सेवा से समृद्ध किया। इनमें आचार्य महीधर का नाम शीर्षस्थ है जिन्होंने शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता का वेददीप भाष्य जो कालान्तर में उन्हीं के नाम से ख्यात हुई की तथा १६४५ विक्रमी में मन्त्रमहोदधि नामक आकर तन्त्र ग्रन्थ की रचना की। विद्वानों श्रीराघवभट्ट, सुन्दराचार्य, जगदानन्द परमहंस, प्रेमनिधि पन्त एवं उनकी पत्नी प्राणमञ्जरी, भास्करराय भारती, उमानन्दनाथ, शङ्करानन्दनाथ, विश्वेश्वर पाण्डेय, नीलकण्ठ आदि अन्य तन्त्रशास्त्रीय ख्यात विद्वानों में महीधर, राघवभट्ट एवं भास्करराय की महत्त्रयी के श्रीराघवभट्ट एक सुदृढ़ कड़ी थे। यद्यपि प्रपञ्चसार तथा सौन्दर्यलहरी जैसे तान्त्रिकग्रन्थों के रचयिता आदि शङ्कराचार्य की शिवशक्ति दीक्षा काशी में विश्वेश्वर एवं भद्रकाली द्वारा हुई थी। तथापि तन्त्र शास्त्रीयविद्वानों में राघवभट्ट का नाम सर्वाधिक प्राचीन एवं उल्लेखनीय हैं साहित्य एवं तन्त्र में उनकी रचनाएँ प्रख्यात हैं। इन्होंने अभिज्ञान शाकुन्तल, उत्तररामचरित, मालतीमाधव की टीका लिखी तो शारदा तिलक जैसे-महनीय तांत्रिकग्रन्थ की पदार्थादर्श टीका के साथ कालीतत्त्व तथा दुर्गातत्त्व नामक उपासना सम्बन्धी तन्त्रग्रन्थों की रचना भी की।

श्रीराघवभट्ट ने पदार्थादर्श के अन्त में अपना जो परिचय दिया है उसके अनुसार महाराष्ट्र देश (प्रान्त) के गोदावरी तटपर वर्तमान नासिक क्षेत्र के मूल निवासी थे उनके पितामह का नाम श्रीरामेश्वरभट्ट तथा पिता का नाम श्रीपृथ्वीधरभट्ट था। यह भट्टवंश अध्यनाध्यापनदृष्टया तथा विद्वदृष्टया प्रख्यात था। इनके पिता कालान्तर में सपरिवार काशी पधारे और अन्त तक यहीं रहे। यहीं राघवभट्ट का जन्म हुआ। ये वेदान्त, न्याय, नय, गणित, साहित्य, आयुर्वेद, कामशास्त्र, संगीत, आगमशास्त्र के पारङ्गत, श्रेष्ठविद्वान् थे तथा कलाकुशल भी थे। उनके व्यक्तित्व में विद्वत्ता एवं कला कुशलता दोनों का मणिकाञ्चन संयोग था।

तस्माद् राघवभट्ट एष समभूद्वेदान्त संन्यायवित्।
ख्यातो भट्टनये समस्तगणिते साहित्यलाकरः।।
आयुर्वेदनिधिः कलासुकुशलः कामार्थशास्त्रे गुरुः।
संगीते निपुणः सदागमनिधः पारं प्रयासतः परम्।

—शारदातिलक पदार्थादर्शटीका की परिचय २४/६

कालीतत्त्व के अन्तिम तत्त्व में आत्मपरिचय देते हुए उन्होंने लिखा हैं—

कुलापथि कुलतन्त्रे गुप्तभावैकभाजा
गुरुभजनपरेण श्रीमताराघवेण ।
विविधविधिगरिष्टं पुस्तकं गण्डपस्तं
प्रकट कुलामकारि प्रीतये कौलिकानाम् ।।

–कालीतत्त्व २१/३३

उनका जन्म विविध गरिष्ट पुस्तकों को गण्डस्थ किये विद्वान् कुल में हुआ था। वे स्वयं मार्गानुयायी, श्रेष्ठकौल तन्त्रों के गुप्त भावों को धारण किये हुये गुरु भजन में रत थे। ये जिसके विशेष आराधक थे उसका कुछ अनुमान इनके ग्रन्थों के मङ्गलाचरण या ग्रंथान्त में आत्मपरिचय में व्यक्त भावों से ही लगाया जा सकता है। यद्यपि इन्होंने अपने को कौल कहा है तथापि इनके इष्ट भगवान् शिव ही हैं जैसा कि इनके शारदातिलक के पदार्थादर्श के मङ्गलाचरण में श्रीकण्ठ से प्रार्थना की गई है। कालीतत्त्व के मंगलाचरण में भी शिव के मुखारविन्दानुरागी भवानी के कटाक्षों की ही कृपायाचना की गई हैं शारदा तिलक में भवानी के ऐश्वर्य की ही याचना है। इसप्रकार पूजा चाहे जिसकी करें, याचना वे शिवा कृपा की ही करते है। शारदातिलक की टीका के परिचयांश में उन्होंने अपने को स्मार्त साधक सिद्ध किया है—

श्री दुर्गे गणनायक ग्रहगुरो गोविन्द गौरीपते ।
युपमानर्थय आनतेन शिरसा सोऽहं प्रबद्धाञ्जलि ।।

यहाँ भी सभी देवता दुर्गा, गौरीपति के मध्यर्द् ही सम्बोधित हैं। **राघवभट्ट की तान्त्रिक कृतियाँ—**

(१) शारदातिलक की पदार्थादर्शटीका—'श्री लक्ष्मण देशशिकेन्द्र' विरचित शारदातिलक अपने वर्ण्य विषय की दृष्टि से शङ्कराचार्य प्रणीत प्रपञ्चसार से समता रखता है। इसके कतिपयभाष्यों के रहते हुये भी श्री राघवभट्ट ने सम्प्रदायानुसारी पदार्थादर्शटीका के माध्यम से इसके विषम स्थलों को सहजगम्य बनाने का प्रयास किया है। यह टीकाकार्य पौष शुक्ल रवि तिथि सप्तमी संवत् १५५० वैक्रमी को काशी में सम्पन्न हुआ था। पं० बलदेव उपध्याय ने १५ दिसम्बर १४९३ ई० माना है।

(२) कालीतत्त्व—कालीतत्त्व की उपलब्ध प्रतिलिपि मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी संवत् १७६० वैक्रमी की है। इससे सिद्ध होता है कि शारदाटीका के २१० वर्षो बाद के समय में यह ग्रन्थ प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। इसमें काली की तान्त्रिक पूजा प्रतिपादित है।

(३) दुर्गातत्त्व—यह भी राघवभट्ट की कृति बताई जाती है किन्तु इसकी प्रति सर्वसुलभ नहीं है। संभवतः इसमें दुर्गा की तान्त्रिक उपासना का वर्णन हो।

काल—आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इनकी कृतियों को ध्यान में रखकर, इनका काल १४७५-१५५० ईस्वी तक मानना तर्क सम्मत माना है।

व्यक्तित्व—राघवभट्ट, विद्वान् साहित्यकार ही नहीं अपितु उच्चकोटि के कौलसाधक भी थे। अपने कालीतत्त्व के प्रारम्भ में उन्होंने कुलनाथगणों के साहचर्य, साधको, पन्थगुरुओं, उपनिषद् स्तोत्र, निबन्ध तथा तन्त्र के ज्ञान की बात स्वीकार की है जो एक अच्छे कौलसाधक की स्वाभाविकवृत्ति है।

वें में शक्ति साधना के भावत्रयों का विचार, १७ वें में कुमारीपूजनविधि, १८ वें माला का १९वें में स्तोत्र जो कवच के रूप में जपकर्ता साधक द्वारा करणीय है, २०वें तत्त्व में सम्बन्धितमन्त्रविवेक के अन्तर्गत काली के विविध भेदों या उनसे सम्बन्धित मन्त्र, ध्यान का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ का अन्तिम एवं इक्कीसवाँ तत्त्व कालीसाधना के महत्त्व तथा कालीतत्त्वज्ञान की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है।

इसप्रकार यह लघुकायग्रन्थ अवान्तर में शक्तिसाधना से सम्बन्धित पुरश्चर्णार्णव तथा महाकालसंहिता जैसे-विशालकाय ग्रन्थों को भी अपने में बीजवत् समाहित किये हुए है। इस ग्रन्थ की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह एक तत्त्ववेता साधक की कृति है जिसके २१ तत्त्व तन्मात्रा, महाभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियपञ्चकों सहित सांख्य के २१ तत्त्वों के प्रतीक हैं। जिनका विधान, ज्ञान, एवं साधन कर व्यापक सबुद्ध अन्त: करण से कालिकाम्बा की साधना में सिद्धि प्राप्त करता है।

आभार—शक्तिपीठों में काशी द्वितीयपीठ, मध्ययुगीन विद्वत् वरेण्य साधकों में श्रीराघवभट्ट अद्वितीय साधक, उनकी यह कालजयी रचना भी तान्त्रिकसाहित्य के अनुसार कभी सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रचलित थी। जो कालान्तर में बहुविधअर्चापद्धतियों से महामेघाछन्न हो लुप्त हो रही थी। ऐसी परिस्थितियों में इस ग्रन्थरत्न की महत्ता को देखते हुये इसे कल्याणी हिन्दी टीका में समन्वित कर प्रकाशित करने का नवशक्तिप्रकाशन के अधिकारियो ने निर्णय लिया। एतदर्थ शाक्त परम्परावैभवविभूषित वाराणसी के गोवर्धनसराय निवासी द्विवेदीकुलावतंश गुरुदेव 'श्री आद्याप्रसादद्विवेदी' ने अपने पैतृकसंग्रह से अपने अनुजद्वय 'श्री अभय कुमार द्विवेदी' और 'श्री अजय कुमार द्विवेदी' के सहयोग से इसकी दुर्लभप्रति तथा आशीर्वाद युक्त प्रबल प्रेरणा सुलभ कराते रहे हैं। यह वंश तो इसकार्य के मूल में सागरमंथन कालिक महाकूर्म की भाँति महत्त्व रखता है ऐसी परिस्थिति में उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन वचनातीत है। वह भावाञ्जली रूप में उन्हे समर्पित है। पूज्य गुरुदेव 'पं० केदारनाथ तिवारी' का आशीर्वाद सूक्ष्मरूप से इस कार्य की आत्मा तथा गुरुदेव काशी सुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी नरेन्द्रानन्द सरस्वती का आशीर्वाद प्राण हैं जिसके लिए सर्वत: उनको प्रणामाञ्जली प्रस्तुत करता हूँ। 'डॉ० शीतला प्रसाद उपाध्याय' ने मेरे दिव्य सहयोगी के रूप में समय-समय पर जो सहयोग प्रदान किया है इसकी निष्पत्ति मात्र आभाराभिव्यक्ति से सम्भव नहीं है। यह ग्रन्थ इतने सुन्दर रूप में प्रस्तुत हो सका इस हेतु नवशक्ति प्रकाशन के स्वाधिकारी चिरञ्जीव लोकेश कृष्ण त्रिपाठी तथा प्रभाप्रेस के स्वत्वाधिकारी गोपेश त्रिपाठी मेरे सहित कालिकाम्बा के आशीर्वाद के अधिकारी हैं। सबके अन्त में अपनी अन्त:सलिलाशक्ति प्रभा को समाहित किये यह श्यामा-शिशु सर्वतोभावेन अपनी अम्बा के चरणों में आपन्न हो इसके अध्येताओं अनुगामियों के उपयोग और गुरु निर्देश के सहयोग से साफल्यलाभ की कामना करता हूँ। इसकी त्रुटियाँ मेरी तथा सम्पन्नता मातृममता का परिणाम है।

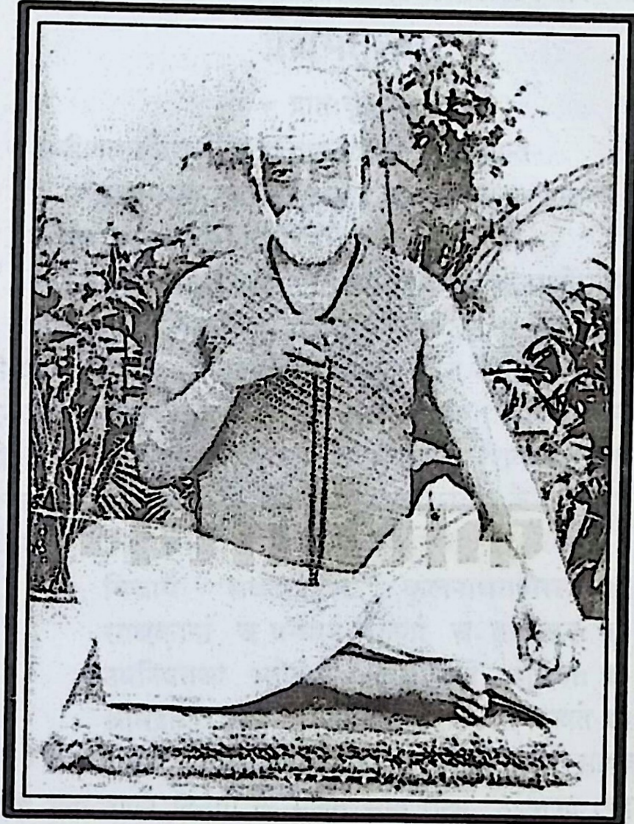
कृष्णाष्टमी २०६५ वि० — मृत्युञ्जय त्रिपाठी



विषयानुक्रमणिका



भवदीयपावनस्मृतौसमर्पितेयम् ग्रन्थाञ्जलिः



महामहोपाध्याय पं0 नागेश्वर द्विवेदी

अवतरणः-सं0 1921 तिरोधान सं0 1992

श्रीमद्राघवभट्टकृत

कालीतत्त्वम्

॥ क्रीं कालिकायै नमः ॥

श्रीराघवभट्टकृतकालीतत्त्वस्य कल्याणीटीकेयं प्रारभ्यते।

प्रथमतत्त्वम्

* प्रातःकृत्यम् *

उन्मीलन्नवनीरजालि विगलन्माध्वी कलुध्वान्त-
रभ्रामयन्मांसलमभूषमहद् घटा व्यस्ताः समस्ता इव ।
शंभोराननपंकजेषुपरितो द्रागुत्पतंतस्तरां
निश्शेषं ममदुःकृतानि गिरिजे हन्युः कटाक्षोर्म्मयः ।।१।।

जिसप्रकार खिलते हुये कमलों की पंक्तियों से विगलित (प्रवाहित) होने वाले, माध्वीक् (मधुरस) लोभी अन्तः चित्त से उनके चारो ओर भ्रमण करने वाले भ्रमरों की, मांसल (पुष्ट, घनी), महत् (विशाल), व्यस्त (फैली हुयी) समस्त पंक्ति सुशोभित् होती हैं, उसी प्रकार शिव के मुखरूपी कमलों के चारो ओर उड़ती हुई शिवप्रिया, गिरिजा (काली) के कटाक्ष की उर्मियाँ, मेरे समस्त दुःकृत्यों (मलादि) को शीघ्रतापूर्वक नष्ट करें॥१॥

विचार्य सर्वतन्त्राणि कुलनाथगणैस्सह ।
साधकानां च पन्थानं गुरुणां च तथात्मनः ।।२।।
उपनिषत्तथा स्तोत्रं निबन्धानपि भूरिशः ।
श्रीमद्राघवभट्टेन कालीतत्त्वं वितन्यते ।।३।।

श्रीमान् राघवभट्ट के द्वारा, कुलनाथगणों के सहित साधकों, पन्थों, गुरुओं तथा अपने विचारों के सहित सभी तन्त्रों, उपनिषद् (रहस्यग्रन्थों), स्तोत्रों और इस विषय से सम्बन्धित बहुत से निबन्धग्रन्थों पर भली-भाँति विचार करके, यह कालीतत्त्वम् नामक ग्रन्थ लिखा जा रहा है॥२-३॥

* ग्रन्थ की विषयानुक्रमणी *

प्रातःकृत्यं भवेदादौ स्नानं द्वितीयकेमतम्।
सन्ध्यां तृतीयतत्त्वे वै तुरीये तर्पणंमतम् ।।४।।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ या प्रथमतत्त्व में प्रातःकृत्यों का, द्वितीय में स्नानविधि का, तृतीयतत्त्व में सन्ध्या का तथा चतुर्थ में तर्पणविधि का वर्णन किया गया है॥४॥

पूजा च पंचमे ज्ञेया शुद्धिर्द्रव्यस्य षष्ठके ।
सप्तमे कुलसम्पत्तिः पुरश्चर्याष्टमे भवेत् ।।५।।

इसके पाँचवें तत्त्व में पूजाविधि जाननी चाहिये, छठे में द्रव्यशुद्धि, सातवें में कुल-सम्पत्ति (कुलाचार), आठवें में पुरश्चरणविधि का वर्णन हुआ है।।५।।

निमित्तं नवमे ज्ञेयं देवताप्रीतिकारकम् ।
दशमे काम्यकर्माणि आचारो दशमान्तिके ।।६।।

देवताओं को प्रसन्नता देने वाले निमित्तों को नौवेंतत्त्व में, दसवें में काम्यकर्मों को, तथा दस के बाद वाले ग्यारहवें में आचारविधान जानना चाहिए।।६।।

द्वादशेस्थानपुष्पादि त्रयोदशोविधिर्बलेः ।
चतुर्दशे प्रायश्चित्तं भावः पंचदशेत्तथा ।।७।।

द्वादशतत्त्व में स्थान और पुष्पादि, तेरहवें में बलिविधान, चौदहवें में प्रायश्चित्त तथा पन्द्रहवें में भाववर्णन जाने।।७।।

षोडशे तु कुमारीणां पूजाविधिरुदीरितः ।
सप्तदशे तु मालोक्ता अष्टादशेस्तवं तथा ।।८।।

सोलहवेंतत्त्व में कुमारीपूजाविधि कही गई है। सत्रहवें में माला कही गई है तो अट्ठारहवें में स्तुतियों का वर्णन है।।८।।

ऊनविंशतिमे शान्तिर्विंशतिमे तु मन्त्रकाः ।
ततः परं रहस्यं स्यादित्यादि क्रमपद्धतिः ।।९।।

इसके उन्नीसवेंतत्त्व में शान्तिविधान, बीसवें में मन्त्रवर्णन, तत्पश्चात् इक्कीसवें में रहस्यकथन हुआ है। यही इसका क्रमविधान है।।९।।

*** गुरुध्यान ***

उत्थायोपविश्य बद्धपद्मासनः स्वशिरसि सहस्त्रदलकर्णिकायां—

प्रातः उठकर पद्मासन में बैठकर साधक, अपने मस्तिष्क में स्थित सहस्त्रारचक्र की कर्णिका में—

प्रफुल्लेन्दीवरानेत्रद्वयविराजितम् ,
शुक्लाम्बरधरं शुक्लगन्धानुलेपनं ।
श्वेतमाल्यविभूषितं वराभयकरद्वयम् ,
वामाङ्गतयास्वशक्त्यारक्तोत्पलधारिसमम् ।
ज्ञानानन्दमुदितमानसंसंध्यात्वामानसैः ।।१०।। उपचारैरभ्यर्च्च्य

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।११।।

इति नत्वा तत्र ज्ञानमयीं कुण्डलिनीं विभाव्य शाक्तं कुलगुरुं ध्यायेत्।

चन्द्रमा की भाँति, शरद्‌ऋतु के चन्द्रमा की आभावालेमुख से युक्त, खिलेहुये कमल के समान सुन्दर-दोनों नेत्रों से सुशोभित, शुक्ल-वस्त्र और श्वेत ही गन्धानुलेपन तथा माला से विभूषित, वर एवं अभय मुद्राओं से युक्त दोनों हाथों वाले, हाथों में लाल-कमल धारण की हुई वामाङ्ग में स्थित, अपनी शक्ति (पत्नी) से रत, प्रसन्नमनवाले, ज्ञानानन्दमग्नगुरु का ध्यान कर मानसोपचारों से ही उनका पूजन करे। तत्पश्चात् **अज्ञान........नमः** कहता हुआ नमस्कार करे।

मन्त्रार्थ–अपनी ज्ञानरूपी अञ्जन की शलाका द्वारा जिन्होंने अज्ञान के अन्धेरे से अन्धे हुए नेत्रों को खोला है, उन गुरुदेव को नमस्कार है। तत्पश्चात् वहीं ज्ञानमयीकुण्डलिनीशक्ति की भावना करता हुआ वह साधक, गुरुकुल (परम्परा) का ध्यान करे॥१०-११॥

तदुक्तं कुलचूडामणौ–जैसा **कुलचूड़ामणि** में कहा गया है।

मूलादि ब्रह्मरन्ध्रान्त कुलं ध्यात्वा गुरून् स्मरेत्।

मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त कुल का ध्यान करता हुआ गुरुओं का स्मरण करे।

* गुरुपरम्परावर्णन *

प्रहलादानंदनाथं च सनकानन्दमेव च ।
कुमारानंदनाथं वशिष्ठानंदनाथकम् ।।१२।।
क्रोधानंदसुखानन्दौ ध्यानानंदे ततः परम् ।
बोधानंदशुकानन्दौ ध्यायेच्चैव कुलोपरि ।।१३।।

उस कुल पर, प्रह्लादानन्दनाथ, सनकानन्दनाथ, कुमारानन्दनाथ, वशिष्ठानन्दनाथ, क्रोधानन्दनाथ तब सुखानन्दनाथ, व ध्यानानन्द पुनः बोधानन्दनाथ तथा शुकानन्दनाथ का ध्यान करे॥१२-१३॥

महारससरसोल्लोलहृदयान्घूर्णलोचनान् ।
कुलालिंगनसंभिन्न चूर्णिताशेषतामसान् ।।१४।।

महारस, महान्‌आनन्द से किंवा महारस, तीर्थास्वादन से जिन सभी के हृदय-चञ्चल, आनंदित तथा नेत्र-घूर्णित हैं, जिन्होंने कुलालिंगनयुक्त होकर कुलमार्गानुगामी होने से सम्पूर्ण अज्ञानान्धकार को चूर्ण कर दिया है॥१४॥

कुलशिष्यपरिवृतान् पूर्णान्तःकरणोद्यतान् ।
वराभययुतान् सर्वान् कुलतन्त्रार्थवेदिनः ।।१५।।

जो पूर्णअन्त:करण वाले हो, सदैव कुलशिष्यों (कौलशिष्यों) से घिरे रहते हैं। जो सभी कुलतन्त्रों के अर्थ के ज्ञाता और वर तथा अभय मुद्राओं से युक्त हैं॥१५॥

एवं कुलगुरून्नत्वा विमृश्यकुलमातृकाः ।
कुलस्थानंसमानीय स्नानार्थं तीर्थमाश्रयेत् ।।१६।।

इस प्रकार के कुलगुरुओं को नमस्कार कर, कुलमातृकाओं का विचार कर, उन्हें कुलस्थान पर लाकर स्नानहेतु तीर्थक्षेत्र का आश्रय ले, तर्पण करे॥१६॥

शाक्तं गुरुकुलं वत्स स्मृतं कुलसुखावहम् ।
रहस्यमद्भुतं योक्तं यो प्लव्यं पशुसंकटे ।।१७।।

हे वत्स! स्मरण किये जाने पर यह शाक्त (गुरुकुलपरंपरा) सुख देनेवाली तथा अद्भुतरहस्यमयी है। यह पशुसंकट से उबारने वाली और प्रयोग में लायीजाने योग्य है॥१७॥

इदं तु गुरुसंध्यानादि आवश्यकं अन्यथानिष्ट श्रवणात्–

इसप्रकार से गुरु का ध्यान करना आवश्यक है, अन्यथा अनिष्ट सुना जाता है।

तदुक्तं ततौ–कुलचूड़ामणि में ही कहा गया है।

गुरुकुलं परित्यज्य ये शाक्ताः परिसेविनः ।
तेषां दीक्षा च यागाश्च अभिचारोपकल्प्यते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलीनानाश्रयेद् गुरून् ।।१८।।

अपने गुरुकुल को छोड़ कर जो शाक्त, अन्य गुरु की सेवा करते हैं। उनकी दीक्षा, यज्ञ आदि सब कुछ अभिचारमात्र होते हैं। इसीलिए सभीप्रकार के प्रयत्नों से कुलीन (कुलमार्गानुगामी) गुरुओं का ही आश्रय लेना चाहिए॥१८॥

स्वरूपमेतस्तात्रत्य सहस्रदलकर्णिकायांऽमृतलोलीभूतंकुलं मूलाधारमानयेत्–इस रूप में वहीं सहस्रदल, सहस्रार की कर्णिका में स्थित, अमृत से विह्वलकुल को मूलाधार में ले आये।

तदुक्तं श्रुतौ–श्रुतियों में वही कहा गया है।

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे
प्रतिप्रयाणेऽमृताय मानाम् ।

अन्तः दैव्यामनुसंचरन्ती-
मानन्दवल्लीमबलां प्रपद्ये ।।१९।।

मूलाधार से सहस्रार की ओर गमन करती हुई जो अबला (कुण्डलिनीशक्ति) प्रकाशमान रहती है तथा सहस्रार से अमृतपान कर मूलाधार की ओर प्रतिगमन (वापसी) के समय अमृतायमान रहती है, मैं उस संचार करने एवं आनन्दवल्ली (सुषुम्ना) के भीतर संचरण करनेवाली उस देवी की शरण में जाता हूँ।।१९।।

उपनिषदि च—उपनिषद् में भी कहा है।

मूलाधारे स्मरेद्दिव्यं त्रिकोणं तेजसां निधिम् ।
तस्मादग्निरेखामानीय अधऊर्ध्वव्यवस्थितान् ।
नीलतोयमध्यस्थ तडिल्लेखैवभास्वराम् ।
नीवारशुकवत्तन्वीं पीताभास्वत्तनूपमाम् ।
तस्यां शिखायां मध्ये च परमोर्द्धव्यवस्थिताम् ।

मूलाधार में तेज से युक्त, दिव्यत्रिकोण का स्मरण करना चाहिए। उसमें नीचे और ऊपर की ओर तीन रेखाएँ खींच कर, जो नीले जल के मध्यस्थित हों तथा विद्युतलेखा की भाँति चमकती हों, पुआल के तार की तरह पतली, पीले प्रकाशमानशरीरवाली, उसको शिखा के मध्य में स्थित परमऊर्ध्वस्थान (सहस्रार) में व्यवस्थित करे।

अस्यामर्थः—

मूलाधार त्रिकोणान्तर्गताधोमुखं शिवलिंगवेष्टनीं सार्द्धत्रयवलयेन सुप्तां कूर्च्चेन त्रिकोणाग्नि शिखया सचेतनां कृत्वा सुषुम्ना ब्रह्मवर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रे समानीत्वा तत्रत्यसहस्रदलकमलस्थेन सदाशिवेन संगमय्य तस्याः प्रभामध्ये कुलगुरुं ध्यायेत् ।

इसका अर्थ हुआ—मूलाधार में स्थित त्रिकोण के अन्तर्गत अधोमुखशिवलिङ्ग को साढ़ेतीन फेरे से घेरे हुए सोयी, कुण्डलिनी को कूर्च-बीज से त्रिकोण अग्निशिखा से सचेत कर, सुषुम्ना के ब्रह्ममार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में लाकर, वहीं सहस्रदलकमल में स्थित सदाशिव से संगम कराकर, उसकी प्रभा के मध्य कुलगुरु का ध्यान करे।

नत्वाच—नमस्कार करके।

तत्रत्यामृतेन लोलीभूतां पुनर्मूलाधारमास्रयेत् तेनैव पथेति—वहीं स्रावित अमृतपान से लोलीभूत (चपल) कुण्डलिनी को उसी मार्ग से पुनः मूलाधार में आश्रित करे।

तदुक्तं शिवदीक्षाटीकायां–जैसा कि **शिवदीक्षाटीका** में कहा गया है।

निजगुरुं ध्यात्वा नत्वा, आज्ञागृहीत्वा मूलाधारपद्मस्थ त्रिकोणान्तर्गताधोमुखस्वयंभूलिंग वेष्टनीं प्रसुप्त भुजगाकारां सार्धत्रिवलयां, तडित्कोटिप्रभां नीवारांशुकवत्तन्वीं कुलकुण्डलिनीं कूर्चबीजेन त्रिकोण अग्निवास चैतन्यां विधाय ब्रह्मपथेन द्वादशान्तं नीत्वा तत्रत्य परमशिवे संयोज्य कुलगुरुन्ध्यायेदिति कुलगुरुध्यानं–अपने गुरु का ध्यानकर, उन्हें नमस्कार कर, उनकी आज्ञा प्राप्त कर, मूलाधार में स्थित, कमलदल के मध्यवर्तीत्रिकोण के अन्तर्गत अधोमुख, स्वयं, स्वयम्भूलिङ्ग को लपेटी हुई, सोयेहुए सर्प के आकार की, साढ़ेतीन फेरोंवाली, करोड़ोंविद्युत की प्रभावाली, नीवार के रेशे की भाँति पतली, कुलकुण्डलिनी को कूर्चबीज (हूँ) से त्रिकोण, अग्निवास से चैतन्य करके, ब्रह्ममार्ग से द्वादशान्त (सहस्रार) में ले जाकर, वहीं परमशिव से संयोग कराकर कुलगुरु का ध्यान, उसके ऊपर उसकी प्रभा में करे। यह कुलगुरुध्यान सम्पन्न हुआ।

अतएव चूडामणिरपि–यही **चूड़ामणि** भी कहती है।

कुलोपरीत्या संगच्छत इति–कुलपद्धति से आचरण करे।

ततः–

अहं देवी न चान्योस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोहमित्यात्मानं विचिंतयेत् ।।२०।।

तब, मैं देवी हूँ, अन्य नहीं हूँ, मैं ब्रह्म ही हूँ। मैं शोक का भागी नहीं हूँ। मैं सत्, चित् और आनन्दरूप हूँ, ऐसा अपने विषय में चिन्तन करे।।२०।।

प्रातः कृत्यं कृत्वावश्यमेवकार्यंकुलज्ञैर्यथा निंदा श्रवणात्–प्रातःकृत्य सम्पन्नकर, कुलज्ञ (कुलमार्ग के जाननेवाले) साधकों द्वारा करणीयकार्य अवश्यमेव किये जाने चाहिए, अन्यथा निन्दा सुनाई देती है।

अतएव यामलेप्युक्तं–इसीलिए **यामल** में भी कहा गया है।

प्रातः कृत्यमकृत्वा तु यो देवींभक्तितोऽर्चयेत् ।
तस्यस्याद्विफला पूजा शौचहीना यथा क्रिया ।।२१।। इति

प्रातःकृत्यों को बिना किये जो साधक देवी की भक्तिपूर्वक भी पूजा करता है, उसकी पूजा, वैसे ही विफल हो जाती है, जैसे शौच (पवित्रता) के अभाव में क्रियाएं विफल होती हैं।।२१।।

अथप्रयोगः–प्रयोग।

ब्राह्मेमुहूर्त्ते चोत्थाय बद्धपद्मासनः ब्रह्मरन्ध्रस्थसहस्रदलकमल-

कर्णिकायां तद्गात चन्द्रमंडलान्तःस्थं निजगुरुं वराभयकरं ज्ञानानन्द-मुदितमानसं प्रसन्नचित्तवाक्चेष्टं स्वप्रकाशरूपं स्ववामस्थितया रक्तशत्त्यालिंगितं निजगुरुं ध्यात्वा मानसैरूपचारैः सम्पूज्य।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।२२।।

ब्राह्ममुहूर्त में उठकर बद्धपद्मासन हो, ब्रह्मरन्ध्र में स्थित, सहस्त्रदलकमल की कर्णिका के अन्दर, चन्द्रमण्डल के मध्यस्थित अपने गुरु का, वर और अभय मुद्रावाले हाथों से सुशोभित, ज्ञानानन्द से प्रसन्न मन, वाणी और चित्त की चेष्टाओं से प्रसन्न, अपने ही प्रकाश से प्रकाशित तथा अपने वाम-भाग में स्थित, लालवर्ण की शक्ति के आलिंगन में बँधे हुए, अपने गुरु का मानसिक उपचारों से पूजन करे। तब **अज्ञान......गुरवे नमः**। इस मन्त्र से गुरु को नमस्कार करे॥२२॥

नमस्तेनाथ भगवन्नित्याग्निनास्तुतिः–तब हे नाथ, हे भगवन्! हे नित्य-अग्निस्वरूप स्वामी आपको नमस्कार है। इत्यादि द्वारा उनकी स्तुति करे।

मृगीमुद्रया तदाज्ञां गृहीत्वा मूलाधारस्थ त्रिकोणान्तर्गताधोमुख शिवलिंगवेष्टनी प्रसुप्तम् भुजगाकारां प्रसुप्तां शंखावृताकारेण सार्ध-त्रिवलयां तडित्कोटिप्रभां नीवारांशुकविग्रहां मूलविद्यां प्रकृतिभूतां कूर्चबीजेनत्रिकोणाग्निना सचेतनांकृत्वा सुषुम्णावर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रस्थ द्वादशस्थेन सदाशिवेन संयोज्य तत्रैव तत्प्रमाणं कुलगुरुं ध्यात्वा नमस्कुर्यात्–तब मृगीमुद्रा से उनकी आज्ञा लेकर मूलाधारस्थितत्रिकोण के अन्तर्गत, अधोमुखशिवलिंग को लपेट कर सोये हुए साँप के आकार, शंख की आवृत्तियों के आकार, साढ़े तीन फेरों में स्थित, करोड़ों विद्युत के समान आभावाली, नीवार के नोंक के समान सूक्ष्म आकारवाली, प्रकृतिरूपवाली, मूलविद्या, कुण्डलिनी का कूर्चबीज (हूँ) से त्रिकोणाग्नि से सचेतन कर सुषुम्णामार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में द्वादशान्तस्थान में स्थित सदाशिव से संयोजित कर, वहीं उसकी प्रभा में कुलगुरु का ध्यानकर, उन्हें नमस्कार करे।

यथा–

कुलामृतरसोल्लोल हृदयाघूर्णलोचनान्
कुलालिंगनसंभिन्न चूर्णिताशेषतामसान् ।
कुलशिष्यैः परिवृतान्पूर्णान्तः करणोद्यतान्
वराभययुतान्सर्वान्सर्वतंत्रार्थवेदिनः ।।२३।।

जैसे, कुलामृततीर्थ के रस से जिनके नेत्र घूर्णित हैं, जिन्होंने कुलालिंगन की सम्भिन्नता से सम्पूर्णअन्धकारों को चूर्ण कर दिया है। जो कुलशिष्यों से घिरे हुए पूर्णअन्तःकरण से उद्यत हैं, ऐसे सभी तन्त्रों के अर्थ को जानने वाले, वर और अभय हस्तमुद्राओं से सुशोभित हैं। ऐसी (गुरु के प्रति) विभावना करे।।२३।।

ऐं ह्रीं श्रीं इति सर्वतः बोधव्यम्–

ऐं ह्रीं श्रीं ऐसा सभी जगह समझते हुए (प्रयोग करते हुए)–

१. ऐं ह्रीं श्रीं प्रहलादानन्दनाथाय नमः।

२. ऐं ह्रीं श्रीं सकलानन्दनाथाय नमः।

३. ऐं ह्रीं श्रीं कुमारानन्दनाथाय नमः।

४. ऐं ह्रीं श्रीं वशिष्ठानन्दनाथाय नमः।

५. ऐं ह्रीं श्रीं क्रोधानन्दनाथाय नमः।

६. ऐं ह्रीं श्रीं सुरानन्दनाथाय नमः।

७. ऐं ह्रीं श्रीं ध्यानानन्दनाथाय नमः।

८. ऐं ह्रीं श्रीं बोधानन्दनाथाय नमः।

९. ऐं ह्रीं श्रीं शुकानन्दनाथाय नमः। कहते हुए नमस्कार करे।

प्रहलादानन्दनाथायनमः, सकलानन्दनाथायनमः, कुमारानन्दनाथायनमः, वशिष्ठानन्दनाथायनमः, क्रोधानन्दनाथायनमः, सुरानन्दनाथायनमः, ध्यानानन्दनाथायनमः, बोधानन्दनाथायनमः, शुकानन्दनाथायनमः इति नत्वा।

तत्कमलस्थामृतेन लोलीभूतां कुंडलिनी पुनस्तेनैव पथात्मूलाधारमानीय देवीरूपोहं ब्रह्मैवाहं इत्यात्मानं विभावयंस्तीर्थमाश्रयेदिति।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे प्रातःकृत्यंनाम प्रथमतत्त्वम्।।१।।

उस सहस्रार कमल में स्थित, अमृत से चंचल हुई कुंडलिनी को। उसी मार्ग से लौटा, मूलाधार में लाकर, मैं देवीरूप हूँ, मैं ब्रह्म ही हूँ, अपने आपमें ऐसी भावना करते हुये, तीर्थ का आश्रय लें।

श्रीराघवभट्टविरचित कालीतत्त्व के प्रातःकृत्य नामक प्रथमतत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई।।१।।



द्वितीयतत्त्वम्

* स्नानप्रतिपादनम् *

अथनद्यादौ गत्वा मूलेन मृत्तिकया अङ्ग विलेप्य देवीरूपं सर्व-विभावयन कुशान्गृहीत्वा मलापकर्षणं स्नात्वा मन्त्रस्नानं कुर्यात्–प्रारम्भ में नदी के उद्‌गमस्थान या तट पर जाकर मूलमन्त्र से अपने अङ्गों में मिट्टी का विलेपन कर देवीरूप की भावना करता हुआ साधक, कुशाओं को लेकर मलापकर्षणस्नान सम्पन्न करे। तत्पश्चात् वह मन्त्रस्नान करे।

तदुक्तं कुलचूडामणौ–जैसा कुलचूड़ामणि में कहा है।

* मलापकर्षणस्नान *

कृष्णरक्तहरिन्नील विविधा मम मूर्तयः ।
तत्रत्यःकुलगः शिष्यः स तद्रूपं परामृशन् ।।१।।
दिवं सर्वामथोर्व्वीचं पातालं भूतसंभवाम् ।
आचान्तः कुलदर्भेण सदर्भं कुलपुत्रकः ।।२।।
कुलपात्रे सदूर्वंच सतिलं सलिलं ततः ।
गृहीत्वा कुलदेवस्य प्रीतये स्नानमाचरेत् ।।३।।

मेरी मूर्त्तियाँ काली, लाल, हरी, नीली विविध प्रकार की होती हैं। कुलमार्ग का ज्ञाता, कौलसाधकशिष्य, साधक, वहाँ जाकर व उसके रूप का परामर्श (चिन्तन) करता हुआ, सम्पूर्ण आकाश, पृथ्वी और पाताल रूप में उसका चिन्तन करे। तब कुलदर्भ से आचमन करने के पश्चात् वह कुलपुत्रक (साधक), कुशा के सहित कुलपात्र में दूर्वा, तिल और जल लेकर कुलदेवता की प्रसन्नता के लिए मन्त्रस्नान करे।।१-३।।

कृतसंकल्पा एवादौ कुलचक्रं जलेन्यसेत् ।
कुलस्थानात्समानीय कुलमुद्रांकुशेन च ।।४।।
कुलतीर्थादि तत्रैव समावाह्य शिवात्मकम् ।
तत्तोयं च त्रिधा पीत्वा त्रिधा च प्रोक्षणं तनोः ।।५।।

इस क्रम में पहले संकल्प कर, कुलचक्र में जल का न्यास करे, तब अङ्कुशमुद्रा से कुलतीर्थादिक को कुलस्थान से लाकर (आवाहित) कर शिवस्वरूप उस जल को तीनबार पीकर, अपने शरीर का प्रोक्षण करे।।४-५।।

तीर्थावाहनमन्त्रश्रीक्रमसंहितायां—*श्रीक्रमसंहिता के अनुसार तीर्थों के आवाहन का मन्त्र*—

गंगे च यमुने चैव गोदावरिसरस्वती ।
नर्मदेसिन्धुकावेरी जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।६।।

हे गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती और नर्मदा, सिन्धु, कावेरी नाम की नदियों, आप सब इस जल में निवास करें।।६।।

कुलतन्त्रेप्याह—कुलतन्त्र में भी कहा है।

मृत्कुशान् परिसंगृह्य गत्वा जलांतिकं ततः ।
मलापकर्षणस्नानं मन्त्रस्नानमथाचरेत् ।।७।।

मिट्टी और कुशा एकत्रित कर, जल के निकट जाकर साधक पहले मलापकर्षणस्नान करे, तब मन्त्रस्नान करे।।७।।

विद्यया तन्निभश्यैवमाचमेत्याथ सा तथा—उसीप्रकार विद्या (शक्ति मन्त्र) से आचमन करे।

अथाघमर्षणतन्त्रेऽप्युक्तं—अघमर्षणतन्त्र में भी कहा है।

मूलं पठन् मूर्ध्नितोऽयं मुद्रया कुम्भसंज्ञया ।
क्षिप्त्वा वारत्रयं देवि आचमेत्साधकाग्रणी ।।८।।

हे देवि! साधकों में अग्रणी, श्रेष्ठ-साधक, मूलमन्त्र का पाठ करता हुआ कुम्भमुद्रा से तीनबार जल ऊपर उठाकर फेंकने के पश्चात् आचमन करे।।८।।

आत्मविद्या शिवैस्तत्वैस्ततो यागगृहं विशेत्—वह आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व से तीनबार आचमन करने के पश्चात् यागगृह (पूजाघर) में प्रवेश करे।

अतएव कुमारीतन्त्रे—इसीलिए कुमारीतन्त्र में भी कहा है।

आत्मविद्याशिवैस्तत्वैराचमेत्साधकाग्रणी ।
सप्तच्छिद्राणि संरुध्य ततो मज्जेत्त्रिधा सुधी ।
वह्निजायां वदेदत्र शुद्धेन पयसा प्रिये ।।९।।

हे प्रिये! ऐसा करते समय, साधको में अग्रणी, सुधीसाधक, शुद्धजल से **आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा, विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा, शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा** कहते हुए तीनबार आचमन करे, तत्पश्चात् अपने आँख, कान, नाक और मुख के सात छिद्रों को बन्दकर वह तीनबार (उन्हीं मन्त्रों) से जल में स्नान करे।।९।।

अथ प्रयोगः—अब प्रयोग कहते हैं।

देवतारूपं आत्मानं विभावयन् तीर्थांतिके गत्वा मूलेन मृत्तिकया अंगविलेपनं विधाय स्वर्णरजतमुद्रिकारूपान् कुशान् संगृह्य सर्वं देवीरूपं विभाव्य मूलमुच्चरन् मलापकर्षणं स्नात्वा आचम्य प्राणायामं कृत्वा ''ॐ अद्येत्याद्यामुकदेवताप्रीतये मन्त्रस्नानमहं करिष्येत'' इति संकल्प्य जले त्रिकोणं चक्रं विलिख्य गंगेचयमुनेचैवेत्यादि मन्त्रेण तीर्थान्यावाह्य सूर्यमण्डलादंकुशमुद्रया मूलान्ते आत्मतत्त्वाय स्वाहा, विद्यातत्त्वाय स्वाहा, शिवतत्त्वाय स्वाहेति त्रिराचम्य मूलेनत्रिः शरीरं संप्रोक्ष्य पुनर्मूलेन मृत्तिकया अंगानि विलेप्य कुम्भमुद्रया त्रिमूर्ध्निजलेनाभिषिच्य अंगुलिभिः श्रवणादि सप्तछिद्राणि संरुध्य मूलेन विद्ययाभिमन्त्र्यैव तथैव त्रिराचमेतिति।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे स्नानप्रतिपादनं नाम द्वितीयतत्त्वम् ॥२॥

स्वयं का देवतारूप में भावना करते हुए साधक, तीर्थ (जल) के निकट जाकर सर्वप्रथम मूल (इष्ट) मन्त्र से मिट्टी का अपने अंगों में लेपन करे। तब सोने और चाँदी की बनी अंगूठियों के रूप में कुलकुशा का संग्रह कर, सबके प्रति देवीरूप की भावना करता हुआ मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए, वह मलापकर्षण स्नान करे। तत्पश्चात् आचमन, प्राणायाम करके **ॐ अद्य........करिष्ये।** अमुकदेवता (अपने इष्ट देवता) की प्रसन्नता के लिए मैं मन्त्रस्नान करूँगा। ऐसा संकल्प कर जल में त्रिकोण लिखकर, उसमें **गंगे च यमुने चैव.......**आदि मन्त्रों द्वारा अंकुशमुद्रा से, सूर्यमण्डल में तीर्थों का आवाहन करे। तब वह आत्मतत्त्वायस्वाहा, विद्यातत्त्वायस्वाहा, शिवतत्त्वायस्वाहा मन्त्रों से तीनबार आचमन करे। मूलमन्त्र से तीनबार शरीर का प्रोक्षण करे। पुनः मूलमन्त्र से अंगों में मिट्टी लगाये। तदनन्तर कुम्भमुद्रा से तीनबार जल से अपने सिर पर अभिसिञ्चन करे, तब अंगुलियों से कान आदि सात छिद्रों को बन्दकर मूलविद्या से तीनबार वैसा ही अभिमंत्रित करके उसीप्रकार तीनबार आचमन करे।

श्रीराघवभट्टविरचित कालीतत्त्व में स्नानविधिप्रतिपादन नामक द्वितीयतत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई ॥२॥



तृतीयतत्त्वम्

*** सन्ध्याप्रतिपादनम् ***

अथ संध्याविधिरुच्यते तदुक्तं कुमारी कल्पे–सन्ध्याविधि कही जाती है जो कुमारीकल्प में कही गयी है।

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मण्यन्तेधरणीति च ।
वज्रिणीति पदं प्रोक्तं महाप्रतिसरेतथा ।।१।।
रक्षो द्वयं ततो हूँ फट् स्वाहेति तदनन्तरं ।
अनेनैव च मन्त्रेण रक्षां कुर्याद्विचक्षणः ।।२।।

पहले प्रणव ॐकार का उच्चारण करके मणि शब्द तत्पश्चात् धरणी वज्रिणी शब्द और महाप्रतिसरे, तदनन्तर दो बार रक्ष एवं हूँ फट् स्वाहा से युक्त **ॐ मणिधरणीवज्रिणी महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हूँ फट् स्वाहा** इस मन्त्र से बुद्धिमान साधक अपनी रक्षा करे॥१-२॥

पुनराचम्य विन्यस्य षडंगमपि मंत्रवित् ।
वामहस्ते जलं गृह्य सतिलोदकबिन्दुभिः ।।३।।
सप्तधा प्रोक्षणं कृत्वा मूर्ध्निमन्त्रं समुच्चरन् ।
अवसिष्टोदकं सर्वं दक्षे संगृह्य बुद्धिमान् ।।४।।
ईडयाकृष्यदेहान्तः क्षालितं पापसंचयम् ।
कृष्णवर्णं तदुदकं दक्षनासाभिरेचनम् ।।५।।
दक्षहस्तेन तन्मन्त्री पापरूपं विचिन्त्य च ।
पुरतो वज्रपाषाणे निक्षिपेदस्त्रमन्त्रतः ।।६।।

तत्पश्चात् मन्त्रवेत्तासाधक, आचमन करके षडंगन्यास भी सम्पन्न करे। तब वह बायें हाथ में जल लेकर, सतिलोदक बिन्दुओं से मन्त्र का उच्चारण करते हुए सातबार सिरपर प्रोक्षण करे, तत्पश्चात् अवशिष्ट, बचे हुए जल को अपने दक्षिण-हाथ में एकत्रित कर बुद्धिमान् साधक ईड़ानाड़ी द्वारा शरीर से आकृष्ट कर, क्षालन किये हुए पापसमूह से युक्त काले रंग के उस जल का दक्षिण-नाक से रेचन करे तथा मन्त्री, (मन्त्रवेत्तासाधक) उस पापरूप का चिन्तन करता हुआ, दाहिने-हाथ से उसे सम्मुख स्थित वज्रतुल्य पाषाण पर अस्त्रमन्त्र (फट्) से पटक दे॥३-६॥

अतएव यामलादिरप्याह–यही यामल आदि में भी कहा हैं।

षडंगन्यासमाचार्य वामहस्तेजलं ततः ।
गृहीत्वा दक्षिणेनैव संपुटं कारयेत्ततः ।।७।।
शिववायुजलं पृथ्वी वह्नि बीजैः त्रिधा पुनः ।
अभिमन्त्रय च मूलेन सप्तधा तत्वमुद्रया ।।८।।
निक्षिपेत्तज्जलं मूर्ध्नि शेषं दक्षे निधाय च ।
शरीरान्तः स्थितं पापं क्षालयेत्साधकाग्रणीः ।।९।।
मूलेन तिलकं कुर्यात् सन्ध्यैवं चैवकौलिकी ।
उद्दिश्य कुलगं शिष्यं कथिता देवि सुन्दरि ।।१०।।

हे देवि! हे सुन्दरि! साधकों में अग्रणीसाधक, सर्वप्रथम षडङ्गन्यास करे। तब वह बायेंहाथ में जल लेकर उसे दाहिने-हाथ से ढँक कर, शिव (हं) वायु (यं), जल (वं), पृथ्वी (लं), अग्नि (रं) बीजों से तीन बार अभिमन्त्रित कर मूलमन्त्र से तत्त्वमुद्रा से उस जल को सात बार अपने मस्तक पर छिड़के, शेष जल को दाहिने-हाथ में लेकर वह अपने शरीर में स्थित पाप का क्षालन (निराकरण) करे। तदनन्तर वह मूलमन्त्र से तिलक करे। यही कुलमार्गीशिष्य के प्रति कौलिकीसन्ध्या कही गई है।।७-१०।।

अस्यामर्थे एषैव नान्यैव, एवम्प्रकारेण मिथो व्यवच्छेदो अभिमतः सन्ध्यादीनां तथा च शाक्तं वैदिकं वा विधेयं–इसी अर्थ में, यही दूसरी नहीं। इसीप्रकार से संध्या करनी चाहिए अथवा सन्ध्या आदि का व्यवच्छेद माना गया है। उसी प्रकार शाक्त एवं वैदिक सन्ध्याएँ भी करनी चाहिएँ।

नतु समुच्चयेन न च युक्तेन ।

मिले-जुले रूप में अथवा सामूहिकरूप में न करे।

एवं विधानेन स्नानं कृत्वा तु तांत्रिकम् ।
वैदिकीं तांत्रिकीं सन्ध्यां कृत्वा तर्पणमाचरेत् ।।११।।

इस विधान से तांत्रिकस्नान करके साधक, वैदिकी और तान्त्रिकी-सन्ध्या का सम्पादन करे। तब वह तर्पण का आचरण करे।।११।।

इति शारदाटीकाविरोध इति वाच्यम्–शारदातिलक से अविरुद्ध ऐसा ही कहना चाहिए।

उक्तेनैवेत्येवकारेण वैदिकस्नानव्यवच्छेदवद्वैदिकसन्ध्या व्यवच्छेदस्था

एवेति वाच्यम्–ऊपर कहे गये प्रकार से ही। वैदिकस्नान के व्यवच्छेद की भाँति ही वैदिकसंध्या-व्यवच्छेद भी कहना चाहिए।

कौलिकं कुर्वतः कर्म वैदिकं नाभिधीयते इति बहु यामलादि वचन स्वरसेन अप्यहमिथो निरपेक्षमेव कर्म इति अथर्ववेद तस्योक्तार्थ परत्वादिति–कौलिककर्मों को करते हुए वैदिक नहीं करना चाहिए। ऐसे बहुत से यामलग्रन्थों के वचनों को समझते हुए मैं भी कहता हूँ कि कर्म-निरपेक्ष पद्धति का ही आश्रय लेने में उसकी प्रयोजन से समरसता होती है अन्यथा प्रयोजनविरुद्ध परत्वभाव आता है।

तथा च येषां यत्रेच्छातैस्तत्कर्म कर्त्तव्यमिति। साम्प्रदायिकाः कुलगमुद्दिश्य एषैव कथितेति स्वरसेन–तथा जिनका जहाँ जो अभीष्ट हो, वही कर्म करना चाहिए, सम्प्रदाय-आचार को जाननेवाले साधकों, कुलमार्गगामियों को ध्यान में रखकर, स्वरसता के कारण ऐसा ही करे, यह कहा है।

कौलिकमित्यादि वचन स्वरसेन च कौलिकं प्रति कौलिकोवान्यं नैवसन्ध्यप्रत्यति निगर्वः–कौलिक इति वचनों का तात्पर्य कौलिक के लिए कौलिकी सन्ध्या है, अन्यों के लिये नहीं यह स्पष्टरूप से समझना चाहिये।

तन्त्रान्तरेऽपि–अन्य तन्त्रों में भी कहा है।

दिनेशाय क्षिपेत्तस्मिन्वारिणा चांजलित्रयम् ।
अष्टोत्तरशतावृत्या गायत्रीं प्रजपेत्सुधी ।।१२।।

तब सूर्य को उस जल से (तीर्थावाहित जल से) तीनअंजलि जल प्रदान करे, तत्पश्चात् सुधीसाधक १०८ बार गायत्री का जप करे।।१२।।

अतएवाह कुमारीतन्त्रे–ऐसा ही कुमारीतन्त्र में भी कहा है।

*** काली-गायत्री ***

कालिकायै ततः प्रोक्ता विद्महे तदनन्तरे ।
श्मशानवासिनी ज्येष्ठा धीमहीति ततो वदेत् ।
तन्नोघोरे पदं ब्रूयात् प्रचोदयात् पठेदिति ।।१३।।
अस्याः प्रसादमात्रेण महापातककोटयः ।
सद्यः प्रलयतां यान्ति साधकास्य न चान्यथा ।।१४।।

कालिकायै तत्पश्चात् **विद्महे** उसके बाद **श्मशानवासिन्यै** को आगे रख **धीमहि** कहे तब **तन्नो घोरे** यह पद बोलना चाहिए, अन्त में **प्रचोदयात्** पढ़े। ऐसा करने से **कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरे प्रचोदयात्** यह काली-गायत्रीमन्त्र बनता है। (हम कालिका को जानते हैं, श्मशानवासिनी का ध्यान करते हैं, वह घोरा हमें प्रेरित करें)। इनके कृपामात्र से साधक के करोड़ों महापातक भी तत्काल नष्ट हो जाते हैं। इसमे संशय नहीं है।।१३-१४।।

*** माहात्म्य ***

रावणस्यवधाच्चैव रामचन्द्रोऽपिमोचितः ।
गुरुदारोपकर्षाच्च चन्द्रोऽपीह विमोचितः ।।१५।।

इसके प्रयोग से रावण (ब्राह्मण) वध के शाप से रामचन्द्र तथा गुरुपत्नीसेवन के पाप से चन्द्रमा भी मुक्त हो गये थे।।१५।।

निजकन्यापकर्षाच्च ब्रह्मा चैव विमोचितः ।
मातृवधात्परेशुधृक् मोचितोऽस्याः प्रसादतः ।।१६।।

अपनी कन्या के अपकर्षण के पाप से ब्रह्मा तथा माता के वध के पाप से परशुराम भी इसी की कृपा से मुक्त हो गये थे।।१६।।

सुरापानात्तु श्रीकृष्णो दत्तात्रेयस्तथैव च ।
एवमेषामहाविद्या गोप्तव्या देवि सुन्दरि ।।१७।।

मदिरापान के दोष से भगवान् श्रीकृष्ण एवं दत्तात्रेय भी मुक्त हुए थे। हे देवि! हे सुन्दरि! इसप्रकार की इस महाविद्या को गुप्त (सुरक्षित) रखना चाहिए।।१७।।

महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद्दशधामपि ।
सत्यं सत्यं महादेवि विमुक्तो भवति नान्यथा ।।१८।।

महान्पातक से युक्त होते हुए भी यदि साधक, इस मन्त्र को दस बार भी जपे तो हे महादेवि! मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि उन पातकों से वह मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं।।१८।।

अथ प्रयोगः (प्रयोग विधि)

''ॐ मणिधरिणिवज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुँ फट् स्वाहा'' **इति शिखाबन्धनं विधाय, मूलेन तिलकं कृत्वा, षडङ्गविन्यस्य वामहस्ते जलं गृह्य दक्ष नासाग्रमुपनीय ईडयादेहान्तर्वर्तिसमस्तपापमाकृष्य दक्षिणनासा-**

मार्गेण धृत्वा कृष्णवर्णं विचिंत्य पुरतो वज्रोपम पाषाणे निपात्य तदुपरि अस्त्रमन्त्रेण क्षिप्त्वा गायत्रीं दशधा, अष्टोत्तरशतावृत्या वा प्रजप्य नमस्कुर्वन् सूर्यमण्डले विसर्जयेदिति।।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे संध्याप्रतिपादनं नाम तृतीयतत्त्वम्।।३।।

''ॐ मणिधरिणि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुँ फट् स्वाहा।''

इस मन्त्र से शिखा बन्धन करके मूलमन्त्र से तिलक करे, तब षडङ्गन्यास कर, वामहस्त में जल लेकर दाहिनी-नाक के अगले भाग के पास ले जाकर, ईडानाड़ि से देह के भीतर स्थित पाप को आकर्षित कर, दक्षिणनासिका के मार्ग से धारण कर, कालेवर्ण का ध्यान कर, आगे स्थित, वज्रतुल्य पत्थर पर पटक कर उसके ऊपर अस्त्रमन्त्र से फेंक कर दसबार या एक सौ आठ बार जप के पश्चात् नमस्कारपूर्वक सूर्यमण्डल में विसर्जित करे।

श्रीराघवभट्टविरचित कालीतत्त्व में संध्याप्रतिपादन नामक
तृतीयतत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई।।३।।



चतुर्थतत्त्वम्

*** तर्पणविधिः ***

अथ तर्पणविधिरुच्यते—अब तर्पण-विधि कही जाती है।

तदुक्तंयामलादौ—जो यामल आदि ग्रन्थों में कही गई है।

तर्पणादौ प्रयुज्जीत तृप्यतां भैरवः पिता ।
आवाहनेन स्वपितृन् भैरवानिति कीर्त्तयेत् ।।१।।
तत्र भैरवरूपेण देवीमपि च कालिकाम् ।
तृप्यतां कालिके मातः पितरश्चैव तृप्यताम् ।।२।।

तर्पण आदि में **तृप्यतां भैरवपिता** शब्द का प्रयोग करे, अपने पितरों के आवाहन में **स्वपितृन् भैरवान्** कहना चाहिए। वहाँ स्वयं को भैरवरूप से **कालिकेमातः तृप्यतां** से कालिका देवी का भी एवं **पितरश्चैव तृप्यतां** ऐसा कहकर, इसी विधान से यथाशक्ति तर्पण करे।।१-२।।

मार्त्तण्डभैरवायेति त्रिधाचार्ध्यं प्रकल्पयेत्—**मार्त्तण्डभैरवाय** ऐसा कहकर सूर्य को तीनअर्घ्यप्रदान करे।

चूडामणावप्याह—**चूड़ामणि** में भी कहा है।

कुलसूर्याय देवाय त्रिधाचार्ध्यं प्रकल्प्यच ।
देवान् पितृनृषींश्चैव तर्पयेत्कुलवारिणा ।।३।।

कुलसूर्यदेव को तीन-बार अर्घ्य की व्यवस्था करे। तब देवता पितरों तथा ऋषियों का कुलवारि (तीर्थादि) से तर्पण करे।।३।।

आवाहने आवाहयेतित्यर्थः इदमुपलक्षणम् तत्परिवारानित्यपि बोद्धव्यं—आवाहन में **आवाहयेत्** शब्द का प्रयोग करे। यह उपलक्षण है, इसी में उनके परिवार को भी समझना चाहिए।

एवं नीलतन्त्रेप्याह—इसीप्रकार **नीलतन्त्र** में भी कहा है।

मूलान्ते तर्पयामिति स्वाहान्तं तर्पणं मतम् ।
एवं त्रिधातर्पणं तु कृत्वा पापक्षयो भवेत् ।।४।।

मूलमन्त्र के पश्चात् **स्वाहान्तं तर्पयामि** कहना ही तर्पण कहा गया है। इसप्रकार तीनबार तर्पण करने से पापक्षय होता है।।४।।

मूलान्ते चोद्यतादित्य मंडलवर्तिन्यैशिवचैतन्यमय्यै स्वाहेति तन्मनुः स्मृतः–

मूलमन्त्र के अन्त में 'उद्यतादित्यमंडलवर्तिन्यै शिवचैतन्यमय्यै स्वाहा' यह मन्त्र बताया गया है।

सूर्यार्घ्यं तु आवश्यकं अन्यथा निषेधात्–सूर्य के लिए अर्घ्य आवश्यक है। इसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

तदुक्तं नन्दिकेश्वर संहितायाम्–जैसा कि नन्दिकेश्वरसंहिता में कहा है।

यावन्नदीयते चार्घ्यं भास्कराय निवेदनम् ।
तावन्न पूजयेद्विष्णुं शंकरं वा सुरेश्वरीमिति ।।५।।

जबतक भास्कर (सूर्य) को अर्घ्य निवेदित नहीं किया जाय तब-तक विष्णु, शङ्कर या सुरेश्वरी (देवी) का पूजन न करे।

अथ प्रयोगः (प्रयोग)

प्रथमं श्री ब्रह्मानन्दभैरवस्तृप्यातामिति त्रिः सकृद्वा तथैव दिव्य-सिद्ध मानवौघान् तृप्यतामिति गुरून् तर्पयेत्।

पहले **श्री ब्रह्मानन्दभैरवः तृप्यताम्** ऐसा तीन या एकबार कहकर तर्पण करे। इसीप्रकार दिव्यओघ, सिद्धओघ तथा मानवओघ, गुरुओं को भी नाम के साथ **तृप्यताम्** कहते हुए जलप्रदान कर गुरूओं का तर्पण करे।

ततो निज गुरुं संतर्प्य असितांगादीन् भैरवांश्च जले यन्त्रं विभाव्य तत्र देवीमावाह्य स्वाहान्तं मूलान्ते श्रीमहाकालसहिते अमृते अमुके देवि माता तृप्यातामिति त्रिः सकृद् संतर्प्य, परिवारानप्येकैकांजलिना संतर्प्य, दूर्वाक्षतरक्तचंदनकुशफलपुष्पादिना अर्घ्यं विधाय, हंसः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं दत्वा सूर्यं सूर्यमण्डले देवीं विभाव्य पूर्ववदर्घ्यं कृत्वा मूलं तदगायत्रीं चोच्चार्य महाकालसहितायै अमुकदेव्यै इदमर्घ्यं स्वाहेति अर्घ्यं दत्वा देवीगायत्रीं यथाशक्त्या प्रजप्य, देव्याः दक्षिणहस्ते गुह्येत्यादि मन्त्रेण सूर्यमण्डले विसर्जयेदिति।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे तर्पणविधिः नाम चतुर्थतत्त्वम्।।४।।

तब अपने गुरु का तर्पण करे। असिताङ्गादि भैरवों की जल में यन्त्र की भावना करे। वहीं देवी का आवाहन कर स्वाहा और मूलमन्त्र से भी **महाकालसहिते अमृतेऽअमुके देवि मातस्तृप्यताम्** में अमुक के स्थान पर अभीष्ट देवी का नाम ले, एकबार या तीनबार तर्पण करे।

तत्पश्चात् उनके परिवार का भी एक अंजलि जल से तर्पण करे। तब वह दूब, अक्षत, लालचंदन, कुश, फल, पुष्प आदि से अर्घ्य का विधान कर **'मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्ति सहिताय इदमर्घ्यं'** ऐसा कह कर प्रकाशशक्ति सहित मार्तण्डभैरव को अर्घ्यप्रदान करे। सूर्यमण्डल में देवी की भावना करते हुए पहले की भाँति अर्घ्य देकर मूलमन्त्र और उनकी गायत्री का उच्चारण करते हुए **महाकालसहितायै अमुक देव्यां इदमर्घ्यं स्वाहा** ऐसा कह कर अर्घ्यप्रदान करे। तब अर्घ्य देने के बाद वह, देवीगायत्री का यथाशक्ति जप करके देवी के दाहिनेहाथ में **गुह्येत्यादि** मन्त्र से सूर्यमण्डल में विसर्जन करे।

श्रीराघवभट्टविरचित कालीतत्त्व के तर्पणविधि नामक
चौथेतत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई।।४।।



पञ्चमतत्त्वम्

* पूजाविधिकथनम् *

अथ पूजाविधिरुच्यते—अब पूजाविधि कही जाती है।

उत्थाय कुलवस्त्रे द्वे परिधाय कुलेन च ।
तिलकं कुलरूपं तु कृत्वाचम्यकुलेश्वरः ।।१।।

कुलेश्वर (कौलसाधक) सर्वप्रथम उठे, दो कुलवस्त्रों को कुलरीति के अनुसार धारण करे, कुल के अनुरूप अपने मस्तक पर तिलक करे, तत्पश्चात् वह आचमन करे॥१॥

फलविशेषकांक्षिभिर्वस्त्रविशेष परिधानं कार्यमिति तदुक्तं स्वतंत्र-तन्त्रादौ– स्वतन्त्रादि तन्त्रों में फलविशेष की आकांक्षा रखनेवाले साधकों को विशेषप्रकार का वस्त्र पहनना चाहिए, ऐसा कहा गया है।

मोक्षार्थी रक्तवस्त्रेण भोगार्थी श्वेतवाससी ।
मारणे कृष्णवासस्तु वश्ये पीते च वाससी ।।२।।
उच्चाटने व्याघ्रचर्माणि वृक्षत्वक्स्तम्भकर्मणि ।
परिधाय ततो मन्त्री यागभूमिमथाविशेत् ।।३।।

मोक्ष की कामना करने वाला साधक लालवस्त्र, भोग की कामना करने वाला श्वेतवस्त्र, मारणकर्म में कालावस्त्र, वश्य (वशीकरण) में पीलावस्त्र, उच्चाटन में व्याघ्रचर्म तथा स्तम्भनकर्मों में पेड़ की छाल, वस्त्ररूप में धारण कर, वह मन्त्रविद्रूप साधक, यागभूमि (पूजा-मण्डप) में प्रवेश करे॥२-३॥

ततश्च साधकश्रेष्ठो हृदि मन्त्र-परामृशन् ।
अबहिर्मानसो योगी यागभूमिमथाविशेत् ।।४।।
जलं शंखं करे कृत्वा गत्वा द्वारि महेश्वरि ।
क्षालयेद्धस्तपादौ च तन्मन्त्रं वै समुच्चरन् ।।५।।

तब वह साधकों में श्रेष्ठसाधक, हृदय में उसी मन्त्र का परामर्श (चिन्तन) करता हुआ, बिना बाहरमन का अर्थात् एकाग्रमन होकर योगचित्तसाधक, यागभूमि में प्रवेश करे। इस निमित्त वह अपने हाथ के शंखपात्र (कपालपात्र) में जल लेकर महेश्वरी भगवती इष्टदेवी (कालिका) के

द्वारपर जाये। तब जिस मन्त्र का वह चिन्तन कर रहा था, उसी मन्त्र (मूलमन्त्र) का उच्चारण करता हुआ, वह अपने दोनों हाथों और पैरों को धोये॥४-५॥

तदुक्तं कुमारीकल्पे—जो कुमारीकल्प में भी कहा है।

ॐ वज्रोदके च हुँ फट् स्वाहा मन्त्रेण मन्त्रवित् जलमानीय सव्येन आसनं शोधयेत्ततः।

तब **ॐ वज्रोदके च हुँ फट् स्वाहा** मन्त्र से मन्त्रवेत्ता दाहिनेहाथ में जल लेकर आसनशुद्धि करे।

ततः प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य लज्जाबीजं भवेन् मन्त्रम् पादप्रक्षालने प्रिये—हे प्रिये! पादप्रक्षालनहेतु पहले प्रणव, ॐकार का उच्चारण तब लज्जाबीज (ह्रीं) का उच्चारण करने से अभीष्टमन्त्र बनता है।

वेदाद्यं च तथा माया स्वाहेत्याचमनं मतम् ।
तत आचमनं कृत्वा सामान्यार्घ्यं प्रकल्पयेत् ।।६।।

वेद का आदि ॐकार, माया ह्रीं, अन्त में **स्वाहा** यह **ॐ ह्रीं स्वाहा** आचमन का मन्त्र कहा गया है। उक्त मन्त्र से आचमन कर सामान्यअर्घ्य की स्थापना करे॥६॥

सामान्यार्घ्यस्थापनविधि

त्रिकोण वृत्त भूबिम्बं मंडलं रचयेत्ततः ।
आधारशक्तिं सम्पूज्य तत्राधारं विनिक्षिपेत् ।।७।।
अस्त्रेण पात्रं संशोध्य हृन्मन्त्रेण प्रपूरयेत् ।
निक्षिपेत्तीर्थमावाह्य गन्धादीन्प्रणवेन तु ।।८।।
दर्शयेद्धेनुमुद्रा वै सामान्यार्घ्यमिदं मतम् ।
सामान्यार्घ्येण देवेशि पूजयेद्वामपार्श्वयोः ।।९।।

त्रिकोण, वृत्त, भूपुर से मण्डल बनाये, तत्पश्चात् आधारशक्ति का पूजन कर उसपर आधार को स्थापित करे। अस्त्र (फट्) मन्त्र से पात्र का संशोधन कर हृत्मन्त्र (नमः) से उसको परिपूर्ण करे तब तीर्थों का आवाहन कर प्रणव (ॐ) मन्त्र से उसमें गन्ध-आदि छोड़े। तदनन्तर धेनुमुद्रा का प्रदर्शन करने पर यह सामान्यअर्घ्य कहा गया है। हे देवेशि! सामान्यअर्घ्य से देवी के वामभाग में पूजन करना चाहिए॥७-९॥

गणेशं क्षेत्रपालं च बटुकं योगिनीं तथा ।
गंगा च यमुनां चैव लक्ष्मीं वाणी ततो विशेत् ।।१०।।

गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक, योगिनी, गंगा, यमुना, लक्ष्मी एवं सरस्वती का पूजन कर साधक, यागभूमि या महेश्वरी-मन्दिर में प्रवेश करे॥१०॥

अन्यत्राऽपि—अन्यत्र भी कहा गया है।

गां बीजाद्यं गणेशं च वामाद्यं बटुकं तथा ।
क्षामाद्यं क्षेत्रपालं च यामाद्यां योगिनीं तथा ।
ऊर्ध्वं वामे च दक्षे च अधोश्चैव यथाक्रमात् ।।११।।

गां बीज का प्रारम्भ में प्रयोग करते हुए गणेश का, वां का प्रयोग कर बटुक, क्षाँ से क्षेत्रपाल तथा याँ से योगिनी का क्रमशः ऊपर, बाएँ, दाहिने और नीचे की ओर पूजन करे॥११॥

ततो गृहं प्रविश्य भूतोत्सारणं कुर्यात्—तब पूजागृह में प्रवेश कर, भूतोत्सारण करे।

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे—जैसा स्वतन्त्रतन्त्र में कहा है।

भूतापसर्पणं कुर्यात् मन्त्रेणानेन साधकः ।
यस्मिन् कृते स्थले भूताः दूरं यान्ति शिवार्च्चने ।।१२।।

साधक मन्त्रपूर्वक भूतापसारण करे, जिसके करने से पूजास्थल पर स्थित, भूत, विघ्नकारकतत्त्व, शिवार्चन (काली-पूजन) के समय दूर हट जाते हैं॥१२॥

स्थितेषु तत्र भूतेषु नैवेद्यं मण्डलं तथा ।
लुंपन्ति च लुब्धा न गृहणन्ति च देवताः ।
तस्माद्यत्नेन कर्त्तव्यं भूतानामपसर्पणम् ।।१३।।

इन भूतों के पूजास्थल पर स्थित रहते हुए बिना मण्डलशुद्धि के नैवेद्यादि जो कुछ अर्पित किया जाता है उसे ये लोभी भूत (तत्त्व) लूट लेते हैं, उसे देवता ग्रहण नहीं करते। इसलिए प्रयत्नपूर्वक साधक द्वारा भूतों के अपसर्पण का कार्य किया जाना चाहिए॥१३॥

अतएव कुमारीकल्पेऽप्युक्तं—ऐसा ही **कुमारीकल्प** में भी कहा है।

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सर्वविघ्नांस्ततः परम् ।
उत्सादय महेशानि हूँ फट् स्वाहा तदनन्तरम् ।
अनेनैवतु मन्त्रेण विघ्नानुत्सारयेत्सुधीः ।।१४।।

सुधी, बुद्धिमानसाधक पहले प्रणव ॐ तब **सर्वविघ्नान्** तत्पश्चात् **उत्सादय महेशानि** उसके बाद **हूँ फट् स्वाहा** कहकर **ॐ सर्वविघ्नानुत्सादय महेशानि हूँ फट् स्वाहा** इस मन्त्र से विघ्नों का उत्सारण करे॥१४॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य रक्ष रक्ष तदनन्तरम् ।
फट् स्वाहेति मन्त्रेण भूमिं च परिशोधयेत् ।।१५।।

तब पहले प्रणव **ॐ** तदनन्तर **रक्ष रक्ष फट् स्वाहा**, कहकर **ॐ रक्ष रक्ष फट् स्वाहा** इस मन्त्र से भूमि का परिशोधन करे॥१५॥

ततः पवित्रवज्रादौ प्रणवं पूर्वमुद्धरेत् ।
वर्मद्वयं ततश्चैव फट् स्वाहा तदनन्तरम् ।
अनेनैव तु मन्त्रेण कुर्याद्भूम्यभिमन्त्रणम् ।।१६।।

पहले प्रणव (**ॐ**) तत्पश्चात् पहले **पवित्रवज्र** तदनन्तर **वर्म द्वय** हुँ हुँ और सब के अन्त में **फट् स्वाहा** कहकर **ॐ पवित्र वज्र हुँ हुँ फट् स्वाहा** इस मन्त्र से भूमि का अभिमन्त्रण करे॥१६॥

तत् आसनस्थापनं कुर्यात्–तब आसनस्थापन करे।

तदुक्तंस्वतन्त्रतन्त्रे–जो **स्वतन्त्रतन्त्र** में कहा है।

भूमौ त्रिकोणमालिख्याधारशक्त्यादि पूजनम्।।१७।।

हे प्रिये! हे देवेशि! आसन उपवेशन (स्थापन) में यागभूमि पर त्रिकोण लिखकर, आधारशक्ति का पूजन करे॥१७॥

तब– **मेरुपृष्ठऋषिः प्रोक्तः सुतलं छंदशीरितम् ।**
कूर्मोऽत्र देवता देवि आसनोपवेशने प्रिये ।।१८।।
विनियोगश्च कथितं पठेद्धृत्वासनं ततः ।
पृथ्वीत्वया धृता लोका देवित्वं विष्णुनाधृता ।
त्वंच धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ।।१९।।
इति धृत्वा च देवेशि कुशांस्तत्रैव दापयेत् ।।२०।।

ॐ मेरुपृष्ठऋषिः सुतलंछन्द कूर्मोःदेवता आसने विनियोगः इस विनियोगमन्त्र को पढ़कर उस भूमि पर आसन रखे और **पृथ्वीत्वयाधृतालोका देवित्वं विष्णुनाधृता त्वंच धाराय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्।** हे देवेशि! ऐसा कहते हुए कुशाओं को स्थापित करे॥१८-२०॥

मन्त्रार्थ–हे पृथ्वी! तुम्हारे द्वारा सभी लोक धारण किये जाते हैं तथा तुम, विष्णु के द्वारा धारण की गई हो। अब तुम नित्य मुझे धारण करो तथा मेरे आसन को पवित्र करो।

मायाबीजं समुच्चार्यआधारशक्तये तथा ।
कमलासनमालिख्य हृदयात्मा ततः परम् ।।२१।।

तत्पश्चात् मायाबीज (ह्रीं) तब **आधारशक्ति कमलासनं** लिखे। उसके बाद **हृदयात्मा** (नमः) अर्थात् **ह्रीं आधारशक्तिकमलासनायनमः** से उस आसन की पूजा करे॥२१॥

कुमारीकल्पेऽप्युक्तं—कुमारीकल्प में भी कहा है।

आकारान्तेसुरेखे वज्ररेखे ततः परम् ।
हूँ फट् स्वाहेति वै कुर्यान्मण्डलं च शवासने ।।२२।।
वीरासनेनोपविशेत् संपूज्यासनमेवतु ।
एवं विधानतो देवि संस्थाप्यमासनमेव च ।
तत्रोपविश्य विधानेन भक्ष्यद्रव्यं तु हेतुकम् ।।२३।।

आ कार के बाद सुरेखे तब वज्ररेखे (हूँ) फट् स्वाहा से बना मन्त्र कहकर मण्डल बनावे। तब शवासन या वीरासन जो पूजितआसन हो उसपर बैठे। तब उपर्युक्तविधि से आसन की स्थापना करके उसपर स्थित आसुरेखे वज्ररेखे हूं फट् स्वाहा मन्त्र से विधिपूर्वक खाद्यपदार्थ, हेतुक (तीर्थ) की स्थापना करे॥२२-२३॥

तदुक्तं भावचूडामणौ—जो भावचूड़ामणि में कहा है।

विनाहेतुकमास्वाद्य क्षोभयुक्तोमहेश्वरः ।
न पूजां मानसी कुर्यान्नध्यानं न च चिन्तनम् ।।२४।।
तस्माद्भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत्परमेश्वरीम् ।।२५।।

बिना हेतुक के उपलब्ध हुये। भगवान् शिव क्षुब्ध हो जाते हैं। अतः हेतुक बिना कभी भी मानसीपूजा, ध्यान या चिन्तन नहीं करना चाहिये। अतः साधक को खा-पीकर ही (देवी) परमेश्वरी का पूजन करना चाहिए॥२४-२५॥

विजयाकल्पेऽप्युक्तम्—विजयाकल्प में भी कहा है।

संविदासवयोर्मध्ये संविद्देवगरीयसी ।
संवित्प्रयोगस्तेनेह पूजादौ साधकोत्तमैः ।।२६।।

संविदा और आसव के मध्य संविदा ही श्रेष्ठ है। इसीलिए उत्तम साधकों द्वारा पूजा के आरम्भ में संवित् का ही प्रयोग किया जाना चाहिए॥२६॥

कर्त्तव्यश्च महापूजा करणीया सुनन्दितैः ।।२७।।

इसीलिए करने योग्य महापूजा प्रसन्नमन से की जानी चाहिए॥२७॥

यामलादौ च— यामलादि में कहा है।

आनन्देन विना भ्रंशो न च तृप्यन्ति मातरः ।
तयोः शुद्धिं तु तत्त्वेन एवं एवमेव विचार्यताम् ।।२८।।

आनन्द से विना स्खलित हुए माताएँ (देवियाँ) तृप्त नहीं होतीं। उनकी शुद्धि तत्त्वमुद्रा से करे॥२८॥

ततः पूजोपकरणानि स्व-स्वस्थाने संस्थाप्य शोधयेत्— तब पूजा के उपकरणों को अपने-अपने स्थानों पर स्थापित कर उनका शोधन करे।

तदुक्तं कुलचूडामणौ—जैसा कि कुलचूड़ामणि में कहा है।

नानाविधानिपुष्पाणि गन्धानि विविधानि च।
कर्पूरजातिधूपादि वासितं पटवासितम्।।२९।।
ताम्बूलं देवद्रव्याणि धूपदीपादिकं च यत्।
सर्वालंकारभूषाभिर्भूषितं कौलिकेश्वरः।
मूलमन्त्रैः जपस्तोत्रैः प्रोक्षितं स्थापयेत्ततः।।३०।।

तब अनेक प्रकार के पुष्पों, गन्धादि, जाति (जायफल), कपूर, धूपादि से सुगन्धित, वस्त्र से आच्छन्न, ताम्बूल, धूपादि जो देवद्रव्य (पूजोपचार) हैं, उन्हें सभी अलङ्कारों, वस्त्रादि सहित कौलिकेश्वर (कौलिक-साधक) मूल-मन्त्र जप तथा स्तोत्रादिके द्वारा प्रोक्षित कर उन्हें अपने-अपने निर्धारित स्थानों पर स्थापित करे॥२९-३०॥

सर्वस्व दक्षिणेस्थाप्य वामे चार्घ्यं निवेशयेत्।
पश्चिमे देवतायाश्च कुलद्रव्याणि धारयेत्।।३१।।

इसक्रम में ऊपर वर्णित सब-कुछ दक्षिणभाग में तथा अर्घ्य, वामभाग में निवेशित करे। देवता के पश्चिम में अर्थात् सामने सभी कुल द्रव्यों को स्थापित करे॥३१॥

कालिकापुराणेऽप्युक्तम्—**कालिकापुराण** में भी कहा है।

यदि पृष्ठतो दधादन्यत् पानं तु पृष्ठतः।।३२।।

यदि पीछे की ओर कुल-द्रव्य को स्थापित किया जाय तो वह अन्य का पेय हो जाता है॥३२॥

पुष्पशोधने तन्त्रान्तरमप्युक्तम्—अन्यतन्त्रों में भी पुष्पशोधन कहा गया है।

प्रणवं पुष्पकेतुश्च तथा राजार्हतेपि च।
शतायसम्यगित्युत्त्वा सम्बद्धाय ततः परम्।।३३।।
ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसंभवे।
पुष्पचयावकीर्णे हूँ फट् स्वाहा तदनन्तरम्।।३४।।
मनुना तेन देव्यास्तु पुष्पशुद्धिमथाचरेत्।।३५।।

प्रणव (ॐ), पुष्पकेतु राजार्हत शताय सम्यग् सम्बद्धाय **पुष्पे-पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसंभवे** तत्पश्चात् **पुष्पचया संकीर्णे हूँ फट् स्वाहा**

पहले कहते हुए उपर्युक्तमन्त्र **ॐ पुष्पकेतु राजहर्ते......फट् स्वाहेत्यादि** से देवी की पूजाहेतु पुष्पशुद्धि सम्पन्न करे॥३३-३५॥

प्रणवंपूर्वमुद्धृत्य तदनन्तरमेव च ।
हूँ फट् स्वाहा मनुं प्रोक्तः कायवाक्चित्तशोधने ।।३६।।

शरीर, वाणी और चित्तके शोधनहेतु प्रणव (ॐ) का पहले उच्चारण करने के बाद, **हूँ फट् स्वाहा** मन्त्र बताया गया है॥३६॥

रक्ष रक्ष हूँ फट् ततः स्वाहा मन्त्रः स्यादात्मरक्षणे।।३७।।

आत्मरक्षा के निमित्त पहले **रक्ष रक्ष हूँ फट्** उसके स्वाहायुक्त करने से **रक्ष-रक्ष हूँ फट् स्वाहा** मन्त्र कहा गया है॥३७॥

स्वतन्त्रतन्त्रे–**स्वतन्त्रतन्त्र** में भी कहा है।

पार्ष्णिघात् करास्फोटं तर्ज्जन्यंगुष्ठमध्यमम् ।
तालत्रयात्मको दद्यात् सशब्दं सम्प्रदायतः ।।३८।।

तब सम्प्रदाय के अनुसार एड़ी के प्रहार, हाथ की ताली तथा तर्जनी, अंगुष्ठा और मध्यमा के योग से तीन की संख्या में ध्वनिसहित चुटकी प्रदान करे॥३८॥

धातुतन्त्रैर्नवैर्वासः रसै वेदाधिकैः प्रिये ।
मात्राभिः प्रणवं जप्त्वा पूरकुम्भकरेचकैः ।।३९।।
प्राणायामं ततः कृत्वा भूतशुद्धिमथाचरेत् ।।४०।।

हे प्रिये ! **धातु-राधिकैः** १६, ६४, ३२ मात्राओं में प्रणव का जपकर, पूरक-कुम्भक-रेचकों के द्वारा प्राणायाम करके भूतशुद्धि सम्पन्न करे॥३९-४०॥

अन्यत्राऽप्यिुक्तम्–अंन्यत्र भी कहा है।

मनोजीवात्मनःशुद्धिः प्राणायामेन जायते ।।४१।।

मन, जीव और आत्मा तीनों की शुद्धि प्राणायाम से सम्पन्न हो जाती है॥४१॥

कालीक्रमेऽप्युक्तं–**कालीक्रम** में भी कहा है।

प्राणायामत्रयं कुर्यान्मूलेन प्रणवेन वा ।।४२।।

तीनप्राणायाम करने चाहिए वे चाहे मूलमन्त्र से हों या प्रणव द्वारा हो॥४२॥

ज्ञानार्णवेऽपि–**ज्ञानार्णव** में भी कहा है।

कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायामः स विज्ञेया तर्जनीमध्यमे विना ।।४३।।

तर्जनी और मध्यमा को छोड़ कर कनिष्ठा और अंगूठे से नासिका को बन्द करके की जानेवाली क्रिया, प्राणायाम कही जाती है।।४३।।

स्वतन्त्रतन्त्रेऽपि—स्वतन्त्रतन्त्र में भी कहा है।

संहारक्रमयोगेन पंचतत्त्वं समुद्धरेत् ।
शोषदाहप्लवान्कृत्वा वाय्वाग्नि सलिलाक्षरैः ।।४४।।
ततोन्यासं प्रकुर्वीत फेत्कारीतन्त्रमीरितम् ।।४५।।

संहारक्रम के योग से पञ्चतत्त्वों का उद्धार (शोधन) करे। इस निमित्त वायुबीज (यं) से शोषण, अग्निबीज (रं) से दाहन तथा सलिल जल के बीज (वं) से प्लवन की क्रिया सम्पन्न करे। तत्पश्चात् न्यास करे ऐसा फेत्कारीतन्त्र में कहा है।।४४-४५।।

अन्यत्रापि—अन्यत्र भी कहा गया है।

देवीरूपं ततोध्यायेदात्मानं कमलेक्षणे ।
ततोबीजं प्रविन्यस्य पाशादित्र्यक्षरेण तु ।।४६।।

हे कमल के समान नेत्रों वाली! तब अपने को देवीरूप में ध्यान करे और पाशादि **आँ ह्रीं क्रों** इन तीन अक्षरों का प्रविन्यास करे।।४६।।

प्राणमन्त्रेण युक्तेन ततोअमुकस्यपदं वदेत् प्राणाइह वदेत्पश्चादिह प्राणास्ततः परं अमुष्याजीव इहस्थितस्ततोऽमुष्या पदं ततः सर्वेन्द्रियाणि-वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणं पदं ततः प्राणाइहागत्यसुखं चिरं तिष्ठन्तु तत्परं वह्निजायां ततः प्राणा मन्त्रोऽयं समुदाहृतः अमुष्यास्थाने साध्य देवतायाः नामदेयमितिभावः।

इन्हें प्राणमन्त्रों से युक्त करता हुआ **अमुष्या प्राणाः** तत्पश्चात् **इह प्राणाः** बोलना चाहिए। इसी प्रकार **अमुष्या जीव इहस्थितः** तथा **अमुष्या** पद बोल कर **सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनः चक्षुः श्रोत्र घ्राण** तदनन्तर **इहागत्यसुखंचिरं तिष्ठन्तु** तब **वह्निजायां (स्वाहा)** बोले ऐसा करने से बनने वाला मन्त्र, प्राणमन्त्र कहा गया है। इसमें **अमुष्या** के स्थान पर अपने साध्य (आराध्य) देवता का नाम कहना चाहिए। जैसे—**ऊँ आँ ह्रीं क्रों श्रीमद्दक्षिणकालिकायाः प्राणाः इह प्राणाः, आँ ह्रीं क्रों श्रीमद्दक्षिणकालिकायाः जीव इहस्थितः, आँ ह्रीं क्रों, श्रीमद्दक्षिण-कालिकायाः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा** यह दक्षिणकालिका का प्राणप्रतिष्ठामन्त्र बनता है।

तदुक्तंयामलादौ—वही यामलादि में भी कहा है।

अमुकं पदं यद्रूपं यन्त्रमन्त्रेषु दृश्यते ।
साध्याभिधानं तद्रूपं तत्रस्थाने नियोजयेत् ।।४७।।

यन्त्र-मन्त्रों में अमुक शब्द जिसरूप में दिखाई देता है। उस स्थानपर साध्य का नाम उसीरूप में प्रयोग करना चाहिए।।४७।।

न्यास-विधान

कुमारीकल्पेऽप्युक्तं–कुमारीकल्प में भी कहा है।

भूतशुद्धिविधायेत्थं देवीरूपेण चिन्तयेत् ।
जीवन्यासं ततः कुर्यादात्मनि देवििचिन्तयेत् ।।४८।।

हे देवि ! भूतशुद्धि करके साधक अपने को देवीरूप में चिन्तन करे। तदनन्तर वह जीवन्यास करके पुनः अपने में ही देवीरूप का चिन्तन करे।।४८।।

कालिकातन्त्रे–कालिकातन्त्र में भी कहा है।

भैरवोऽस्यऋषिः प्रोक्तः उष्णिक् छन्दउदाहृतम् ।
देवता श्यामला प्रोक्ता लज्जा बीजं तु बीजकम् ।
शक्तिस्तु कूर्चबीजं स्यादनिरुद्धसरस्वती ।
कवित्वार्थे विनियोगः स्यादिदं ऋष्यादि कल्पना ।।४९।।

इस मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द उष्णिक्, देवता श्यामला (काली), बीज लज्जाबीज ह्रीं, शक्ति कूर्चबीज हूँ, अनिरुद्धसरस्वती कवित्त्व हेतु विनियोग कहा गया है। इसके ऋषि आदि की यही कल्पना (योजना) है।।४९।।

अनिरुद्धसरस्वतीप्रथमबीजं कीलकमित्यर्थः–यहाँ अनिरुद्धसरस्वती प्रथमबीज ऐं कीलक के निमित्त प्रयुक्त हुआ है।

कवित्वेत्युपलक्षणमभिमतार्थमित्यपि बोद्धव्यं–यहाँ प्रयुक्त कवित्त्वशब्द को भी अभिमत-अर्थ (अभीष्ट) प्रयोजन जानना चाहिए।

अतएवाह कालिकाक्रमे–यही **कालिकाक्रम** में भी कहा गया है।

कीलकं चाद्यबीजं तु चतुर्वर्गार्थसिद्धये ।।५०।।

कीलक, आद्यबीज ऐं और विनियोग चतुर्वर्ग की अर्थसिद्धि में दिखाया गया है।।५०।।

कुलचूडामणिरप्याह–कुलचूड़ामणि भी कहते है।

भैरवोऽस्यऋषिः प्रोक्तं उष्णिक्छन्द उदाहृतम् ।
श्यामला दक्षिणा देवीचतुर्वगफलप्रदा ।।५१।।

इसमन्त्र के भैरवऋषि, उष्णिक्छन्द, दक्षिणा श्यामलादेवी देवता कही गयी हैं जो चतुर्वर्गफल प्रदान करने वाली हैं।।५१।।

तन्त्रान्तरेऽपि—अन्यतन्त्र में भी कहा है।

ऋषिन्यासं मूर्द्धिर्न देशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे ।
देवता हृदये चैव बीजं गुह्ये च देशिकः ।
शक्तिस्तु पादयोश्चैव कीलकं सर्वतोन्यसेत् ।।५२।।

ऋषि का मस्तक पर, छन्द का मुखकमल में, देवता का हृदय में, बीज का गुह्यभाग में, शक्ति का दोनों पैरों में तथा कीलक का विद्वान् साधक द्वारा सर्वत्र न्यास किया जाना चाहिए।।५२।।

ततः कराङ्गन्यासौ कुर्यात्—तब (ऋष्यादिन्यास करके) कराङ्गन्यास (हाथ और उसके अंगों का) न्यास करे।

तदुक्तं कालीतन्त्रे—जो **कालीतन्त्र** में बताया है।

अंगन्यासौ करन्यासौ यथावदभिधीयते ।
षड्दीर्घमात्राबीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत् ।।५३।।

अङ्गन्यास एवं करन्यास यथावत्रूप से कहा जाता है—

प्रणव (ॐ) कार युक्त छः दीर्घमात्राओं से बने बीजमन्त्र (साध्य के बीजमन्त्र) द्वारा अङ्गन्यास एवं करन्यास सम्पन्न करे।।५३।।

स्वतन्त्रतन्त्रेऽपि—**स्वतन्त्रतन्त्र** में भी कहा है।

प्रणवं चाद्यबीजं च षड्दीर्घस्वरभाषितम् ।
कुर्यात्षडंगविन्यासं मूलखण्डत्रयेण वा ।।५४।।

न्यास छः प्रकार के दीर्घस्वरों से युक्त, प्रणवसहित बीजमन्त्र या पहले प्रणव का उच्चारण कर, मूलमन्त्रों के तीन खण्डों द्वारा करना चाहिए।।५४।।

भैरवतन्त्रे च—और **भैरवतन्त्र** में भी कहा है।

षडङ्गं विन्यसेन्मन्त्री त्रिसकृद्वा यथाक्रमम् ।।५५।।

मन्त्री (मन्त्रसाधक) तीन बार या एक बार, क्रम (गुरुनिर्दिष्ट-पद्धति) के अनुसार षडङ्गन्यास करे।।५५।।

*** वर्णन्यास ***

ततो वर्णन्यासं कुर्यात्—तब (ऋष्यादिन्यास, अङ्गन्यास, करन्यास करने के पश्चात्) साधक वर्ण (अक्षर) न्यास करे।

तदुक्तं कालीतन्त्रे—जो **कालीतन्त्र** में कहा है।

एवं यथाविधिं कृत्वा वर्णन्यासं समाचरेत् ।।५६।।
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ वै हृदयं स्पृशेत्।
ए ऐ ओ औ ततोप्यंत क ख ग घ ङ तथा पुनः।
उक्ता च दक्षिणं हस्तस्पृशेत् साधकसत्तमः।।

ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ तथा पुनःइति।
वामभुजे न्यस्य ण तथा द थ न पुन स्ततः।।
प फ ब भ म इति दक्षिणे जंघके न्यसे त्ततः।
य र ल व श ष स ह क्षं वाम भुजे न्यसेत्।।

विधिपूर्वक इस प्रकार षडङ्ग न्यास करके वर्णन्यास सम्पन्न करें।।५६।।

इस क्रम में श्रेष्ठ साधक, अ आ इ ई उ ऊ ऋ लृ कहकर हृदय का स्पर्श करे तथा ए ऐ ओ औ तब अन्तिम स्वर अं अः पुनः क ख ग घ कह कर दाहिने हाथ का स्पर्श करे। तत्पश्चात् ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ कहकर बायींभुजा (बायें हाथ), तथा ण त थ द ध न प फ ब भ कह कर दाहिने जंघे और म य र ल व श ष स ह क्ष से बायीं जाँघ में न्यास करे।

*** मातृकाश्रीकण्ठन्यास ***

ततो मातृकां श्रीकण्ठन्यासौ कुर्यात्–तब मातृका और श्री कण्ठन्यास करे। **तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे**–जो स्वतन्त्रतन्त्र में कहा है।

आदौ च मातृकान्यासं ततः श्रीकण्ठ उच्यते ।।५७।।

पहले मातृकान्यास तब श्रीकण्ठन्यास कहा जाता है।।५७।।

ऋषिर्ब्रह्मा भवेच्छन्दो गायत्री मातृका पुनः ।
देवता व्यंजनं बीजं शक्तयः स्युः स्वरा अमी ।।५८।।
अव्यक्तं कीलकं ज्ञेयं न्यसेदुक्तक्रमेण तु ।।५९।।

इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता मातृका, सभीव्यंजन बीजमन्त्र, सभीस्वर शक्ति, इन दोनों के अव्यक्त को कीलक जानना चाहिए तथा इन सबका ऊपर बताये क्रम से न्यास करना चाहिये।।५८-५९।।

उक्त क्रमेणेति पूर्वोक्त ऋष्यादि न्यासक्रमेणेत्यर्थः ।

उक्तक्रम से यहाँ पहले बताये ऋष्यादि न्यास-क्रम से, ऐसा अर्थ समझना चाहिए।

षडङ्ग मातृकायास्तु कारयेत् साधकोत्तमः ।
स्वराणां क्लीवहीनानां न्यसेदुक्त क्रमेण तु ।।६०।।

उत्तमसाधक मातृकाओं से षडङ्गन्यास करे। इसीक्रम में वह क्लीवरहित स्वरों का भी न्यास करे, इसमें ह्रस्व और दीर्घ के मध्य मातृकावर्णों का उच्चारण करे।।६०।।

अं कं ५ आं१ इं चं ५ ईं२। उँ ट ५ ऊँ३ ऐं तँ ५ ऐं४ ओं पं ५ औं ५ अं यं १० अः ६इति क्रमेणेतिपूर्वोक्तं षडङ्गन्यासक्रमेणेत्यर्थः।

अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः....आदि के क्रम से पूर्वोक्त षडङ्गन्यासक्रम जानना चाहिये यहाँ पहली संख्या वर्णों के अक्षर तथा दूसरी अङ्गों के हृदयादिक्रम का सूचक है।।

अथवा क्रमेणेति प्रथमस्वरयुग्मांतराले प्रथमो इति चतुर्थवर्गः पर्यन्तम् वर्गः एवं पंचमस्वर युग्मांतराले पंचमो वर्गः–अथवा क्रम से प्रथमस्वर युग्मों के मध्य, प्रथम की भाँति चतुर्थवर्ग तक तथा पाँचवें स्वरवर्ग के मध्य, पंचमवर्ग समझना चाहिए।

एवमष्टमो मध्ये यवर्गः प्रक्षेप्तव्यः इत्यर्थः–इसी प्रकार आठवें स्वरों के मध्य य वर्ग को स्थापित करे। यह अर्थ समझे।

एवं षडङ्गेविन्यस्य तां ध्यायेत्–इस प्रकार षडङ्गन्यास कर उन मातृकादेवी का ध्यान करे।

तदुक्तम्–जैसा कहा है।

*** मातृकादेवी ध्यान ***

शरदपूर्णेन्दु शुभ्रां सकललिपिमयीं लोलवक्त्रत्रिनेत्रां ,
शुक्लालंकारभूषाम् शशिमुकुटजटाजूटमुत्तमं प्रसन्नाननाम् ।
पुस्तकस्त्रक् पूर्णकुम्भवरमपि दधतीं शुक्लपटांवराढ्यां ,
वाग्देवीं पद्मवक्त्रां स्तनभरनमितां चिन्तयेत्साधकेन्द्रः।।६१।।

साधकों में इन्द्र के समान श्रेष्ठसाधक! शरदऋतु के पूर्णचन्द्रमा की भाँति श्वेत, समस्तलिपिस्वरूपा, चञ्चलमुख और तीन नेत्रोंवाली, शुक्ल (उज्ज्वल) आभूषण और वस्त्रों से सुशोभित, मुकुटरूप में चन्द्रमा को धारण की हुई, जटाजूटयुक्त, प्रसन्नमुख, अपने हाथों में पुस्तक, माला, पूर्णकलश और वरदमुद्रा धारण की हुई, श्वेतरेशमीवस्त्र धारण की, कमल के समान मुखवाली, स्तन के भार से झुकी हुई मातृकादेवी का ध्यान करे।।६१।।

एवं ध्यात्वा ललाटादिक्रमेण अकारादिक्षकारान्तान् न्यसेत्–इस प्रकार ध्यानकर ललाट आदि के क्रम से अकार से आरम्भ कर क्षकारपर्यन्त वर्णों का न्यास करे।

तदुक्तं–जैसा कहा है।

ललाट मुखवृत्ताक्षि श्रुतिघ्राणेषु गंडयोः ।
ओष्ठदन्तौत्तमांगास्यसन्ध्यग्रकेषु च ।।६२।।

पार्श्वयोः पृष्ठतोनाभौ जठरेन्हृदयोंसके ।
ककुद्यंसे च हृत्पूर्वपाणिपादेषु यत्नतः ।
जठराननयोर्न्यस्य मातृकार्णान्यथाक्रमम् ।।६३।।

ललाट, मुखवृत्त, आँखों, कान, नाक, गंडस्थलों, ओंठ, दाँत, उत्तमांग (शिर), आस्य (मुख), संधि के अग्रभाग में, पार्श्वों, पृष्ठ, नाभि, पेट, हृदय, कंधे, ककुद (केहुनी) हृदयपूर्वक हाथ, पैरों, पेट और मुख में मातृकावर्णों का क्रमशः न्यास करे।।६२-६३।।

ललाटेऽनामिका मध्ये विन्यसेमुखवृत्तके ।
तर्जनीमध्यमानामाविन्यसेन्चैव नेत्रयोः ।।६४।।
अंगुष्ठं कर्णयोर्न्यस्य मध्यमाङ्गके ।
मुखेनामां मध्यमां च हस्तेपादे चपार्श्वयोः ।।६५।।
कनिष्ठानामिकामध्यास्तास्तु पृष्ठतो न्यसेत् ।
तां सांगुष्ठ नाभिदेशे सर्वाः कुक्षौ चविन्यसेत् ।।६६।।

ललाट में अनामिका और मध्यमा से, मुखमण्डल में मध्यमा से, तीनों नेत्रों में तर्जनी मध्यमा और अनामिका से, कानों में अंगूठे से, मुख, हाथ, पैर एवं पार्श्वभागों में अनामिका और मध्यमा से न्यास करना चाहिए। पृष्ठभाग में कनिष्ठा, मध्यमा तथा अनामिकाओं से न्यास करे। अंगूठे सहित उपर्युक्त अंगुलियों से ही नाभिदेश व सबसे कुक्षिभाग में न्यास करे।।६४-६६।।

हृदये विन्यसेत्सर्वमंसयोः ककुभःस्थले ।
हृत्पूर्व हस्तपत्कार्क्ष मुखेषु तलमेव च ।।६७।।
एतास्तु मातृका मुद्राः क्रमेण परिकीर्त्तिताः ।
अज्ञात्वा विन्यसेत् यस्तु न्यासः स्यात्तस्य निष्फलः ।।६८।।

सबका हृदय में, कंधों में, ककुभस्थल (शिखा) में, हृदय से प्रारम्भ कर हाथ-पैर-कुक्षि, मुख के स्थलों पर न्यास हेतु इन मातृका और मुद्राओं को क्रमशः कहा गया है। इन्हें बिना जाने जो न्यास करता है, उसका किया हुआ न्यास, निष्फल हो जाता है।।६७-६८।।

ततः श्रीकण्ठन्यासं कुर्यात्–तब श्रीकण्ठन्यास करे।

तदुक्तं कालिकाक्रमे–जो कालिकाक्रम में कहा गया है।

विन्यसेत् मातृकास्थाने श्रीकण्ठादीन्यथाक्रमम् ।
पूर्णोदर्या सार्द्धम् तु मातृकान्यासक्रमोदितम् ।।६९।।

श्रीकण्ठादि (अकारादि) का क्रमशः मातृकास्थान पर मातृकान्यासक्रम में कहे अनुसार, पूर्णोदर्यादि के सहित न्यास करना चाहिए।।६९।।

श्रीकण्ठोऽनंत सूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः ।
अर्घीशो भारभूतीशोश्चातिथिः स्थाणुको हरः ।।७०।।
झिंटीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः ।
अक्रूरश्च महासेनः षोडशस्वरमूर्त्तयः ।।७१।।

पूर्णोदरी आदि के सहित मातृकास्थानों पर विन्यास करना चाहिये। श्रीकण्ठादि के अन्तर्गत–श्रीकण्ठ, अनंत, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति, अमरेश्वर, अर्घीश, भारभूतीश, अतिथि, स्थाणुक, हर, झिंटीश, भौतिक, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर, महासेन ये सोलह स्वरमातृकाओं से युक्त होने वाली मूर्तियाँ हैं।।७०-७१।।

पश्चात् क्रोधीश-चंडीश-पंचांतक- शिवोत्तमाः ।।७२।।
अथैकरुद्रकूर्मैकनेत्रेश-चतुराननाः ।
अजेशः सर्वसोमेशस्तथा लांगलिदारुकौ ।।७३।।
अर्धनारीश्वरश्चोमाकान्ताषाढि च दण्डिनौ ।
स्युरत्रिमीन मेषाख्या लोहितश्च शिखी तथा ।।७४।।
छगलेश-द्विरंडेशौ समहाकाल वालिना ।
भुजंगेश-पिनाकीश खड्गीशाख्यावकेश्वरः ।
श्वेतभृग्वीश नकुलीशो शिवसंवर्त्तकाः स्मृताः ।।७५।।
एते रुद्राः स्मृता रक्ता धृतशूलकपालकाः ।।७६।।

तत्पश्चात् क्रोधीश, चंडीश, पंचांतक, शिवोत्तम, एकरुद्र, कूर्म, एकनेत्रेश, चतुरानन, अजेश, सर्वेश, सोमेश, लांगली, दारुक, अर्धनारीश्वर, उमाकान्त, आषाढि, दण्डिन्, स्युरत्रिमीन, मेष, लोहित, शिखी, छगलेश, द्विरंडेश, महाकाल, वाणी, भुजंगेश, पिनाकीश, खड्गीश, वकेश्वर, श्वेत, भृग्वीश, नकुलीश, शिव, संवर्त्तक ये ईशयुक्त व्यञ्जनमूर्तियाँ स्मरण की गई हैं। ये ऊपर स्मरण किये गये रुद्र, लाल रंग के तथा शूल एवं कपाल धारण किये बताये गये हैं।।७२-७६।।

पूर्णोदरीस्याद्विरजा शाल्मली तदनन्तरम् ।
लोलाक्षी वर्तुलाक्षी च दीर्घघोणा समीरिता ।।७७।।
सुदीर्घमुखीगोमुख्यौ दीर्घजिह्वा तथैव च ।
कुण्डोदर्यूर्ध्वकेशी च तथा विकृतमुख्यपि ।।७८।।

ज्वालामुखी ततश्चैव पश्चादुल्कामुखी ततः ।
सुश्रीमुखी च विद्यामुख्येताः स्युः स्वर शक्तयः ।।७९।।

पूर्णोदरी, विरजा, तब शाल्मली, लोलाक्षी, वर्तुलाक्षी, दीर्घघोणा तथा सुदीर्घमुखी, गोमुखी, दीर्घजिह्वा, कुण्डोदरी, ऊर्ध्वकेशी, विकृतमुखी, तब ज्वालामुखी तत्पश्चात् उल्कामुखी, सुश्रीमुखी, विद्यामुखी ये स्वरों की शक्तियाँ कही गई हैं।।७७-७९।।

महाकाली सरस्वत्यौ सर्वसिद्धि समन्विता ।
गौरी त्रैलोक्यविद्यास्यान्मन्त्रशक्तिः ततः परं ।।८०।।
आत्मशक्तिर्भूतमाता तथा लम्बोदरी मता ।
द्राविणी नागरी ज्ञेया खेचरी चैव मञ्जरी ।।८१।।
रूपिणी वीरिणी पश्चात् काकोदर्यपि पूतना ।
स्याद् भद्रकाली योगिन्यौ शंखिनी गर्जनी तथा ।।८२।।
कालरात्री कुब्जिन्यौ कपर्दिन्यपि वज्रिणी ।
जयावसुमुखीश्वर्यो रेवती माधवी ततः ।।८३।।
वारुणी वायवी प्रोक्ता पश्चाद्रक्षो विदारिणी ।
ततश्च सहजालक्ष्मीर्व्यापिनी माययान्विता ।।८४।।

महाकाली, सरस्वती, सर्वसिद्धि से युक्त गौरी, त्रैलोक्यविद्या तब मन्त्रशक्ति, आत्मशक्ति, भूतमाता, लम्बोदरी, द्राविणी, नागरी को जानना चाहिए। पुनः खेचरी, मञ्जरी, रूपिणी, वीरिणी, तत्पश्चात् काकोदरी व पूतना, तब भद्रकाली और शंखिनी तथा गर्जनी नामक योगिनियाँ, कालरात्री और कुब्जिनी, कपर्दिनी, वज्रिणी, जया, वसुमुखी, ईश्वरी रेवती, माधवी, तब वारुणी, वायवी कही गई हैं। तदनन्तर रक्षोविदारिणी, पुनः सहजा, लक्ष्मी, व्यापिनी, माया ये व्यञ्जनों की शक्तियाँ (योगिनियाँ) कही गई हैं।।८०-८४।।

एतारुद्राङ्कपीठस्थाः सिन्दूरारुणविग्रहा ।
रक्तोत्पलकपालाढ्याः स्वलंकृतकराम्बुजाः ।।८५।।

ये सभी पूर्वक्रम में वर्णित रुद्रों के अंक में स्थित, सिन्दूर के समान लालरंग के विग्रहवाली, अपने करकमलों में लालकमल और कपाल से सुशोभित हैं।।८५।।

ततोऽन्तः षोढां न्यसेत्—तब अन्त में **षोढान्यास** करे।

तदुक्तं वीरतन्त्रे—जो **वीरतन्त्र** में कहा है।

केवलां मातृकां कृत्वा मातृकांतरसंपुटां ।
मातृकापुटितंतारं न्यसेत् साधक सत्तमः ।।८६।।

श्रेष्ठसाधक केवल मातृका को, मातृकाओं के मध्य सम्पुटित करके मातृका से सम्पुटित तार का न्यास करे।।८६।।

एवं कामपुटं तारं कामं च तार संपुटं ।
शक्ति पुटितं तारं शक्तीं तत पुटितो न्यसेत् ।।८७।।

इसीप्रकार काम (क्लीं) से सम्पुटित तार **ॐकार** और **ॐकार** से सम्पुटित काम का तथा शक्ति (ह्रीं) से सम्पुटित **ॐकार** और **ॐकार** से सम्पुटित शक्ति का न्यास करे।।८७।।

क्रां क्रां लं लृं ॠं ॠं एवं च मन्त्रेण पुटितंततः ।
तैस्तै तथा च मन्त्रं च पुटितं विन्यसेद् बुधः ।।८८।।

क्रां क्रां लं लृं ॠं ॠं इनमन्त्रों से युक्त उन-उन अङ्गादि के मन्त्रों को पुटित (युक्त) कर विद्वान् साधक न्यास आदि सम्पन्न करे।।८८।।

अनुलोम विलोमेन मन्त्रं केवलमेवतु ।
विन्यस्य मातृकास्थाने व्याप्तमष्टोत्तरशतम् ।।८९।।

मातृकाओं के स्थान पर अनुलोम एवं विलोमक्रम से मन्त्रों को स्थापित करने पर एकसौआठ मन्त्र हो जाते हैं।।८९।।

इति गुप्तेन दुर्गायाः अंगषोढ़ा प्रकीर्तिता ।
तारायाः कालिकायाश्च उन्मुख्याश्चाथापरा ।।९०।।

इसप्रकार गुप्त किये गये दुर्गा, तारा, कालिका, उन्मुखी तथा परा देवी के अंगन्यास एवं षोढान्यास के प्रयोग कहे गये हैं।।९०।।

*** न्यासमाहात्म्य ***

कृतेऽस्मिन्न्यासवर्गेण सर्वपापप्रणशयति ।
अपमृत्युहरं नूनं रोगशोकविनाशनं ।।९१।।

इसप्रकार न्यासवर्गों के करने से साधक के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। यह न्यासविधान निश्चित रूप से अपमृत्यु का हरण करने वाला तथा रोग और शोक का नाश करने वाला है।।९१।।

दुष्टसत्त्वानि नश्यन्ति शत्रवो यान्ति मित्रताम् ।
वाणी तस्य च सर्वत्र द्राक्षारसपरंपरा ।।९२।।
अणिमाद्यष्टसिद्धिस्तु तस्य हस्ते व्यवस्थिता ।
सद्यःविनाशतां याति न्यासस्यैव विचिन्तनात् ।
कायिकं वाचिकं चापि सर्वं तस्य ततु दुःकृतम् ।।९३।।

साधक द्वारा न्यासचिन्तन करने (सम्पादन करने) से दुष्टप्राणी नाश को प्राप्त होते हैं। शत्रु, मित्र हो जाते हैं। उस साधक की वाणी सर्वत्र द्राक्षारसपरम्परा से सिञ्चित अर्थात् मधुर हो जाती है। अणिमा, महिमा, लघिमादि अष्टसिद्धियाँ उसके हस्तगत हो जाती हैं। उसके जो भी शरीरसम्बन्धी, वाणीसम्बन्धी दुष्कृत होते हैं। वे सभी नष्ट हो जाते हैं॥९२-९३॥

ब्रह्महत्या क्षयंयाति यात्किंचिदुपपातकम् ।
यद्रूपं दृश्यते सोऽपि तद्रूपं स गच्छति ।।९४।।

जो कुछ ब्रह्महत्यादि उपपातक होते हैं वे सब क्षय को प्राप्त होते हैं। वह साधक जिस रूप को देखता है, चिन्तन करता है, वह उसी रूप का हो जाता है॥९४॥

यन्नमंति महादेवि षोढापुटितविग्रहाः ।
अल्पायुश्च भवेत्सद्यो देवता कंपते भिया ।।९५।।

हे महादेवि! उपर्युक्त षोढान्यास से युक्त विग्रहवालासाधक जिसे नमस्कार करता है, वह शीघ्र अल्पायु हो जाता है। देवता भी उसके भयवश काँपते हैं॥९५॥

ततः तत्त्वन्यासं कुर्यात्–तब तत्त्वन्यास करे।

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे–जो **स्वतन्त्रतन्त्र** में कहा गया है।

आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैस्तत्त्वन्यासं समाचरेत् ।।९६।।

आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वों से तत्त्वन्यास सम्पादित करे॥९६॥

ततो बीजन्यासं कुर्यात्–तब बीजन्यास करे।

तदुक्तं कुमारीकल्पे–जो **कुमारीकल्प** में कहा गया है।

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये ललाटे नाभिदेशको ।
गुह्ये वक्त्रेतु सर्वाङ्गे सप्तबीजा क्रमान्न्यसेत् ।।९७।।

सात बीजों का क्रमशः ब्रह्मरन्ध्र, भौहों के मध्य, ललाट, नाभिदेश, गुह्यभाग, मुख एवं सर्वाङ्ग में न्यास करना चाहिए॥९७॥

तदुक्तं भैरवतन्त्रे–जो **भैरवतन्त्र** में कहा है।

पंचधा नवधा वापि मूलेन सप्तधायिका ।।९८।।

मूलमन्त्र से पाँच, सात या नौप्रकार से बीजन्यास करे॥९८॥

स्वतन्त्रतन्त्रेप्युक्तं–स्वतन्त्रतन्त्र में भी कहा है।

मूलेन व्यापकं न्यासं नवधा कारयेत् प्रिये ।।९९।।

हे प्रिये! मूलमन्त्र से व्याप्तकर नौप्रकार से न्यासकर्म का सम्पादन करे॥९९॥

इतिन्यासजालं विधाय चक्रराजं लिखेत्सुधीः ।
एवं विन्यस्त देहःसन् चक्रराजं समालिखेत् ॥१००॥

इसप्रकार न्याससमूहों को करके बुद्धिमान्साधक चक्रराज को लिखे। इसप्रकार से न्यस्तशरीर होकर साधक द्वारा चक्रराज की स्थापना की जानी चाहिए॥१००॥

सौवर्ण राजते ताम्रे पाषाणे चाष्टधातु सु ।
स्वयंभू कुसुमं कुण्डगोलोत्थं रोचनागुरुन् ॥१०१॥
काश्मीरं मृगनाभिं च कुंकुमं मलयोद्भवम् ।
एवं गन्धः समाख्यातः सर्वदा चण्डिकाप्रियः ।
एतेन गन्धयोगेन योनिचक्रं समालिखेत् ॥१०२॥

स्वर्ण, रजत (चाँदी), ताँबा, पत्थर या अष्टधातु पर स्वयंभू-कुसुम, कुण्डगोल से उत्पन्न द्रव, गोरोचन, अगर, काश्मीर (केशर), मृगनाभि (कस्तूरी), कुंकुम, मलयोद्भव (मलयागिरिचन्दन) इन सबसे मिला हुआ गन्धद्रव्य चण्डिका को सदैव प्रिय कहा गया है।

इसी गन्ध के द्वारा योनिचक्र का लेखन करना चाहिए॥१०१-१०२॥

*** चक्रनिर्माण ***

योनित्रयं ततः कुर्यात् षट्कोणं ततः परम् ।
ततश्चाष्टदलं भूमिचतुर्द्वारसमन्वितम् ।
एतत्ते कथितं चक्रं सर्वचक्रोत्तमोत्तमम् ॥१०३॥

तीन योनियाँ (अधोत्रिकोण) बनाये, तत्पश्चात् एक षट्कोण, तदनन्तर अष्टदलकमल तब चतुर्द्वारयुक्त भूपुर बनाये। हे देवि! यह तुमसे सभी चक्रों में उत्तमचक्र (यन्त्र) कहा गया है॥१०३॥

कुमारीकल्पेऽप्याह—कुमारीकल्प में भी कहा है।

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत् ।
बहिस्त्रिकोणमालिख्य षट्कोणं च लिखेद् बहिः ॥१०४॥

सर्वप्रथम एक (अधः) त्रिकोण लिखकर उसके बाहर दूसरा त्रिकोण लिखे। पुनः एक और त्रिकोण लिखकर षट्कोण लिखे॥१०४॥

कालीतन्त्रेऽपि—कालीतन्त्र में भी कहा गया है।

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत् ।

ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ।।१०५।।

पहले एक त्रिकोण लिखे। तब उसके बाहर दूसरा त्रिकोण लिखे। तत्पश्चात् मन्त्रसाधक तीन उत्तम अधोमुखी त्रिकोणों को लिखे।।१०५।।

ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं पुनः ।

वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद् भूपुरमेककम् ।।१०६।।

तदनन्तर वृत्त लिखकर उसके पश्चात् अष्टदलकमल लिखे। पुनः वृत्त बनाकर विधिवत् एक भूपुर बनाये।।१०६।।

नीलतन्त्रेऽप्युक्तम्—नीलतन्त्र में भी कहा है।

पंचशक्तिसमालिख्य अधोवक्त्रां सुलक्ष्णाम् ।

ज्ञात्वैवं मुक्तिमाप्नोति यन्त्रराजं न संशयः ।।१०७।।

अधोमुखी, सुन्दर लक्षणोंवाली पाँच शक्तियों (शक्तित्रिकोणों) को लिखकर बने इसप्रकार के यन्त्रराज को जानकर, साधक मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। इसमें कोई संशय नहीं है।।१०७।।

एतत्तु विलिखेद् ताम्रे कुंडगोलविलेपिते ।

स्वयंभू कुसुमैर्युक्ते कुंकुमागुरुलेपिते ।।१०८।।

ताम्रपत्र पर इसप्रकार का यन्त्र लिखे, तब उसे कुण्डगोल द्रव, स्वयंभूकुसुम, कुंकुभ, अगरु आदि गन्धों से विलेपित करे।।१०८।।

एवं पीठं निर्माय स्त्रीवेशधारी सन् पूजादिकं कुर्यात्—इसप्रकार से पीठ (वेदिका) का निर्माण कर साधक स्त्रीवेशधारी होकर पूजन आदि सम्पन्न करे।

तदुक्तं कुमारीकल्पे—जो कुमारीकल्प में कहा गया है।

ततः स्त्रीवेषधारी स्यात् सिन्दूरांकितभालकः ।

श्रृंगारोज्ज्वलवेषाढ्यस्तांबूलपूरिताननः ।।१०९।।

तब साधक ललाट पर सिन्दूर अंकित कर, श्रृंगार से उज्ज्वल, सुशोभितवेष, ताम्बूल से पूरित मुखवाला हो, स्त्रीवेशधारी होये।।१०९।।

पीठन्यासं ततः कुर्यादाधारशक्तिपूर्वकम् ।

प्रकृतिं कमठं चैव शेषं पृथ्वीं तथा पुनः ।

सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहं तथा ।

श्मशानं पारिजातं च तन्मूले नवरत्नवेदिकाम् ।

तस्योपरिमणेः पीठे न्यसेत् साधक सत्तमः ।।११०।।

तब आधार शक्तिपूर्वक पीठन्यास करना चाहिए। इसक्रम में प्रकृति, कमठ, शेषनाग, पृथ्वी तब सुधाम्बुधि (सुधासागर), मणिद्वीप, उसमें चिन्तामणिगृह, श्मशान, पारिजातवृक्ष उसके मूल में निर्मित नवरत्नों से बनी वेदिका, उस वेदिका पर मणियों से बने हुए पीठ (सिंहासन) का, उत्तम साधक न्यास करे॥११०॥

चतुर्दिक्षु मुनीन्देवाञ्शिवांश्च शवमुण्डकान् ।
धर्मांश्चैवाप्यधर्मांश्चपादगात्रचतुष्टये ॥१११॥
हृदि शेषं तथा पद्मं सूर्यं सोमं महेश्वरि ।
वैश्वानरं तथा सत्वं रजश्चैवतमस्तथा ।
आत्मानं चैव विन्यस्य शक्तिरष्टदलेन्यसेत् ॥११२॥
इच्छा ज्ञाना क्रियाचैव कामिनी कामदायिनी ।
रति रतिप्रिया नन्दा कर्णिकायां मनोन्मनी ॥११३॥

हे महेश्वरि! उसपीठ की चारों दिशाओं में मुनि, देवता, शिवा शवमुण्डों और धर्म-अधर्म आदि का उसपीठ के चारोंपादों में न्यास करे। अपने हृदय में अष्टदलकमल के आठदलों में शेष, पद्म, सूर्य, सोम, वैश्वानर, सत्व, रज, तम का न्यास कर, अष्टदल कमल की कर्णिकाओं में इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिप्रिया, नन्दा इन आठशक्तियों का मनोन्मनी न्यास करे॥१११-११३॥

वाग्भवं प्रथमं चोत्कापरायै तदनंतरम् ।
अपरायैपरापरायैहसौवीध्यमतःपरम् ॥११४॥
सदाशिव महाप्रेतङे तं पद्मासनं नमः ।
इत्येवं देवि मन्त्रोऽयं पीठन्यासउदाहृतः ॥११५॥

पहले वाग्भव **ऐं**, तब **उत्कापरायै, अपरायै, परापरायै** तत्पश्चात् **हसौवीध्यम्** तदनन्तर **सदाशिवमहाप्रेताय तं पद्मासनं नमः** कहकर—

हे देवि! इसप्रकार का **ऐं उत्कापरायै अपरायै परापरायै हसौ-वीध्यम् सदाशिवमहाप्रेताय तं पद्मासनं नमः।** यह पीठन्यास का मन्त्र बताया गया है॥११४-११५॥

इति पीठं पूजयित्वा घटं संस्थापयेत्—इसप्रकार से पीठपूजन कर घटस्थापन करना चाहिए।

* घटस्थापनविधि *

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे—जो **स्वतन्त्रतन्त्र** में कही गयी है।

कलां कलां गृहीत्वा तु देवानां विश्वकर्मणा ।
निर्मितोऽयं सुरैर्यत्नात्कलशस्तेन उच्यते ।।११६।।

विश्वकर्मा के द्वारा प्रयत्नपूर्वक देवताओं की एक-एक कलाओं को लेकर घट का निर्माण किया गया। इसीलिए इसप्रकार के घट को कलश कहा जाता है।।११६।।

सौवर्णं राजतं वापि मार्तिकं काचिकोत्थितम् ।
क्षालयेदस्त्र मन्त्रेण कुम्भं सम्यक् सुरेश्वरि ।।११७।।

हे सुरेश्वरि! सोना, चाँदी, मिट्टी या काँच के बने कुम्भ को लेकर साधक भलीभाँति उसे अस्त्रमन्त्र **फट्** से प्रक्षालित करे।।११७।।

ततश्चकारणं दिव्यं समानीयघटं स्थितम् ।
वेष्टितं रक्तवस्त्रेण रक्तमाल्येन भूषितम् ।।११८।।

तब दिव्य कारणद्रव्य लाकर, उसे घट में स्थित कर, लालवस्त्र से घट को लपेट कर, लालमालाओं से उसे सुशोभित करे।।११८।।

वामभागे महेशानि मंडलं चतुरस्त्रकम् ।
तत्र संस्थापयेद् भक्त्या देवीबुद्ध्या वरानने ।
मण्डले कलशे द्रव्ये बह्न्यर्क शशि मण्डलम् ।।११९।।

हे महेशानि! हे श्रेष्ठ मुखवाली! वामभाग में चतुरस्त्र मण्डल बना कर उसपर देवी की बुद्धि (भावना) से, साधक भक्तिपूर्वक उपर्युक्त कलश को स्थापित करे। मण्डल पर स्थापित कलश के द्रव्य में वह्नि, सूर्य और शशि (चन्द्रमा) के मण्डल के तत्त्वों की स्थापना करे।।११९।।

इदं द्रव्यं तु निजशुद्धितत्त्वोक्त प्रकारेण संशोधितं कुर्यादिति– इसप्रकार से द्रव्य और आत्मशुद्धि, तत्त्वोक्तरीति से करना चाहिए।

भावचूडामणावप्युक्तम्–भावचूडामणि नामक ग्रन्थ में भी कहा है।

स्ववामभागे षट्कोणं तन्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रकम् ।
लिखित्वा तत्र कुंभं वै सौवर्णं राजतं तथा ।।१२०।।
ताम्रं भूमिमयं वापि यद्वालोहविवर्जितम् ।
आधारे स्थापयेद्यंत्रं सौवर्णं वापि राजतम् ।।१२१।।

अपने वामभाग में षट्कोण बनाये, उसके मध्य में ब्रह्मरन्ध्रक (बिन्दु) लिखकर उसपर सोना, चाँदी, ताम्बा का बना या भूमिमय (मिट्टी का बना) अथवा लोहे को छोड़कर अन्य किसी भी धातु का बना, घट स्थापित करना चाहिए। उपर्युक्त घट को आधार बनाकर उसपर सोने या चाँदी के बने यन्त्र को स्थापित करे।।१२०-१२१।।

सौवर्णं राज्यदं प्रोक्तं राजतं मोक्षदं स्मृतम् ।
कांस्यं च शान्तिदं चैव मृन्मयंपुष्टिदायकम् ।।१२२।।

स्वर्णनिर्मित घट राज्य देने वाला कहा गया है तो चाँदी का मोक्षदायक, काँसे का शान्ति देने वाला तथा मिट्टी का बना, पुष्टिदायक बताया गया है॥१२२॥

ततः शंखं वीरपात्रादिकं च स्थापयेत्–तब शंख एवं वीरपात्र आदि की स्थापना करनी चाहिए।

अन्यत्रापि–अन्यत्र भी कहा गया है।

शंखं मैरेयपात्रं तु स्थापयेन्मध्यभागतः ।
श्रीविद्योक्तविधानेन ततः पूजां समारभेत् ।।१२३।।

मध्यभाग में शंख के बने मैरेयपात्र की स्थापना करे और तब श्रीविद्याप्रसंग में कहे गये विधान से पूजा करे॥१२३॥

समयाचारेऽप्युक्तम्–समयाचार में भी कहा है।

सामान्यार्घ्यं ततः कृत्वा पयसा साधकोत्तमः ।
तज्जलैर्मंडलं कृत्वा पात्राणिस्थापयेदथ ।।१२४।।

तब श्रेष्ठसाधक जल से सामान्यअर्घ्य करके उसजल से मण्डल का निर्माण कर पात्रों की स्थापना करे॥१२४॥

कुमारीकल्पेऽप्युक्तम्–कुमारीकल्प में भी कहा है।

ततोऽर्घ्यं कारयेन्मन्त्री स्ववामे सुरसुन्दरि ।
अर्घ्यद्रव्यमर्घपात्रे निक्षिप्य यत्नतः सुधीः ।।१२५।।
कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं स्वयंभूकुसुमं तथा ।
नाधर्मो विद्यते तत्र महामन्त्रप्रसाधने ।।१२६।।

हे सुरसुन्दरि! तब मन्त्रसाधक, अर्घपात्र में कुण्डगोलोद्भव, स्वयंभू-कुसुम आदि अर्घ्य योग्यद्रव्यों को प्रयत्नपूर्वक रखकर, बुद्धिमान-साधक अपने वामभाग में अर्घ्य की योजना करे। महामन्त्र की साधना हेतु ऐसा करने से किसीप्रकार का अधर्म नहीं होता॥१२५-१२६॥

कुलार्णवादावप्युक्तं–कुलार्णव आदि में भी कहा गया है।

कुलं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रामैथुनमेव च ।
अन्योन्यं नित्यता ज्ञेया पंचानां पूजने तथा ।।१२७।।

कुल (कारण), मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन पूजन में इन पाँचों की (परस्पर) एक दूसरे से नित्यता जाननी चाहिए॥१२७॥

अन्यत्राप्युक्तं—अन्यत्र भी कहा गया है।

शङ्कया जायतेग्लानिः शंकयाविघ्नभाजनम् ।
शंकयाधोगतिं यान्ति तस्माच्छंकां परित्यजेत् ।।१२८।।

शंका करने से ग्लानि उत्पन्न होती है। शंका से साधक विघ्न का पात्र होता है। शंका से साधक अधोगति को जाते हैं। इसलिए शंका का परित्याग करना चाहिए।।१२८।।

दिव्यकुंभसहस्रैस्तु मांसभारशतैरपि ।
नैवतृप्तिर्भवेद्देव्याः कुलामृतं विना ध्रुवम् ।।१२९।।

हजारों दिव्यकुम्भों का कारण तथा सैकड़ों भार (मात्राविशेष) का मांस देवी को निवेदित किया जाय किन्तु कुलामृत के बिना देवी की तृप्ति नहीं हीं होती, यह सुनिश्चित है।।१२९।।

एतत्तु दिव्यद्रव्यादिकं शुद्धिः तत्वोक्तप्रकारेण शोधयित्वा घटशंखयोर्मध्ये निःक्षिपेदिति—इसप्रकार से दिव्यद्रव्यादि का तत्त्वोक्तप्रकार से शोधन कर, उन्हें घट और शंख के मध्य स्थापित करे।

ततः पीठमये देहे चिन्तयेदिष्टदेवता ।।१३०।।

तब अपने शरीर को पीठमयमान कर इष्टदेवता का चिन्तन करे।।१३०।।

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे—जो **स्वतन्त्रतन्त्र** में कहा गया है।

ततः कामकलाध्यानादावाह्य कालिकां शिवाम् ।
कूर्माख्यमुद्रया पुष्पं चक्रमध्ये निधापयेत् ।।१३१।।

तब कामकला के ध्यान से कालिका, शिवा का आवाहन कर, चक्र के मध्य में कूर्म नामक मुद्रा से पुष्प, स्थापित करे।।१३१।।

अन्यत्राऽपि—अन्यत्र भी कहा है।

देवीं सुषुम्णा प्रादेशादानीय ब्रह्मरन्ध्रकम् ।
वामनासापुटे ध्यात्वा निर्यातं स्वांजलि स्थितम् ।
पुष्पमारोप्य तत्पुष्पं प्रतिमादौ निधापयेत् ।।१३२।।

देवी को सुषुम्नामार्ग से ब्रह्मरन्ध्र तक ले आये। तत्पश्चात् बायें नासिकाविवर में ध्यान करते हुए उन्हें वहाँ से बाहर निकाल कर अपनी अंजलि में स्थित पुष्प पर आरोपित करे, तब उस पुष्प को प्रतिमा, यन्त्र आदि पर स्थापित करे।।१३२।।

भैरवतंत्रेऽप्युक्तं—**भैरवतन्त्र** में भी कहा गया है।

ततः पूर्वोक्त रूपां तां ध्यायेच्चैव हि दक्षिणाम् ।
योगिनीचक्रसहितां महाकालसमन्वितां ।।१३३।।

तब पहले कहे हुए रूपवाली उस दक्षिणादेवी का जो महाकाल से समन्वित हो योगिनीचक्रसहित स्थित हैं, साधक ध्यान करे।।१३३।।

कालीतन्त्रमप्याह—कालीतन्त्र भी कहता है।

ततो हृदयपद्मान्तः स्फुरन्तीं परमांकलां ।
यन्त्रमध्ये समावाह्य न्यासजालं समाविशेत् ।।१३४।।

तब हृदयकमल में स्फुरित होती हुई **परमाकला** का यन्त्र के मध्य भाग में स्थित बिन्दु पर आवाहन कर, न्यास-जाल का समावेश करे।।१३४।।

कुमारीकल्पेऽपि—कुमारीकल्प में भी कहा गया है।

ततो हृदयपद्मान्तः स्फुरन्तीं विद्युताकृतिम् ।
सुषुम्नावर्त्मनानीत्वा शिरः स्थाने महेश्वरि !।१३५।।
ततोपि हृदयासन्ने पद्मान्तरे समुन्नयेत् ।
वामयानासया देवि वायुमन्त्रेण मन्त्रवित् ।।१३६।।

हे देवि! हे महेश्वरी! तब हृदयकमल के अन्दर बिजली के आकार की स्फुरित होती हुई देवी को मन्त्रवेत्तासाधक, सुषुम्नामार्ग से शिरःस्थान में ले जाकर, उसे भी भलीभाँति बायीं नाक द्वारा वायुमन्त्र **(यं)** से हृदयस्थान में स्थित दूसरे कमल में ले जायें।।१३५-१३६।।

देवेशीं निजमन्त्रेण चक्रादावाह्येत् सुधी ।
ध्यात्वा कामकलामादौ ध्यायेद्देवीमतः परम् ।।१३७।।

तब देवेशी का निजमन्त्र (गुरूपदिष्टमन्त्र) से बुद्धिमान् साधक चक्र से आवाहन करे। इस निमित्त पहले कामकला का ध्यान करे तत्पश्चात् देवी का ध्यान करना चाहिए।।१३७।।

तदुक्तं भावचूडामणौ—जो **भावचूड़ामणि** में कहा है।

कामकलाध्यान

मुखविन्दुवदाकारं तदधः कुचयुग्मकम् ।
सर्वविद्या सुसम्पूर्ण सर्ववाग्विभवप्रदम् ।।१३८।।
सर्वार्थसाधकं देवं सर्वरञ्जनकारकम् ।
तदधः सवरार्द्धं च सुपरिष्कृतमण्डलम् ।।१३९।।
सर्वदेवादिभूतं च सर्वदेवनमस्कृतम् ।
सर्वाह्लादनसम्पूर्णम् सर्वरंजनकारकम् ।।१४०।।
सवार्थसाधनं देवं सर्ववश्यप्रवर्त्तकम् ।
एतत्कामकलाध्यानं संगोप्यं साधकोत्तमैः ।।१४१।।

कामकला देवी का मुख, बिन्दु की भाँति (आकार का) है। उसके निचलेभाग में स्तनद्वय हैं। ये दोनों स्तन सभी विद्याओं से भलीभाँति परिपूर्ण, वाणीसम्बन्धी सबप्रकार का वैभव प्रदान करने वाले, सभी अर्थों की सिद्धि करने वाले, दिव्य, सबको प्रसन्न करने वाले हैं। उसके नीचे वरार्ध के सहित सुन्दर ढंग से बनाया हुआ मंडल है। वह सभी देवताओं का आदिभूत तथा सभी देवताओं द्वारा नमस्कार किया जाने वाला, सबको प्रसन्न करने की क्षमता से सम्पूरित, सभी को रंजित करने वाला, सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला, सभी को वशीभूत करने वाला है। इसप्रकार के कामकला के ध्यान को उत्तमसाधकों द्वारा अपात्रों की दृष्टि से गुप्त करके भलीभाँति रखना चाहिए।।१३८-१४१।।

स्वतन्त्रतन्त्रेऽपि–स्वतन्त्रतन्त्र में भी कहा गया है।

देव्याध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वदेवोपसेवितम् ।।१४२।।

मैं सभी देवताओं द्वारा उपासित (प्रयोग में लाये गये) देवी के ध्यान को कहूँगा।।१४२।।

अथ ध्यानम्–

*** कालीध्यान ***

अंजनाद्रिनिभां देवीं करालवदनां शिवाम् ।।१४३।।
मुण्डमालावलीकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम् ।
महाकालहृदम्भोजस्थितां पीनपयोधराम् ।।१४४।।
विपरीतरता सक्तां घोर द्रष्टां शिवेन वै ।
नागयज्ञोपवीतां च चन्द्रार्धकृत शेखराम् ।
सर्वालङ्कार संयुक्तां मुक्तामाला विभूषिताम् ।।१४५।।
मृतहस्तसहस्रैस्तु बद्धकांचीं दिगम्बराम् ।
शिवाकोटि सहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम् ।
रक्तपूर्णमुखांभोजां मद्यपानप्रवृत्तिकाम् ।।१४६।।
विगतासु किशोराभ्यां कृतकर्णावतंसकाम् ।
कंठावसक्तमुंडालीं गलद्रुधिरचर्चिताम् ।।१४७।।
श्मशानवह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशववंदिताम् ।
सद्यःछिन्नशिरः खड्गवराभीतिकराम्बुजाम् ।।१४८।।

वे देवी, अञ्जन के पर्वत की आभा के समान कालेवर्ण की हैं। उनका मुख भयंकर है किन्तु वे शिव की शक्ति अथवा कल्याणकारिणी हैं, सबका

कल्याण करने वाली हैं। वे मुण्डों की माला की पंक्तियों से ढँकी हुई हैं। उनके केश खुले हैं। वे मुस्कुराते हुए मुखवाली हैं। वे महाकाल के हृदयकमल पर स्थित हैं। उनके पयोधर मोटे और पुष्ट हैं। वे विपरीत रतिक्रम में महाकाल से मिली हुई हैं उनके दांत भयानक हैं। वे शिव पर आरूढ़ हैं। उन्होंने नागों का यज्ञोपवीत और मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण किया है। वे सभीप्रकार के आभूषणों से युक्त हैं तथा मोतियों की मालाओं से सुशोभित हैं। वे हजारों मृतकों के हाथों को करधनी के रूप में बाँधे हुए हैं। किन्तु स्वयं दिगम्बरा हैं। वे करोड़ों शिवाओं तथा हजारों योगिनियों से सुशोभित हैं। उनके मुखकमल, रक्त से परिपूर्ण हैं किन्तु उनकी मद्यपान में प्रवृत्ति है। वे प्राणरहित किशोरों का, कर्णावतांस (कर्णफूल) नामक आभूषण धारण किये हैं। उनके गले में खून से लथपथमुण्डों की माला, लटक रही है। वे श्मशान की अग्नि के मध्य स्थित हैं। उस अवस्था में ब्रह्मा और विष्णु उनकी वन्दना कर रहे हैं। वे अपने हाथों में तत्काल कटा हुआ मस्तक, खड्ग, वर और अभय मुद्राएँ धारण किये हैं॥१४३-१४८॥

अन्यत्रापि–अन्यत्र भी कहा है।

ऊर्द्ध्वं वामे कृपाणं करकमलतलेछिन्नमुण्डतथाधः।
सव्येऽभीतिं वरं च त्रिजगदध हरे दक्षिणे कालिकेति।।१४९।।

हे तीनों लोकों का पापहरण करनेवाली दक्षिणकालिका! आपने-अपने बायेंहाथ में ऊपर की ओर कृपाण तथा नीचे की ओर कटा हुआ मस्तक धारण कर रखा है। इसी प्रकार आपके दाहिने हाथों में ऊपर की ओर अभय तथा वर मुद्राएँ हैं॥१४९॥

स्वतन्त्रतन्त्रेऽपि–स्वतन्त्रतन्त्र में भी कहा गया है।

ध्यात्वा देवीं समावाह्य धेनुमुद्रां च दर्शयेत् ।
ततश्च सर्वकोणेषु देवीरावाहयेत् सदा ।।१५०।।

देवी का ध्यान करने के पश्चात् उनका आवाहन कर धेनुमुद्रा का प्रदर्शन करे। तत्पश्चात् यन्त्र के सभी कोणों में सदैव देवी का आवाहन करे॥१५०॥

देवीरिति अंग देवीरित्यर्थः–निचलीपंक्ति में देवी शब्द काली की अंगदेवियों का बोधक है।

तदुक्तं कालीतन्त्रे–जो कालीतन्त्र में भी कहा है।

सर्वाः श्यामा असिकरामुण्डमालाविभूषणाः ।।१५१।।

सभी (अंगदेवियाँ) श्यामवर्ण की हाथों में तलवार ली हुई तथा मुण्डमाला से विभूषित हैं॥१५१॥

श्रुतावप्युक्तं—वेदों में भी कहा है।

काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
विप्रचित्ता उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता नीला घना ।
वलाका मात्रा मुद्रा मिता पंचदश कोणगा इति।।१५२।।
तर्ज्जयन्तीं वाम हस्तेन धारयन्त्यश्च सस्मिताः ।।१५३।।

काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, नीला, घना, वलाका, मात्रा, मुद्रा, मिता, ये पन्द्रह अंगदेवियाँ, पंच-त्रिकोण यन्त्र के पन्द्रह कोणों में स्थित हैं। ये सभी मुस्कराती हुई अपने बायें हाथ से तर्जन कर रहीं हैं॥१५२-१५३॥

ततोऽष्ट दलेषु अष्टदेवीरावाहयेत्—तब अष्टदलकमल के आठदलों में आठदेवियों का आवाहन करे।

तदुक्तं कुलसम्भवे—जैसा कुलसम्भवतन्त्र में कहा है।

बहिर्त्रिकोणात् मण्डलतश्चापि ब्राह्मी नारायणी तथा ।
माहेश्वरी च चामुंडा कौमारी चापराजिता ।।१५४।।
वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च ।।१५५।।

त्रिकोण के बाहरीमण्डल के बाद के अष्टदलकमल के दलों में ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुंडा, कौमारी, अपराजिता, वाराही, नारसिंही इन आठ देवियों का क्रमशः पूजन करना चाहिए॥१५४-१५५॥

*** ब्राह्मीध्यान ***

ब्राह्मीं हंससमारूढां स्वर्णवर्णां चतुर्भुजाम् ।
चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रां च कूर्चं च चंपकं तथा ।।१५६।।
दण्डं पद्माक्षसूत्रं च दधतीं चारुहासिनीम् ।
जटाजूटधरां देवीं भावयेत् साधकोत्तमः ।।१५७।।

उत्तमसाधक हंस पर भलीभाँति आरूढ़, सुनहले रंग की, चार-भुजाओं और चार मुखोंवाली, तीन नेत्रों, कूर्च (मुट्ठीभरकुशा), चंपक, दण्ड, पद्माक्षसूत्र धारण की हुई, सुन्दर हँसीवाली, जटाजूटधारण करने वाली, ब्राह्मी देवी की भावना करे॥१५६-१५७॥

*** नारायणी ध्यान ***

नारायणीं महादीप्तां श्यामां गरुडवाहिनीम् ।
नानालंकारसंयुक्तां चारुकेशीं चतुर्भुजाम् ।।१५८।।

घंटां कपालं चक्रं च शंखं संदधतीं पराम् ।
मधुमत्तमदोल्लोलदृष्टिं सर्वांगसुन्दरीम् ।।१५९।।

नारायणी देवी का, अत्यन्त तेजस्वी, श्यामवर्ण की, गरुड़ पर सवार, अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित, सुन्दर केशवाली, चार-भुजाओंवाली, जिनमें घंटा, कपाल, चक्र और शंख धारण की हों। ऐसी सर्वश्रेष्ठ, मधुपान से मत्त तथा मद्यपान से चञ्चलदृष्टिवाली, सर्वांगसुन्दरी देवी के रूप में ध्यान करे॥१५८-१५९॥

*** माहेश्वरीध्यान ***

माहेश्वरीं वृषारूढां शुक्लां त्रिनयनान्विताम् ।
कपालं डमरूं चैव वरदाभयशूलकम् ।।
टंकं च दधतीं देवीं नानाभरणभूषिताम् ।।१६०।।

बैल पर आरूढ़, शुक्लवर्ण की, तीननेत्रों से युक्त, अपने हाथों में कपाल, डमरू, वरद और अभय मुद्राएँ, शूलक (त्रिशूल) और टंक (कुठार), धारण की हुई अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित माहेश्वरी देवी का ध्यान करे॥१६०॥

*** चामुण्डाध्यान ***

चामुण्डां मंदहास्यां विकटितदशनां भीमवक्त्राम् त्रिनेत्राम् ।
नीलांभोजप्रभयाँ प्रमुदितहृदयां नारमुंडालिमालाम् ।।
खड्गं शूलं कपालं नरशिरघटितं स्वकरे धारयन्तीम् ।
प्रेतारूढां प्रमत्तां मधुमदमुदितां भावयेद् चण्डरूपाम् ।।१६१।।

चामुण्डा की मन्दहँसीवाली, फैले हुए दाँतोंवाली, भयानक-मुखमण्डलवाली, तीन नेत्रों से युक्त, नीलेकमल की प्रभा के समान आभावाली, प्रसन्नहृदयवाली, नरमुण्डों के समूह की माला धारणकरने वाली, अपने हाथों में खड्ग, शूल, कपाल और मनुष्य का घटितशिर धारण की हुई, प्रेत पर सवार, प्रमत्त, मधु के मद से मुदित, भयंकररूपवाली देवी के रूप में भावना करे॥१६१॥

*** कौमारीध्यान ***

कौमारीं कुंकुमां च त्रिनेत्रां शिखिसंस्थिताम् ।
चतुर्भुजां शक्तिपाशमंकुशं वरदायिनीम् ।
नानालंकारसंयुक्तां प्रमत्तां परिचिन्तयेत् ।।१६२।।

कौमारीदेवी का कुंकुम की आभावाले शरीर से युक्त, तीननेत्रों वाली, मोर पर सवार, चारभुजाओंवाली, अपने हाथों में शक्ति, पाश, अंकुश, वरदायीमुद्रा धारण करने वाली, अनेक अलंकारों से संयुक्त प्रमत्तदेवी के रूप में चिन्तन करे॥१६२॥

*** वाराहीध्यान ***

वाराहीं धूम्रवर्णां च वाराहवाहनां शुभाम् ।
फलकं खड्ग मुशलं हलं वरभुजैर्धृताम् ॥१६३॥

वाराही का, धूम्रवर्णवाली, वाराह को वाहन बनाई हुई, शुभ तथा अपनी श्रेष्ठ भुजाओं में फलक (भाला), खड्ग, मुशल और हल धारण की हुई, ध्यान करे।

*** नारसिंहीध्यान ***

नारसिंही नृसिंहस्य विभ्रती सदृशं तनुम् ॥१६४॥

नारसिंही का नृसिंह के समान शरीरधारण की हुई ध्यान करे॥१६४॥

इति काल्यादि पंचदशदेवीः प्रणवेन ।
ब्राह्याद्या चाष्टदेवीरष्टदीर्घस्वरेण तु ॥१६५॥

काली आदि पन्द्रह देवियों का प्रणव से, ब्राह्मी आदि आठ देवियों का आठ दीर्घस्वरों आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ ऐ औ और अः से पूजन करे।

तदुक्तं श्रुतौ–जैसा वेदों में कहा है।

आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ ऐ औ अः–द्वितीय, चतुः, षष्ठ, अष्ट, दश, द्वादश, चतुर्दश, षोडश स्वरभेदेन प्रणवेनांगमिति।

आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, ऐ, औ, अः प्रणव के अंगरूप, दूसरे, चौथे, छठें, आठवें, दसवें, बारहवें, चौदहवें, एवं सोलहवें स्वर से पूजन करे।

ततश्च गुरुपंक्तिः पूजयेत्–तत्पश्चात् गुरुपंक्ति का पूजन करे।

तदुक्तं–जैसा कहा भी है।

वायव्यादीशपर्यन्तं गुरुपंक्तिं समर्चयेत्–वायव्य से ईश (ईशान), पर्यन्त, गुरुपंक्ति का भलीभाँति पूजन करे।

भावचूडामणावप्युक्तं–भावचूड़ामणि में भी कहा गया है।

श्रीभैरव उवाच–

मातर्देवि महामाये बन्धमोक्षप्रवर्तिनी ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि गुरुक्रममनुत्तमम् ॥१६६॥

श्रीभैरव बोले—हे महामाये! हे मात:! हे देवि! आप जीव के बन्ध और मोक्ष का प्रवर्तन करने वाली हैं। इस समय मैं आपसे उत्तम गुरुक्रम के सम्बन्ध में सुनना चाहता हूँ॥१६६॥

श्रीदेव्युवाच—

गुरुक्रमस्तु बहुधा मंत्रविस्तारगौरवात् ।
देवीनामप्यनंतस्तु तत्कथं कथयामिते ।।१६७।।

श्रीदेवी बोलीं—मन्त्रविस्तार के गौरव के कारण गुरुक्रम अनेक प्रकार का है। देवी के भी अनन्त गुरुक्रम हैं। मैं तुमसे उसे कैसे कहूँ॥१६७॥

अज्ञात्वा गुरुक्रमं देव नष्टमार्गो भविष्यति ।
नष्टेमार्गे मन्त्रविद्या नतादृक् फलगोचरः ।।१६८।।

हे देव! गुरुक्रम न जानकर उपासना करने से मार्ग नष्ट हो जायेगा। मार्ग के नष्ट हो जाने से मन्त्रविद्या का वैसा (उचित) फल नहीं मिलता है॥१६८॥

गुरूणां शिष्यभूतानां नास्ति चेत् संतति क्रमः ।
तन्त्रमन्त्राश्चविद्याश्च निःफला नात्र संशयः ।।१६९।।

यदि गुरुओं का और उनके शिष्यरूपी संतति का क्रम न हो तो सभी तन्त्र, मन्त्र एवं विद्याएँ निष्फल हो जाती हैं। इसमें कोई संशय नहीं है॥१६९॥

तस्मात् सर्वदेवेश संक्षेपाच्छृणुतान्गुरून् ।
आदौ सर्वत्र देवेश मंत्रदः परमो गुरुः ।।१७०।।

हे सबके देवेश! इसलिए आप संक्षेप में अब उन गुरुओं के विषय में सुने। हे देवेश! सबके आरम्भ में मन्त्र देनेवाला गुरु ही श्रेष्ठ गुरु होता है॥१७०॥

तत्रादौ कालिका देवी तस्या श्रृणु गुरु क्रमम् ।
महादेवी महादेव त्रिपुरा चैव भैरवः ।।१७१।।

सर्वप्रथम गुरुक्रम में कालिका देवी के गुरुक्रम को सुनिये। इनमें महादेवी, महादेव, त्रिपुरा और भैरव, ये चारों दिव्यौघ के गुरु कहे गये है॥१७१॥

दिव्यौघा गुरवः प्रोक्ताः सिद्धौघा कथयामि ते ।
ब्रह्मानन्दपूर्णदेवौ चलचित्तश्चलाचलः ।।१७२।।

कुमारः क्रोधनश्चैव वरदः स्मरदीपनः ।
माया मायावती चैव मानवौघा शृणु प्रियेः ।।१७३।।

अब मैं तुमसे सिद्धौघ गुरुओं के विषय में कहती हूँ। ब्रह्मानन्द, पूर्णदेव, चलचित्त, चलाचल, कुमार, क्रोधन, वरद, स्मरदीपन, माया, मायावती, ये सिद्धौघ के गुरु हैं। हे प्रिये! अब मानवौघ के गुरुओं के विषय में सुनो।।१७२-१७३।।

विमलः कुशलश्चैव भीमसेनः सुधाकरः ।
मीनोगोरक्षकश्चैव भोजदेवः प्रजापतिः ।।१७४।।
मूलदेवोरन्तिदेवो विघ्नदेवो हुताशनः ।
समयानन्द सन्तोषौ कालिका गुरवः स्मृता ।।१७५।।

विमल, कुशल, भीमसेन, सुधाकर, मीन (मत्स्येन्द्र), गोरक्षक (गोरखनाथ), भोजदेव, प्रजापति, मूलदेव, रन्तिदेव, विघ्नदेव, हुताशन, समयानन्द, सन्तोष ये कालिकादेवी के मानवौघ गुरुक्रम के गुरु, स्मरण किये गये हैं।।१७४-१७५।।

आनन्दनाथ शब्दान्तः गुरवः सर्वसिद्धिदा ।
स्त्रियोऽपि गुरुरूपाश्चेत देव्यन्ताः परिकीर्तिताः ।।१७६।।

आनन्दनाथ शब्दों से अन्त होने वाले उपर्युक्त गुरुगण सब प्रकार की सिद्धि देने वाले होते हैं। यदि स्त्रियाँ भी गुरुरूप में बताई गई हों तो वे देवी शब्द से नामांत वाली कही गई हैं।।१७६।।

मानवौघान्तिकेदेव स्वगुरुं परिपूजयेत् ।
देव्यास्तु दक्षिणेभागे महाकालं समर्चयेत् ।।१७७।।

मानवौघ गुरुओं के निकट अपने गुरु का भलीभाँति पूजन करे। तत्पश्चात् देवी के दाहिनेभाग में महाकाल की समर्चना करे।।१७७।।

कुमारी कल्पेऽपि–कुमारीकल्प में भी कहा है।

ब्राह्याद्या पूजयेत्पत्रे पत्राग्रे भैरवान्यजेत् ।
दिक्पालांस्तु ततो बाह्ये तदस्त्राणि च तद्बहिः ।।१७८।।

ब्राह्मी आदि मातृकाओं का अष्टदलकमल के दल पर पूजन करे। तत्पश्चात् दल के अगले भाग में अष्टभैरवों का तब बाहर की ओर आठ दिक्पालों का और उनके बाहर आठ अस्त्रों का पूजन करे।।१७८।।

अथ मूलदेवी पूजां कुर्यात्–तब मूलदेवी का पूजन करे।

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे–जो स्वतन्त्रतन्त्र में कहा गया है।

आवाहयेत्तु मण्डले मूलदेवीं प्रपूजयेत् ।
आग्नीशासुर वायव्यय मध्ये दिस्वंगपूजनम् ।।१७९।।

मंडल में मूलदेवी (इष्टदेवी) का आवाहन कर उनका पूजन करे। अग्नि, ईशानादि आदि दिशाओं में अंगपूजन, आसुर (नैर्ऋत्य), वायव्य, मध्य करे।।१७९।।

तन्त्रान्तरे च–अन्यतन्त्र में भी कहा है।

इष्टवाहृदयमाग्नेय्यामीशान्यां तु शिरो यजेत् ।
नैर्ऋत्यां च शिखा पूज्या वायव्यां कवचं यजेत् ।।१८०।।
अभ्यर्च्य पुरतोनेत्रं दिक्षु शस्त्रमथार्चयेत् ।
तर्पयेत्कालिकां देवीं सायुधां सपरिस्करान् ।
पाद्यादिभिश्च मूलेन देवीं सम्पूज्य तर्पयेत् ।।१८१।।

आग्नेय्यदिशा (अग्निकोण) में हृदय का पूजन कर, ईशानकोण में शिर का पूजन करे। नैर्ऋत्य में शिखा का पूजन कर, वायव्य में कवच का पूजन करना चाहिए। सामने की ओर पूर्व में नेत्रों का पूजन कर दिशाओं में शस्त्र का पूजन करे। तत्पश्चात् कालिकादेवी का आयुध एवं परिस्करों के सहित तर्पण करे। इस क्रम में पहले पाद्यादि से मूलमन्त्र के द्वारा देवी का भलीभाँति पूजन कर तर्पण करे।।१८०-१८१।।

इति पाद्यादिभिरिति षोडशोपचारादिभिरितिशेषः–पाद्यादि का तात्पर्य षोडशोपचारादि से समझना चाहिए।

तदुक्तं मन्त्ररत्नावल्यां–जैसा मन्त्ररत्नावली में कहा गया है।

*** षोडशोपचारकथन ***

पाद्यार्घ्याचमनीयं च स्नानं वसनभूषणम् ।
गंधं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।।१८२।।
ताम्बूलाचमनं स्तोत्रं तर्पणं च नमस्क्रिया ।
प्रयोजयेदर्चनायसूपचारांश्चषोडश ।।१८३।।

१. पाद्य, २. अर्घ्य, ३. आचमनीय, ४. स्नान, ५. वस्त्र, ६. आभूषण, ७. गंध, ८. पुष्प, ९. धूप, १०. दीप, ११. नैवेद्य, १२. ताम्बूल, १३. आचमन, १४. स्तोत्र (स्तुति), १५. तर्पण, १६. नमस्कार। पूजन में इन सोलह उपचारों का प्रयोग करना चाहिए।।१८२-१८३।।

पाद्यमर्घं निवेद्याथ तथैवाचमनीयकम् ।
मधुपर्काचमनं चैव गन्ध प्रसूनके ततः ।।१८४।।
धूपदीपौ च नैवेद्यं दशोपचारकं स्मृतम् ।।
गंधादिका नैवेद्यांता पूजा पंचोपचारिका ।।१८५।।

१. पाद्य, २. अर्घ निवेदित कर ३. आचमनीय, ४. मधुपर्क, ५. आचमन, ६. गन्ध, ७. प्रसून (पुष्प), तत्पश्चात् ८. धूप, ९. दीप, १०. नैवेद्य—ये दसपूजोपचार कहे गये हैं। गन्ध से आरम्भ कर नैवेद्यपर्यन्त गंध, पुष्प, धूप, दीप नैवेद्य इन पाँचों उपचारों से की जाने वाली पूजा पंचोपचारिका कही गई है।।१८४-१८५।।

पूजायां विशेषोप्युक्तः—पूजा में विशेष भी कहा गया है।

तदुक्तं कालीकल्पे—जो **कालीकल्प** में है।

श्रीपदं पूर्वमुद्धृत्य पादुकापदमुद्धरेत् ।
पूजयामि ततःपश्चात् पूजयेदंग देवताः ।।१८६।।

'श्रीपद' पहले बोल कर तब 'पादुकापद' का उच्चारण करे। तत्पश्चात् 'पूजयामि' कह कर अंगदेवताओं का पूजन करे।।१८६।।

पाद्यं च पादयोर्न्यसेत् नमोन्तेनं च मंत्रवित् ।
स्वाहामन्त्रेण देवेशि अर्घ्यं दद्यात्च्छिरोपरि ।।१८७।।

हे देवेशि! मन्त्रवेत्तासाधक को **नमः** से अन्त होने वाले मन्त्र से पाद्य को देवता के चरणों में न्यस्त करना चाहिए तथा वह **स्वाहा** मन्त्र से देवता के शिर के ऊपर अर्घ्य प्रदान करे।।१८७।।

आचमनं मधुपर्कञ्च स्वधा मन्त्रेण वैमुखे ।
स्नानं गंधं हृदा दद्यात्पुष्पाणि वौषडित्यपि ।।१८८।।

आचमन और मधुपर्क **स्वधा** मन्त्र से देवता के मुख में प्रदान करे तथा स्नान एवं गन्ध को हृद्मन्त्र **नमः** से दे। पुष्पों को **वौषट्** मन्त्र से समर्पित करे।।१८८।।

ततो निवेदयामिति सर्वंदद्यान्महेश्वरि ।।१८९।।

हे महेश्वरि! तत्पश्चात् शेष सभी उपचारों को **निवेदयामि** ऐसा कह कर दे।।१८९।।

नमोन्तेनेति शेषः—अन्त में **नमः** कहते हुए दे, यह शेष संकेत है।

अतएव स्वतन्त्रतन्त्रादौ—इसीलिए **स्वतन्त्रतन्त्रादि** में कहा है।

पाद्यादिभिश्च मूलेन देवीं संपूज्य साधकः ।।१९०।।

साधकगण मूलमन्त्र से पाद्यादि के द्वारा देवी का पूजन करें।।१९०।।

इति साम्प्रदायिकाः—ऐसा सम्प्रदायविशेष के साधकों का कथन है।

अत्रास्याः पूजादिकं सर्वं कार्य्यं मूलेन साधकोत्तमैरिति—यहाँ इसका उत्तम साधकों द्वारा पूजादि सभी कार्य, मूलमन्त्र से किया जाना चाहिए।

यामलवचनात्—यामलग्रन्थों के वचन के आधार पर।

मूलेनावाहनं तेनैव पूजनमित्युपनिषद्वचनाच्च विहितेतरं पर सांप्रदायिकवचनं।

मूलमन्त्र से आवाहन करके उसी से पूजन भी करे। यह उपनिषदों के वचन के अनुसार विहित है। इसके अतिरिक्त अन्य साम्प्रदायिक साधकों का भी कथन है।

अन्यथा तेनैवेत्येवकार गर्भपाठेन्नान्य योग व्यवच्छेदप्रत्ययात्।

अन्यथा उसी से ही ऐसे गर्भपाठ से अन्य योगों का व्यवच्छेद उल्लंघन न हो ऐसे विश्वास के साथ पूजन करे।

साम्प्रदायिकमतानुरोधेनेतरान्वय प्रत्याद्यविधेऽविरोधादिति।

साम्प्रदायिक मतों के आग्रह से अन्य अन्वय प्रत्ययादि के विरोध न होने से ऐसा समझना चाहिए।

तथा च—और भी।

मूलेनैव च पाद्यादिभिः पूजयेदितिनिगमः ।

मूलमन्त्र से ही पाद्यादि के द्वारा पूजन करना चाहिए ऐसा निगम (वेद) शास्त्रों का कथन है।

अन्यत्राप्युक्तं—अन्यत्र भी कहा है।

मध्यमानामिकाभ्यांतु मध्यपर्वेणि देशिकः ।
अंगुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा दीपं निवेदयेत् ।।१९१।।

हे देवेशि! विद्वान्साधक अपनी मध्यमा और अनामिका अंगुलियों के बिचले पोरों पर अंगूठे के अगलेभाग से दीप को धारण कर निवेदित करे।।१९१।।

उत्तोलनं तथाकृत्वा गायत्र्या मूलयोगतः ।
तत्त्वाख्यमुद्रया देवि नैवेद्यादि निवेदयेत् ।।१९२।।

हे देवि! उसे ही ऊपर उठाकर गायत्री और मूलमन्त्र के योग से तत्त्व नामक मुद्रा से देवि को नैवेद्यादि निवेदित करे।।१९२।।

मूलेनाचमनं दत्त्वा ताम्बूलं तु स्वमुद्रया ।।१९३।।

मूलमन्त्र से आचमन देकर ताम्बूल को स्वमुद्रा से अर्पित करे॥१९३॥

(**स्वमुद्रयेति तत्त्वमुद्रयेत्यर्थः**—स्वमुद्रा का यहाँ, तत्त्वमुद्रा ऐसा अर्थ समझना चाहिए।)

अस्त्रेण तु धूपदीपान्सम्पूज्यदापयेत्ततः ।
धूपादिकं च स्व स्व स्थाने दद्यात् ।।१९४।।

तब अस्त्रमुद्रा से धूप-दीप आदि प्रदान करे। धूप-दीप आदि को उनके अपने-अपने स्थान पर ही प्रदान करे॥१९४॥

तदुक्तं यामलादौ—जैसा कि **यामल** आदि में कहा गया है।

निवेदयेत् पुरोभागे गंधं पुष्पं च भूषणम् ।
दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो वाथ वामतः ।।१९५।।

देवता को गन्ध, पुष्प और आभूषण सामने की ओर से निवेदित करना चाहिए। दीप दाहिने से, सामने से या बाईंओर से, अर्पित करना चाहिए॥१९५॥

वामतस्तु तथा धूपं अग्रतो वामदक्षिणे ।
नैवेद्यं दक्षिणेवामे पुरतो नतु पृष्ठतः ।।१९६।।

तथा बाईं ओर आगे या दाहिनी ओर धूप अर्पित करे। नैवेद्य भी दायें, बायें या सामने की ओर देना चाहिए। पीछे की ओर नहीं॥१९६॥

पाद्यादिना तथा पश्चात्पूजयेदंग देवताः ।।१९७।।

और तब पाद्य आदि के द्वारा अंगदेवता का पूजन करे॥१९७॥

एवं सम्पूज्य पुनर्मूलदेवीमपि सम्पूज्य विर्सजयेदिति—इसप्रकार पूजन के पश्चात् पुनः मूलदेवी का पूजन कर, विसर्जन करे।

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे—जैसा कि **स्वतन्त्रतन्त्र** में कहा है।

ततः पुनर्मूलदेवीं मुद्रातर्पण पूजनैः ।
अर्चयित्वा जपंकृत्वा विसर्जयेत् ततः परम् ।।१९८।।

तब पुनः मुद्रा, तर्पण एवं पूजन सामग्रियों से अर्चन करके, जप करे। तत्पश्चात् उनका साधक विसर्जन करे॥१९८॥

कालीतन्त्रेप्युक्तम्—कालीतन्त्र में भी कहा है।

ततः सावहितो मन्त्री गुरुं नत्वा शिरः स्थितम् ।
देवीं ध्यात्वा चाष्टोत्तरसहस्रं प्रजपेन्मनुः ।
तेजोमयं जपफलं देव्या हस्ते समर्पयेत् ।।१९९।।

तब मन्त्रसाधक सावधानमन से अपने मस्तक पर स्थित गुरु को नमस्कार करे। तत्पश्चात् इष्टदेवी का ध्यान करते हुए १००८ की संख्या में मूलमन्त्र का जप करे। तदनन्तर उस जप के तेजोमय फल को देवी के हाथ में समर्पित करे।।१९९।।

ॐ गुह्याति गुह्य गोप्त्रीत्वं गृहाणास्मत् कृतंजपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ।।२००।।

इति मंत्रेण मंत्रवित् ।।

मन्त्रवेत्ता साधक **ॐ गुह्याति....महेश्वरि** इसमन्त्र से जपफल समर्पित करे।

मन्त्रार्थ—हे महेश्वरि! हे देवि! आप गुप्त से गुप्त रहस्यों की रक्षा करने वाली हैं, आप मेरे द्वारा किये गये जप को स्वीकार करें और आपकी कृपा से मेरे कार्य की सिद्धि हो।।२००।।

अन्यत्राऽपि—अन्यत्र भी कहा है।

परिवारां तमभ्यर्च्य पुनरभ्यर्च्चयेत्तनुम् ।
नत्त्वा च शिरसा देवीं स्वात्मनीव विसर्जयेत् ।।२०१।।

परिवार के सहित उस देवी का पूजन करने के पश्चात् मूर्त्ति में उसकी पुनः पूजा करे, मस्तक झुका कर देवी को प्रणाम करे। तत्पश्चात् अपने में ही उन्हें विसर्जित करे।।२०१।।

पुष्पानां विधिनिषेधौ तु तत्त्व एव विवेचयिष्यामः ।

पुष्पों के विधिनिषेध में हम तत्त्वों का ही विवेचन करेंगे।

अथ पद्धतिः

पद्धति कथन—

यथा कामनया वस्त्रद्वयं परिधाय स्त्रीव तिलकं चन्दनादिना कृत्वा स्थानतत्वोक्त स्थानेषु यथेच्छया स्थानं समाश्रित्य—

ॐ वज्रोदके हुँ फट् स्वाहेति मन्त्रेण जलमानीय आसनमभ्युक्ष्य उपविश्य।

साधक कामना के अनुरूप जोड़े-वस्त्र धारण कर, चन्दन, सिन्दूर आदि के द्वारा स्त्री की भाँति बिन्दुवत् तिलक करे। स्थानतत्त्व में कहे स्थानों के अनुसार यथेच्छस्थान पर पहुँच कर **ॐ वज्रोदके हुँ फट् स्वाहा** इस मन्त्र से जल लाकर, आसन पर छिड़क कर उस पर बैठे।

ॐ ह्रीं विशुद्ध सर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हूँ फट् इत्यनेन मन्त्रेण हस्तपादौ प्रक्षाल्य ।

ॐ ह्रीं विशुद्ध सर्वपापानि शमय अशेष विकल्पम् अपनय हूँ फट् इस मन्त्र से अपने हाथ पैरों को धोये।

मन्त्रार्थ–ॐ ह्रीं विशुद्ध सभी पापों का शमन करें। सभी विकल्पों को दूर कीजिये।

ॐ ह्रीं स्वाहेति आचम्य। त्रिकोणवृत्त चतुरस्त्रमंडलं कृत्वा ॐ ह्रीँ आधारशक्तये नमः इत्याधारशक्तिं सम्पूज्य तत्राधारं निधाय अस्त्राय फडिति पात्रं प्रक्षाल्य आधारे निधाय 'हृदयाय नमः' इति जलेन सम्पूर्य ॐ ह्रीं स्वाहा इससे आचमन करे। तत्पश्चात् त्रिकोण, वृत्त, चतुरस्त्र युक्त मण्डल बनाकर **'ॐ ह्रीँ आधारशक्तये नमः'** इस मन्त्र से आधारशक्ति का पूजन कर, उसपर आधार को रखकर **'अस्त्राय फट्'** इस मन्त्र से पात्र का प्रक्षालन कर आधार पर स्थापित करके **'हृदयाय नमः'** इस मन्त्र से उसे जल से सम्पूरित करे। तत्पश्चात्– **ॐ इति मन्त्रेण गंधादि निक्षिप्य अंकुशमुद्रया सूर्यमंडलाद्गंगे चेत्यादि मन्त्रेण तीर्थादि तत्रावाह्य धेनुमुद्रया-मृतीकृत्य तेनोदकेन चतुर्द्वाराणि संप्रोक्ष्य तेषुतेषु द्वारेषु द्वारदेवताः पूजयेत्।** **'ॐ'** इस मन्त्र से गन्धादि छोड़कर अंकुशमुद्रा से सूर्यमंडल से **'गङ्गे च--** इत्यादि मन्त्र से तीर्थादि का आवाहन करे। तदनन्तर धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके, उसी जल से चारों द्वारों का भलीभाँति प्रोक्षण करके, उन-उन द्वारों पर द्वार-देवताओं का पूजन करे।

यथा द्वारोर्ध्वे गं गणपतये नमः वामे क्षं क्षेत्रपालाय नमः। दक्षिणे वां वटुकाय नमः। अधः यां योगिनीभ्यो नमः एवमेव गां गङ्गायै नमः, यां यमुनायै नमः, श्रीं लक्ष्म्यै नमः, ऐं सरस्वत्यै नमः, एवं पूर्वद्वार क्रमेण द्वारचतुष्ट्यं पूजयेत्। जैसे द्वार के ऊपरीभाग में **गं गणपतये नमः** वामभाग में **क्षं क्षेत्रपालाय नमः**, दक्षिण में **वां वटुकाय नमः**, नीचे की ओर **यां योगिनीभ्यो नमः**। इसीप्रकार पूर्वी द्वार के क्रम से **गां गङ्गायै नमः, यां यमुनायै नमः, श्रीं लक्ष्म्यै नमः, ऐं सरस्वत्यै नमः** कहकर चारों द्वारों पर साधक, सम्बन्धित देवी-देवताओं का पूजन करे।

पुनर्वामांगसंकोचपूर्वक मंडपं प्रविश्य ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुँ फट् स्वाहेति सिद्धार्थाक्षतादि प्रक्षेपेण विघ्नोत्सारणं विधाय ॐ रक्ष रक्ष हुँ फट् स्वाहेति ।

भूमिमभिमंत्र्य आसुरेखे वज्ररेखे हुँ फट् स्वाहेति मन्त्रेण त्रिकोण-मंडलं कृत्वा, ॐ ह्रीं आधारशक्तये नमः'' इति मन्त्रेण संपूज्य तत्रासनं सम्पूज्य। ॐ ह्रीं आधारशक्तये कमलासनाय नमः। इति मन्त्रेणासनं सम्पूज्य। तत्रासनं संस्थाप्य हस्तेन धृत्वा।

पुनः बाएँअंग का संकोच करते हुए मंडप में प्रवेश करे। तब **'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुँ फट् स्वाहा'** इस मन्त्र से सिद्धार्थ (पीली सरसों), अक्षत आदि के प्रक्षेप से विघ्नों का उत्सारण करे। **'ॐ रक्ष रक्ष हुँ फट् स्वाहा'** इस मन्त्र से भूमि का अभिमन्त्रण करे। तत्पश्चात् **'आसुरेखे वज्ररेखे हुँ फट् स्वाहा'** इस मन्त्र से त्रिकोण और मण्डल बना कर **ॐ ह्रीं आधारशक्तये नमः।** इस मन्त्र से भलीभाँति पूजन कर, वहाँ आसन का पूजन करे। **ॐ ह्रीं आधारशक्तये कमलासनाय नमः।** इस मन्त्र से आसन का पूजन कर वहाँ आसन स्थापित कर हाथ से पकड़ कर **ॐ पृथ्वीतिमंत्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलंछंदः कूर्मेदेवता आसने विनियोगः। इति ऋष्यादिन्स्मृत्वा।**

पृथ्वित्वयाधृता लोके देवित्वं विष्णुना धृता ।
त्वंचधारय मां नित्यं पवित्रं कुरुचासनम् ।।

इति मन्त्रं पठित्वा वीराद्यासनेनोपविश्य द्रव्यशुद्धितत्त्वोक्तक्रमेण कुलद्रव्यं संशोध्य वामकर्णोपरि श्रीअमुकानन्दनाथ गुरुपादुकेभ्यो नमः। दक्षिणकर्णौ ऊर्ध्वे गं गणपतये नमः। मध्ये इष्टदेवतायै नमः। इति नत्वा पूर्ववदर्घं विधाय ततः किंचिज्जलं प्रोक्षणीपात्रेस्थाप्य।

पृथ्वीतिमन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलं छंदःकूर्मो देवता आसने विनियोगः। इससे ऋषि आदि का स्मरण करके **'पृथ्वित्वयाधृता लोके देवि त्वंविष्णुनाधृता त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्'** इस मन्त्र को पढ़े। तब वीरादि आसनों से बैठ कर द्रव्यशुद्धितत्त्वोक्तक्रम से कुलद्रव्य का संशोधन करे। तत्पश्चात् बायें कान पर **श्री अमुकानन्दनाथ गुरुपादुकेभ्यो नमः**, दाहिने कान के ऊपर **गं गणपतये नमः**, मध्य में **इष्टदेवतायै नमः** इससे नमस्कार करके पहले की भाँति अर्घ का विधान करे। तदनन्तर कुछ जल प्रोक्षणीपात्र में स्थापित कर दे।

तेनोदकेन पूजोपकरणं संप्रोक्ष्य स्वदक्षिणे पुष्पादिकं पृष्ठभागे देवतायाः कुलद्रव्याणि वामेचान्यर्घ्यादिकं धृत्वा।

ॐ पुष्पकेतु राजार्हते शताय सम्यक् संबद्धाय ।
ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसंभवे ।
पुष्पचयावसंकीर्णे हुँ फट् स्वाहेति मन्त्रेण ।।

पुष्पशुद्धिं विधाय—उस जल से पूजा के उपकरणों का संप्रोक्षण कर, अपने दक्षिण- भाग में पुष्पादि, पृष्ठभाग में देवता से सम्बन्धितदेवता के कुलद्रव्य तथा वामभाग में अन्य अर्घ्यादिक को धारण करके '**ॐ पुष्पकेतु राजार्हते शताय सम्यक् संबद्धाय ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसंभवे पुष्प- चयावसंकीर्णे हुँ फट् स्वाहा**' इस मन्त्र से पुष्पशुद्धि करे। **मूलेन सप्तधाभिमन्त्रित जलेनान्येषामपि शुद्धिं विधाय ॐ ह्रीं हूँ फट् स्वाहाकायवाक् चित्तं शोधयामीति मन्त्रेण कायवाक्चित्तशोधनं कृत्वा ॐ आत्मानं रक्ष रक्ष हुँ फट् स्वाहेति हृदि हस्तं दत्त्वा आत्मरक्षांविधाय वामपादाघातेन तर्ज्जनीमध्यमाभ्यामूर्द्धोर्ध्व तालत्रयेण दिव्यदृष्ट्या त्रिविध विघ्नानुत्सा-र्यच्छोटिकादिभिर्दशदिग्बंधनं विधाय प्राणायामादिकं कुर्यात्।** तत्पश्चात् मूलमन्त्र से सातबार अभिमन्त्रित किये जल से अन्यों की भी शुद्धि करके, **ॐ ह्रीं फट् स्वाहाकायवाक्चित्तं शोधयामि** इस मन्त्र से काय, वाक् और चित्त का शोधन करके, **ॐ आत्मानं रक्ष रक्ष हूँ फट् स्वाहा।** इससे हृदय पर हाथ रखकर, अपनी रक्षा करे। बायें पैर के घात से, तर्जनी और मध्यमा द्वारा एक के ऊपर एक, तीन तालों से, दिव्यदृष्टि द्वारा तीनों प्रकार के विघ्नों का उत्सारण करके छोटिका आदि द्वारा दसों दिशाओं में दिग्बन्धन कर, प्राणायाम आदि करे।

यथा—जैसे।

मूलाधारे मनः संयोज्य दक्षिणांगुष्ठेन दक्षिणनासापुटं धृत्वा मूलं प्रणवं मूलाद्यबीजं वा षोडशवारं जपन्वामनासया वायुमापूर्य कनिष्ठानामिकाभ्यां वामनासापुटं धृत्वा मूलादि चतुषष्ठिवारं जपन्वायुं कुम्भयित्वा द्वात्रिंशद्वारं जपन् दक्षिणनासायां वायुमारेचयेत् इत्येकः प्राणायामः। मूलाधार में मन को संयोजित कर, दाहिने अँगूठे से दाहिने नासिका छिद्र को पकड़ कर, मूलमन्त्र (प्रणव) या मूल आद्यबीज (ह्रीं) का १६ बार जप करते हुए बायीं नाक से वायु को भरकर, कनिष्ठिका और अनामिका उँगलियों से बायींनाक के छिद्र को पकड़ कर, मूलमन्त्रादि ऊपर बताये मन्त्रों का ६४ बार जप करता हुआ वायु को कुम्भायित (घड़े में भरे हुए की भाँति) स्थिर करे। तब पूर्वोक्तमन्त्रों

का ३२ बार जप करते हुए दाहिनेनाक से वायु का रेचन करे। इसप्रकार से करने पर एक प्राणायाम पूर्ण होता है।

एवं क्रमेण समुत्थाप्य पृथिव्यासहस्वाधिष्ठाने ।

समानीय तत्रत्यभूतजले तं विलीनां विभाव्य तस्मात् जलेन सह मणिपूरे समानीयत ।। इसीक्रम से उसे उठाकर पृथिवी के साथ स्वाधिष्ठानचक्र में लाकर उसे जल में विलीन मानते हुये उसे उस जल के साथ मणिपूर में ले आयें।

तत्रत्य वह्नौ जलं विलीनं विभाव्य वह्निवाह्ये सहितं अनाहत पद्मे वायौ विलीनं विभाव्य तं वायुं वायव्येन सहितं आकाशे विलीनं विभाव्य तस्मादाकाशेन सहाज्ञाचक्रे समानीय तत्रत्य मनस्याकाशं विलीनं विभाव्य नादौ ध्वनौ समर्प्य ब्रह्मरन्ध्रास्थं सदाशिवेन सह तां संगम्य वामनासापुटादग्ने यमिति वायुबीजं धूम्रवर्णं विचिन्त्य षोडशवारं जपन्वामनासया वायुमापूर्य्य तेन शरीरं संशोध्य रमिति वह्निबीजं रक्तवर्णं विभाव्यचतुषष्टिवारं जपन् कुम्भयित्वा तद्भूताग्निनादग्धं शरीरं विचिन्त्य पुनः यमिति वायुबीजं द्वात्रिंशद्वारं जपन्दक्षिणनासापुटेन विरेचयेत्।

वहीं वह्नितत्त्व में जल को विलीन मानकर, अग्नि और आग्नेय के सहित अनाहत कमलदल को वायु में विलीन मानते हुए, उस वायु को वायव्य के सहित आकाश में विलीन मानते हुए, उस आकाश के साथ आज्ञाचक्र में लाकर, वहीं मन में आकाश को विलीन मानकर नाद को ध्वनि में समर्पित करे। तब ब्रह्मरंध्र में स्थित सदाशिव के साथ उसका संगमन करके वामनासापुट के अगलेभाग पर धूम्रवर्ण के वायुबीज **यं** के चिन्तन सहित १६ बार जप करते हुए बायींनाक से वायु को आपूरितकर उससे शरीर का संशोधन करे। तब इसप्रकार रक्तवर्ण के रँ अग्निबीज की भावना करते हुए ६४ बार जप कर कुम्भक करने के फलस्वरूप उत्पन्न अग्नि से जले हुए शरीर का चिन्तन कर, पुनः **यं** इस वायुबीज का ३२ बार जप करता हुआ दाहिने नासापुट से विरेचन करे।

ततोवमिति सुधाबीजं ललाटे विचिन्त्य तदुद्भूतामृतवृष्ट्या देहं संप्लाव्य लं पृथिवीबीजे न तच्छरीरोत्थं भस्मघनीकृत्य कनकांडवत्। ततोहमिति आकाशबीजेन अवयवानुत्पाद्य सोहमितिमन्त्रेण पुनः कुंडलिनीसुधालोलीभूतां पंचतत्त्वानि च सुषुम्नामार्गेण स्व स्व स्थानमानीय देवतारूपमात्मानं विभाव्य

हृदि हस्तं निधाय जीवन्यासं कुर्यात्। तब **वं** इस सुधाबीज का ललाट में चिन्तन करे। उससे उत्पन्न अमृतवर्षा से देह को भलीभाँति प्लावित कर **लं** पृथ्वीबीज से उस संप्लावितशरीर से उत्पन्न भस्म को स्वर्णांड की भाँति घनीभूत करे। तब **हं** इस आकाशबीज के द्वारा अवयवों का उत्पादन कर **सोऽहं** इस मन्त्र से सुधापान हेतु लालायित कुण्डलिनी एवं पंचतत्त्वों को पुनः सुषुम्नामार्ग से अपने-अपने स्थानों पर लाकर देवतारूप में अपने को मानते हुए हृदय पर हाथ रख कर जीवन्यास करे।

*** जीवन्यासविधिः ***

तद्यथा—वैसे ही।

ॐ आं ह्रीं क्रों हं सः श्रीदक्षिणकालिकाया; प्राणा इह प्राणाः। श्रीदक्षिणकालिकायाः जीव इहस्थितः श्रीदक्षिणकालिकायाः सर्वेन्द्रियाणि। श्रीदक्षिणकालिकायाःवाङ्मनोनयनश्रोत्रघ्राणप्राणाइहागत्य सुखं चिरं तिष्ठंतु स्वाहेति जीवन्यासं विधाय मूल ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्।

ॐ आं ह्रीं क्रों हं सः श्रीदक्षिणकालिकायाः प्राणा इह प्राणाः ॐ आं ह्रीं क्रों हं सः श्रीदक्षिणकालिकायाः जीव इहस्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों हं सः श्रीदक्षिणकालिकायाः सर्वेंद्रियाणि इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों हंसः श्रीदक्षिणकालिकायाः वाङ्मनोनयनश्रोत्रघ्राणप्राणाइहागत्य सुखं चिरंतिष्ठन्तु स्वाहा। इन मन्त्रों से जीवन्यास करके मूलमन्त्र से ऋष्यादिन्यास करे।

*** ऋष्यादिन्यास ***

यथा—जैसे।

ॐ अस्य श्रीदक्षिणकालिकामंत्रस्यभैरवऋषिरुष्णिक् छन्दः अमुकदेवतायाः अमुकबीजं अमुकशक्तिः अमुककीलकं अभीष्टसिद्धये विनियोगः इति अभिलप्य अनामया मनसा वा भैरवऋषये नमः शिरसि उष्णिक्छंदसे नमः मुखे, अमुकदेवतायै नमः हृदि, अमुक बीजाय नमः गुह्ये अमुक शक्तये नमः पादयोः अमुक कीलकाय नमः सर्वाङ्गे विन्यस्य करांगन्यासौ कुर्यात्।

ॐ अस्य श्रीदक्षिणकालिकाया...........विनियोगः। ऐसा कह करके अनामिका से मन से **भैरव ऋषये नमः शिरसि, उष्णिक् छंद-से नमः मुखे, अमुक देवतायै नमः, हृदि अमुक बीजाय नमः गुह्ये, अमुक शक्तये नमः पादयो; अमुक कीलकाय नमः सर्वाङ्गे** न्यास करके, करन्यास और अंगन्यास सम्पन्न करे।

यथा—जैसे।

ॐ क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः अंगुष्ठयोः ।

ॐ क्रीं तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा तर्ज्जन्योः ।

ॐ क्रूँ मध्यमाभ्यां वषट् मध्यमयोः ।

ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां हूँ अनामिकयोः ।

ॐ क्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् कनिष्ठयोः ।

ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां करतलकरपृष्ठयोः । विन्यस्य

ॐ क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः से अंगूठों में, **ॐ क्रीं तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा** से तर्जनियों में, **ॐ क्रूँ मध्यमाभ्याम् वषट्** से मध्यमाओं में, **ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां हूँ** से अनामिकाओं में, **ॐ क्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्** से कनिष्ठिकाओं में तथा **ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां** से करतलकरपृष्ठों में न्यास करे।

हृदयादिन्यासं कुर्यात्—हृदयादिन्यास करे।

ॐ क्रां हृदयाय नमः तर्ज्जनीमध्यमानामाभिः हृदि ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा तर्ज्जनीमध्यमाभ्यां शिरसि ॐ क्रूँ शिखायै वषट् मुष्टिं वध्वामधोमुखांगुष्ठेन शिखायां ॐ क्रूँ कवचाय हुं व्यस्तकरद्वयांगुलिभिः कवचे ॐ क्रैं नेत्रत्रयाय वौषट् तर्जनीमध्यमानाभिर्नेत्रत्रयोः ॐ क्रः अस्त्राय फट् तर्जनीमध्यमाभ्यामूर्द्धोर्ध्वतालत्रयेण छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनं कुर्यात्।

ॐ क्राँ हृदयाय नमः से तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से हृदय में **ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा** से तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों से शिर, **ॐ क्रूँ शिखायै वषट्** से मुट्ठी बाँध कर अधोमुख अंगूठे से शिखा, **ॐ क्रैं कवचाय हुं** उल्टे-पल्टे दोनों हाथ की अंगुलियों से कवच में **ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्** से तर्जनीमध्यमा और अनामिका अंगुलियों से तीनों नेत्रों में **ॐ क्रः अस्त्राय फट्** से तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों से मूर्धा के ऊपर तीनताल देकर, छोटिकाओं से दस-दिशाओं में दिग्बन्धन करना चाहिए।

ततो वर्णन्यासं कुर्यात्—तब वर्णन्यास करे।

यथा—जैसे अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं लृं हृदिन्यसेत्। एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं दक्षिणभुजे, ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं वामभुजे, ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं दक्षिणपादे, लकारादिकिमिति सम्प्रदाय कालीतंत्र दर्शनात्। इति विन्यस्यमातृकान्यासं कुर्यात्।

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं से हृदय में, एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं से दक्षिणभुजा में, ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं से बायींभुजा में, ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं से दक्षिणपैर में, लकारादि से करना, यह साम्प्रदायिकक्रम पता चलता है। ऐसा कालीतन्त्र के दर्शन से ज्ञात होता है।

इति विन्यस्य मातृकान्यासं कुर्यात्–ऐसा न्यास करने के पश्चात् मातृकान्यास करे।

यथा–जैसे।

मातृकान्यास मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दो मातृकादेवताहलो बीजानि स्वराः शक्तयः अव्यक्तं कीलकं पापक्षये विनियोगः इत्यभिलप्य मातृकान्यास.......विनियोगः। ऐसा कह कर **ब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, मातृकादेवतायै नमः हृदि, हलो बीजेभ्यो नमः गुह्ये, स्वराः शक्तिभ्यो नमः पादयोः, अव्यक्तकीलकाय नमः सर्वांगे इति अनामया मनसावावचिंत्य।**

ॐ ब्रह्मर्षये नमः से शिर में, **ॐ गायत्रीछन्दसे नमः** से मुख में, **ॐ मातृकादेवतायै नमः** से हृदय में, **ॐ हलोबीजेभ्यो नमः** से गुह्यभाग में, **ॐ स्वराः शक्तिभ्यो नमः** से दोनों पैरों में, **ॐ अव्यक्तकीलकाय नमः** से सर्वाङ्ग में अनामिका या मन से चिन्तन करे।

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमो तर्जनी मध्यमानामाभिः हृदि ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा तर्जनीमध्यमाभ्यां शिरसि, ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट् बद्धमुष्ट्यधोमुखांगुष्ठेन शिखायां ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुँ व्यस्तहस्तांगुलिभिः कवचे ॐ ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् तर्जनीमध्यमानामाभिर्नेत्रत्रयोः ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः अस्त्राय फट् तर्जनीमध्यमाभ्यामूर्ध्वोर्ध्वं तालत्रयं दत्वा इतिषडंगविन्यस्य।

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः से तर्जनीमध्यमा और अनामिका अंगुलियों से हृदय में, **ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा** से तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों से शिर में, **ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊँ शिखायै वषट्** से बद्धमुष्टि और अधोमुख अंगुष्ठाग्र से शिखा में, **ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुँ** से व्यस्तहाथों की अंगुलियों से कवच में,

ॐ ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् से तर्जनी और मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से तीनों नेत्रों में, **ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः अस्त्राय फट्** से तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों से शिर के ऊपर तालत्रय देना चाहिए। इसप्रकार षडंगन्यास सम्पन्न करे।

अथ मातृका ध्यानम्–

सम्पूर्णेन्दु प्रभासां सकललिपिमयीं लोलवक्त्रां त्रिनेत्राम् ।
शुक्लालंकारभूषां शशिमुकुटजटाजूटयुक्तां प्रसन्नाम् ।।
पुस्तकस्त्रक्पूर्णकुम्भे वरमपि दधतीं शुक्लपट्टांबराढ्यां ।
वाग्देवीं पद्मवक्त्रां कुचभरनमितां चिन्तयेत्साधकेन्द्रः ।।

उत्तमसाधक भलीभाँति पूर्णचन्द्रमा की प्रभा के समान आभावाली, सकललिपिमयी, चञ्चलमुखवाली, तीननेत्रोंवाली, श्वेतवस्त्र और आभूषण से युक्त, चन्द्रमा का मुकुट तथा जटाजूटधारण करने वाली, प्रसन्नचित्त, हाथों में पुस्तक, माला, भरा हुआ कलश एवं वरमुद्रा धारण की हुई, श्वेतरेशमी-वस्त्रों से सुशोभित, कमल के समानमुखवाली, स्तनों के भार से झुकी हुई वाग्देवी का ध्यान करे।

इति ध्यात्वा मातृकां न्यसेत्–उपर्युक्तरीति से ध्यान करके मातृकान्यास सम्पन्न करे।

ॐ अं नमः ललाटे अनामामध्यमाभ्यां ।
ॐ आं नमः मुखवृत्ते तर्ज्जनीमध्यमानामाभिः।
ॐ इं ईं नमः दक्षिणवामनेत्रयोस्तर्जन्यनामाभ्यां।
ॐ उं ऊं नमः दक्षिणवामकर्णयोरंगुष्ठेन।
ॐ ऋं ॠं नमो दक्षिणवामनासिकयोः कनिष्ठांगुष्ठाभ्यां।
ॐ लृं ॡं नमो दक्षिणवामगंडयोर्मध्यमया।
ॐ एं ऐं नमऊर्ध्वोऽधओष्ठयोर्मध्यमया।
ॐ ओं औं नमऊर्ध्वाधोः दंतपंक्तावनामया।
ॐ अं नमः शिरसि।
ॐ अः नमः मुखे।

ॐ कं नमो दक्षिणभुजे ॐ खं नमः कूर्परे ॐ गं नमः करमूले ॐ घं नमोऽगुलिमूले ॐ ङं नमोऽगुल्यग्रे ॐ चं नमो वामभुजे, ॐ छं नमः कूर्परे ॐ जं नमः करमूले ॐ झं नमोंगुलिमूले ॐ ञं नमोऽगुल्यग्रे ॐ टं

नमो दक्षिणपादमूले ॐ ठं नमो मध्ये ॐ डं नमो गुल्फे ॐ ढं नमोऽगुलिमूले ॐ णं नमोंऽगुल्यग्रे ॐ तं नमः वामपादमूले ॐ थं नमो मध्ये ॐ दं नमो गुल्फे ॐ धं नमोंऽगुलिमूले ॐ नं नमः अंगुल्यग्रे ॐ पं नमो दक्षिणपार्श्वे ॐ फं नमः वामपार्श्वे ॐ बं नमः पृष्ठे ॐ भं नमः नाभौ कनिष्ठानामिकामध्यमांगुष्ठेन ॐ मं नमः उदरे कनिष्ठानामिका-मध्यमातर्जन्यंगुष्ठैः ॐ यं नमो हृदिकरतलेन ॐ रं नमो दक्षांसे करतलेन ॐ लं नमः ककुदिकरतलेन ॐ वं नमो वामांसे करतलेन ॐ शं नमः हृदयादिदक्षिणकरांगुल्यग्रपर्यन्त करतलेन ॐ षं नमः हृदादिवामक-रागुल्यग्रपर्यन्तं करतलेन ॐ सं नमः हृदादि दक्षिणपादांगुल्यग्रपर्यन्तंकरतलेन ॐ हं नमो हृदादिवामपादांगुल्यग्रपर्यन्तं करतलेन ॐ क्षं नमो हृदयान्मुखपर्यन्तं करतलेन। एवं मातृकां विन्यस्य श्रीकंठन्यासं कुर्यात्।

ॐ अं नमः से ललाट में अनामिका और मध्यमा से **ॐ आं नमः** से मुखमण्डल में तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से **ॐ इं नमः** से दाहिने तथा **ॐ ईं नमः** से बायें नेत्रों में तर्जनी और अनामिका अंगुलियों द्वारा, **ॐ उं नमः** से दायें तथा **ॐ ऊँ नमः** से बायें कान में अंगूठे से, **ॐ ऋं नमः** से दायें तथा **ॐ ॠं नमः** से बाईं नासिका में कनिष्ठिका और अंगूठे से, **ॐ ऌं नमः** से दाहिने तथा **ॐ ॡं नमः** से बायें गंडस्थल में मध्यमा से, **ॐ एं नमः** से ऊपरी तथा **ॐ ऐं नमः** से निचले ओठों में मध्यमा से, **ॐ ओं नमः** से ऊपर **ॐ औं नमः** से निचली दांत की पंक्तियों में अनामिका से, **ॐ अं नमः** से शिर में, **ॐ अः नमः** से मुख में, **ॐ कं नमः** से दाहिनीबाँह एवं **ॐ खं नमः** से कूर्पर (कोहनी), **ॐ गं नमः** से हाथ का आरम्भ (मणिबन्ध), **ॐ घं नमः** से अंगुलि की जड़, **ॐ ङं नमः** से अंगुलि का अगलाभाग, **ॐ चं नमः** से बायींभुजा, **ॐ छं नमः** से कोहनी **ॐ जं नमः** से हाथ का आरम्भ, **ॐ झं नमः** से अंगुली का आरम्भ, **ॐ ञं नमः** से अंगुलि का अगलाभाग, **ॐ टं नमः** दक्षिण पैर, **ॐ ठं नमः** से दाहिने पैर का मध्य, **ॐ डं नमः** दाहिने पैर का टखना, **ॐ ढं** अंगुलियों का आरम्भ **ॐ णं नमः** से अंगुलियों के अगले भाग, **ॐ तं नमः** से बायांपैर **ॐ थं नमः** से उसका मध्य **ॐ दं नमः** से पैर का टखना, **ॐ धं नमः** से अंगुलियों का आरम्भ **ॐ नं नमः** से अंगुलियों के अगले भाग, **ॐ पं नमः** से दक्षिणीपार्श्व, **ॐ फं नमः** से वामपार्श्व, **ॐ बं नमः** से पीठ, **ॐ भं नमः** से नाभि में कनिष्ठिका,

अनामिका, मध्यमा और अंगूठे से, **ॐ मं नमः** से पेट में कनिष्ठा, अनामिका मध्यमा, तर्जनी, अंगूठा पाँचों अंगुलियों से, **ॐ यं नमः** से हृदय में **ॐ रं नमः** से दाहिने कन्धे में, **ॐ लं नमः** से ककुद् में **ॐ वं नमः** से बायें कन्धे में, **ॐ शं नमः** से हृदय से आरम्भ कर दाहिने हाथ की अंगुलियों तक, **ॐ षं नमः** से हृदय से आरम्भ कर बायेंहाथ की अंगुली के अगलेभाग तक, **ॐ सं नमः** से हृदय से आरम्भ कर दाहिने पैर की अंगुलियों के अग्रभाग तक, **ॐ हं नमः** से हृदय से आरम्भ कर बायें पैर की अंगुलियों के अगले भाग तक से **ॐ क्षं नमः** हृदय से मुखपर्यन्त हथेली से न्यास करे। इस प्रकार से मातृकाओं का विशेषरूप से न्यास करने के पश्चात् श्रीकण्ठन्यास करे।

यथा–जैसे।

ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः सर्वत्र बीजपूर्वमिति बोद्धव्यं–ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः को सब स्थानों पर बीज के पहले जानना चाहिए।

यथा–जैसे।

ऐं ह्रीं श्रीं हसौः अंश्रीकंठ पूर्णोदरीभ्यां नमः ललाटे ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः आं अनंतविरजाभ्यां नमः मुखवृत्ते ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः इं सूक्ष्मेशशालमलीभ्यां नमः दक्षनेत्रे ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः ईं त्रिमूर्त्तीशलोलाक्षीभ्यां नमः वामनेत्रे ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः उं अमरेशवर्त्तुलाक्षीभ्यां नमः दक्षकर्णे ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः ऊँ अर्धीशदीर्घघोणाभ्यां नमः वामकर्णे ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः ऋं भारभूतीशसुदीर्घमुखीभ्यां नमः दक्षनासायां ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः ॠं अतिथीशगोमुखीभ्यां नमः वामनासायां ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः ऌं स्थाण्वीशदीर्घजिह्वाभ्यां नमः दक्षगंडे ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः ॡं हरेशकुंडोदरीभ्यां नमः वामगंडे ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः एं झिंटीशऊर्ध्ववकेशीभ्यां नमः ऊर्ध्वोष्ठे ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः ऐं भौतिकेशविकृतमुखीभ्यां नमः अधरोष्ठे ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः ओं सद्योजातेशज्वालामुखीभ्यां नमः ऊर्ध्ववदंतपंक्तौ ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः औं अनुग्रहेशउल्कामुखीभ्यां नमः अधोदंतपंक्तौ ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः अं अक्रूरेशसुमुखीभ्यां नमः शिरसी ।
ऐं ह्रीं श्रीं हसौः अः महासेनेशविद्यामुखीभ्यां नमो मुखे ।

ऐं ह्रीं श्रीं हसौः प्रत्येक में लगाते हुए **अं श्रीकंठपूर्णोदरीभ्यां नमः** से ललाट में, **आं अनंतविरजाभ्यां नमः** से मुखवृत्त में

इं सूक्ष्मेशशाल्मलीभ्यां नमः से दाहिनेनेत्र में।
ईं त्रिमूर्त्तीशलोलाक्षीभ्यां नमः से बायेंनेत्र में।
उं अमरेशवर्त्तुलाक्षीभ्यां नमः से दाहिनेकान में।
ऊँ अर्घीशदीर्घघोणाभ्यां नमः से बायेंकान में।
ॠं भारभूतीशसुदीर्घमुखीभ्यां नमः से दाहिनीनासिका में।
ॠं अतिथीशगोमुखीभ्यां नमः से बाईं नासिका में।
लृं स्थाण्वीशदीर्घजिह्वाभ्यां नमः से दाहिने गंडस्थल में।
ॡं हरेशकुंडोदरीभ्यां नमः से बायें गंडस्थल में।
एं झिंटीशऊर्द्ध्वकेशीभ्यां नमः से ऊपरी होंठ में।
ऐं भौतिकेशविकृतमुखीभ्यां नमः से निचले होंठ में।
ओं सद्योजातेशज्वालामुखीभ्यां नमः से ऊपरी दंतपंक्ति में।
औं अनुग्रहेशउल्कामुखीभ्यां नमः से निचली दंतपंक्ति में।
अं अक्रूरेशसुमुखीभ्यां नमः से सिर पर,
अः महासेनेशविद्यामुखीभ्यां नमः से मुख में न्यास करे।

तत्पश्चात्–ऐं ह्रीं श्रीं हसौः कं क्रोधीशमहाकालीभ्यां नमः खं चण्डीशमहा-सरस्वतीभ्यां नमः गं पंचांतकेशगौरीभ्यां नमः घं शिवोत्तमेशत्रैलोक्यविद्याभ्यां नमः ङं एकरुद्रेशमन्त्रशक्तिभ्यां नमः चं कूर्मेशआत्मशक्तिभ्यां नमः छं एकनेत्रेशभूतमाताभ्यां नमः जं चतुराननेशलम्बोदरीभ्यां नमः झंअजेशद्राविणीभ्यां नमः ञं सर्वेश- नागरीभ्यां नमः टं सोमेशखेचरीभ्यां नमः ठं लांगलीशमंजरीभ्यां नमः डं दारुकेशरूपिणीभ्यां नमः ढं अर्धनारीशवीरिणीभ्यां नमः णं उमाकांते-शकाकोदरीभ्यां नमः तं आषाढ़ीशपूतानाभ्यां नमः थं दंडीशभद्रकालीभ्यां नमः दं अत्रीशयोगिनीभ्यां नमः धं मीनेशशंखिनीभ्यां नमः नं मेषेशगर्जिनीभ्यां नमः पं लोहितेशकालरात्रीभ्यां नमः फं शिखीशकुब्जिकाभ्यां नमः बं छागलांडेशकपर्दिनीभ्यां नमः भं त्रिखण्डेशवज्राभ्यां नमः मं महाकालेशजयाभ्यां नमः यं वाणीशसुमुखेश्वरीभ्यां नमः रं भुजंगेश रेवतीभ्यां नमः लं पिनाकीशमाधवीभ्यां नमः वं खड्गीश वायवीभ्यां नमः शं वकेशवारुणीभ्यां नमः षं श्वेतेशरक्षोविदारिणीभ्यां नमः सं भृग्वीशसहजाभ्यां नमः हं नकुलीशलक्ष्मीभ्यां नमः ळं शिवेशव्यापिनीभ्यां नमः क्षं संवर्तकेशमायाभ्यां नमः मंत्रों से अपने ऊपर न्यास करे।

ततो षडंगन्यासं षोढान्यासं कुर्यात्– तब षडंगन्यास एवं षोढान्यास करना चाहिए।

तद्यथा–वह जैसे होगा।

प्रथमं मातृकान्यासं विधायपुनस्तेषु स्थानेषु श्रीं अं श्रीं अं श्रीं अं नमः ललाटे श्रीं आं श्रीं आं श्रीं आं नमः मुखवृत्ते एवं क्रमेण विन्यस्य क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमः ललाटे क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमोमुखवृत्ते एवं क्रमेण न्यसेदिति तृतीयोन्यासः ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं नमो ललाटे, ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं नमो मुखवृत्ते इति चतुर्थः।

सर्वप्रथम मातृकान्यास करे। पुनः जहाँ जहाँ मातृकान्यास किया है, उन्हीं स्थानों में **श्रीं अं श्रीं अं श्रीं अं नमः** से ललाट में, **श्रीं आं श्रीं आं श्रीं आं नमः** से मुखवृत्त में इस क्रम से न्यास कर, द्वितीयन्यास तथा उन्हीं स्थानों पर **क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमः** से ललाट में **क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमः** से मुखवृत्त में के क्रम से न्यास करता हुआ तृतीयन्यास सम्पन्न करे। तत्पश्चात् **ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं नमः से ललाट** तथा **ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं नमः** मुखवृत्त के क्रम से न्यास करता हुआ, चतुर्थन्यास सम्पन्न करे।

मूलं क्रां क्रां ऋं ॠं लं लॄं मूलं नमो ललाटे मूलं क्रां क्रां ऋं ॠं लं लॄं मूलं नमो मुखवृत्ते पंचमः, अनुलोम विलोमाभ्यां मातृकास्थाने केवलं मूलं विन्यस्यस्याष्टोत्तर शतं व्यापकं व्यस्तहस्ताभ्यामन्यत्र मातृकामुद्राभिर्न्यसेदिति षष्ठः

मूल क्रां क्रां ऋं ॠं लं लॄ मूल नमः से ललाट और **मूल क्रां क्रां ऋं ॠं लं लॄं मूल नमः** से मुखवृत्त में न्यास के क्रम से मातृकास्थानों पर न्यास करने से पाँचवाँ तथा अनुलोम- विलोम से केवल मूलमन्त्र का विन्यास १०८ बार करके व्यस्तहाथों से अन्यत्र मातृकाओं और मुद्राओं का न्यास करने से छठाँन्यास होता है।

इति षोढा विन्यस्य तत्त्वन्यासं कुर्यात्–इसप्रकार षोढान्यास करके तत्त्व-न्यास करे।

यथा–जैसे। **मूलाद्यखण्डान्ते आत्मतत्त्वाय नमः। पादादिनाभिपर्यन्तं मूलं द्वितीय मूलखंडान्ते विद्यातत्त्वाय नमः नाभ्यादि हृदयपर्यन्तं मूलं तृतीय मूलखण्डान्ते शिवतत्त्वाय नमः हृदयादि शिरः पर्यन्तं न्यसेदिति तत्त्वन्यासं**

विधाय बीजन्यासं कुर्यात्। मूल के आद्यखण्ड के अन्त में **आत्मतत्त्वाय नमः** मूल कहकर पैर से नाभि तक, तत्पश्चात् मूल के द्वितीय खण्ड के अन्त में **विद्यातत्त्वाय नमः** मूल कहकर नाभि से हृदयपर्यन्त तथा मूल के तृतीयखण्ड के अन्त में **शिवतत्त्वाय नमः** मूल कहकर हृदय से शिरपर्यन्त न्यास करते हुये तत्त्वन्यास सम्पन्न करके साधक **बीजन्यास** करे।

यथा–जैसे।

*** बीजन्यास ***

आद्यं बीजं ब्रह्मरंध्रे द्वितीयं भुवि तृतीयं ललाटे चतुर्थं नाभौ पंचमं गुह्ये षष्ठं चक्रे सप्तमं सर्वांगे इति विन्यस्य व्यापकं न्यासं कुर्यात्।

पहलेबीज का ब्रह्मरन्ध्र में, दूसरे का पृथ्वी में, तीसरे का ललाट में, चौथे का नाभि में, पाँचवें का गुह्यस्थान में, छठें का चक्र में, सातवें का सर्वांग में, न्यास करने के बाद **व्यापकन्यास** करे।

यथा–जैसे।

*** व्यापक न्यास ***

पंचधा सप्तधा नवधा वा मूलमुच्चरन् ।
व्यस्तहस्ताभ्याम् विन्यसेदिति न्यासजालं विधाय ।

यथोक्त विधिनायन्त्रराजं निर्माय पुरोवर्तिनी पीठे निधाय पीठपूजां कुर्यात्।

पाँच, सात या नौबार मूलमंत्र का उच्चारण करते हुए व्यस्त-हाथों से न्यास करे। इसप्रकार न्यासजाल (न्याससमूह) को सम्पन्न कर, साधक, यथोक्तविधि से यन्त्रराज का निर्माण कर, उसे अपने सामने स्थित पीठ पर स्थापित कर, पीठ पूजा करे।

यथा–जैसे।

*** पीठपूजन ***

ॐ ह्रीं आधारशक्तये नमः ॐ ह्रीं प्रकृत्यै नमः ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः ॐ ह्रीं पृथिव्यै नमः

ॐ ह्रीं सुधांबुधये नमः ॐ ह्रीं मणिद्वीपाय नमः ॐ ह्रीं चिन्तामणिगृहाय नमः ॐ ह्रीं श्मशानाय नमः ॐ ह्रीं पारिजाताय नमः ॐ ह्रीं रत्न वेदिकायै नमः तदुपरि ऊपर **ॐ रत्नपीठाय नमः** कहकर के **चतुर्दिक्षु नानामुनिभ्यो नमः परितः अंबहुमांसास्थि-मोदमानशिवाभ्यो**

नमः शवमुण्डेभ्योनमः चारों दिशाओं में **नानामुनिभ्यो नमः** चारों ओर **ॐ बहुमांसास्थिमोदमान शिवाभ्यो नमः ॐ शवमुण्डेभ्यो नमः।**

पूर्वादि चतुर्दिक्षु ॐ धर्माय नमः ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः, ॐ चतुः पादे ॐ अधर्माय नमः ॐ अज्ञानाय नमः ॐ अवैराग्याय नमः ॐ अनैश्वर्याय नमः, मध्ये ॐ अनंताय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ सोममंडलाय नमः, ॐ अर्कमण्डलाय नमः, ॐ वह्निमंडलाय नमः। सं सत्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अंतरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः।

तदनन्तर पूर्व आदि चार दिशाओं में क्रमशः **ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः,** चारों पदों (कोणों) में क्रमशः **ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः,** पीठ के मध्य में **ॐ अनंताय नमः, ॐ पद्माय नमः** से, **अष्टदलेषु पूर्वादितः ह्रीं ज्ञानात्मने नमः** तक अष्टदलकमल में पूर्वादि क्रम से पूजन करे।

ॐ इच्छायै नमः ॐ क्रियायै नमः ॐ ज्ञानायै नमः ॐ कामिन्यै नमः ॐ कामदायिन्यै नमः ॐ रत्यै नमः ॐ रतिप्रियायै नमः ॐ आनन्दायै नमः कर्णिकायां कर्णिकाओं में **मनोन्मन्यै नमः** मध्य में। **ऐं परायै नमः ऐं परापरायै नमः** मणिपीठों पर, **ह्सौः सदाशिव महाप्रेतासनाय नमः,** कहकर मणिपीठ के ऊपर। **इति पीठं सम्पूज्य,** ऐसा कहकर पीठपूजा सम्पन्न करे। **घटस्थापनं कुर्यात्** तब घटस्थापन करे।

यथा—स्ववामे षट्कोणांतर्गतं बिन्दुं विलिख्य जैसे अपने बायें भाग में षट्कोण के अन्तर्गत बिन्दु लिखकर **बाह्यवृत्त चतुरस्त्रं कृत्वा** उसके बाहर वृत्त और चौकोर बनाये।

सामान्यर्घ्योदकेन अभ्युक्ष्य ह्रीं आधारशक्तये नमः इति संपूज्य षडंग मन्त्रेण षट्कोणं सम्पूज्य नमः इति आधारं प्रक्षाल्य मंडले संस्थाप्य मंवह्निमंडलाय दशकालात्मने नमः इति सम्पूज्य।

सामान्यअर्घ्य के जल से अभ्युक्षण करके **ह्रीं आधारशक्तये नमः** से पूजन करे। पूजन कर- षडंग मन्त्रों से षट्कोण का पूजन करे, तब **नमः** से आधार का प्रक्षालन कर उसे मंडल में भलीभाँति स्थापित करके **मं वह्निमंडलाय दशकलात्मने नमः** इस मन्त्र से पूजन करे।

फडिति घटं प्रक्षाल्यरक्तवस्त्रमाल्यादिना भूषयित्वोमिति मन्त्रेण त्रिपादिकोपरि देवी बुद्ध्या संस्थाप्य। तत्पश्चात्–**फट्** इस मन्त्र से घट को प्रक्षालित कर लालवस्त्र-माला आदि से उसे सजा कर **ॐ** इस मन्त्र से देवी की बुद्धि से त्रिपादिका पर स्थापित करे।

तब अं अर्कमंडलाय द्वादशकलात्मने नमः मूलमुच्चरन् कारणेन घृतेन तैलेन दध्ना तक्रेण वा सम्पूज्य। ॐ सोममण्डलायषोडशकलात्मने नमः इति घटं संपूज्य।

अं अर्कमंडलायद्वादशकलात्मने नमः और **मूलमन्त्र** उच्चारण करता हुआ, उस घट को कारण (तीर्थ), घी, तेल, दही या मट्ठे से भलीभाँति भरे। उसके बाद **ॐ सोममण्डलाय षोडश कलात्मने नमः** इस मंत्र से घट का पूजन करे।

फडिति दर्भैः संताड्य हुमित्यवगुंठ्य मूलेनवीक्ष्य तेनैव त्रिधागंधमाघ्राय पुष्पेन सह ॐ इति मंत्रेण कुम्भे निक्षिप्य कारणेन पूर्णपक्षे पाशलोडनं कृत्वा द्रव्यशुद्धितत्त्वोक्त प्रकारेण संशोध्य शंखसंस्थापनं कुर्यात्।

फट् यह मन्त्र बोलता हुआ **दर्भः** से संतांडित, **हुँ** इस मन्त्र से अवगुंठित कर **मूलमन्त्र** से उसे देखते हुए, उसी से तीनबार गन्ध को ग्रहण कर पुष्प के साथ **ॐ** इस मन्त्र से कुम्भ में डाल दे। यदि कारणपूरितघट हो तो पाशलोडन करके द्रव्यशुद्धि तत्त्व में कहे गये प्रकार से उसे संशोधित कर, शंखस्थापन करना चाहिये।

यथा–जैसे।

ईकार त्रिकोण वृत्त षट्कोण चतुरस्त्रमंडलं निर्माय चतुरस्त्रे चतुर्रेरवायां ॐ पूर्णशैलाय नमः ॐ उड्डियान्नाय नमः ॐ जालंधराय नमः ॐ कामरूपपीठाय नमः इति पूर्वादितं सम्पूज्य षट्कोणे हृदयाय नमः इति क्रमेण षडंगं सम्पूज्य मूलखण्डत्रयेण त्रिकोणस्याग्र दक्षिणोत्तर सम्पूज्य ह्रीं आधारशक्तये नमः इति सम्पूज्य त्रिकोणवृत्त भूषितां यांत्रिकां तत्रस्थाप्य नमः इति सामान्योर्घ्योदकेनाभ्युक्ष्य वह्निदशकलां सम्पूजयेत्।

ईकार, त्रिकोण, वृत्त, षट्कोण और चतुरस्त्र (चौकोर) मण्डल बनाये। उस मण्डल के चतुरस्त्र की चारों रेखाओं पर पूर्वादि क्रम से **ॐ पूर्णशैलपीठाय नमः, ॐ उड्डियानपीठाय नमः, ॐ जालंधरपीठाय नमः, ॐ कामरूपपीठाय नमः** कहकर पूजन करे। तत्पश्चात् षट्कोण में

ॐ हृदयाय नमः आदि से षडंगों का पूजन कर, मूलमन्त्र के तीनों खण्डों से त्रिकोण के सामने दक्षिण और उत्तर में पूजन कर, **ह्रीं आधार शक्तये नमः** इस मन्त्र से पूजाकर, त्रिकोण और वृत्त से सुशोभित यंत्रिका वहाँ स्थापित करे। **नमः** ऐसा बोलता हुआ सामान्यअर्घ्योदक से उसका अभ्युक्षण कर वह्नि (अग्नि) की दस कलाओं का पूजन करे।

यथा–जैसे।

ॐ यं धूम्रार्चिषे नमः ॐ रं ऊष्मायै नमः ॐ लं ज्वलिन्यै नमः ॐ वं ज्वालिन्यै नमः ॐ शं विस्फुलिंगिन्यै नमः ॐ षं सुश्रियै नमः ॐ सं सुरूपायै नमः ॐ हं कपिलायै नमः ॐ ळं हव्यवहायै नमः ॐ क्षं कव्यवहायै नमः इति सम्पूज्य अथवा वह्निमंडलाय दश कलात्मने नमः। इति सम्पूज्य त्रिकोणेमूलखण्डत्रयेण षडङ्ग सम्पूज्य फडिति अर्घपात्रं प्रक्षाल्य त्रिकोण पादुकोपरि संस्थाप्य तत्र सूर्यमण्डलं पूजयेत्।

ॐ यं धूम्रार्चिषे नमः....... इत्यादि दस नामों से पूजन कर अथवा **ॐ वह्निमंडलाय दशकलात्मने नमः इति सम्पूज्य** इससे पूजन कर, मूलमन्त्र के तीनखण्डों से षडंगपूजन कर, **फट्** इस मन्त्र से अर्घपात्र का प्रक्षालन कर, त्रिकोण पादुका के ऊपर स्थापित कर, वहाँ सूर्यमंडल का पूजन करे।

अथवा सोममंडलाय षोडश कलात्मने नमः इति सम्पूज्य त्रिकोण वृत्त षट्कोणं तन्मध्ये कुशेन विलिख्य त्रिकोण त्रिरेखायां अं १६ कं १६ यं १६ त्रिकोणमध्ये हं क्षं २ इति विलिख्य मूल खण्डत्रयेण त्रिकोणं सम्पूज्य षट्कोणे षडङ्ग पूजयित्वा गंगेचेतिमंत्रेणाङ्कुशमुद्रया सूर्यमंडलात्तीर्थान्यावाह्य आनंद भैरवानंदभैरव्यौ तत्तन्मन्त्रेण ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्क्ष्म्ल्व्र्यूं आनंदभैरवाय वषट् स्ह्क्ष्म्ल्व्र्यीं सुराःदेव्यै वौषट् इति मन्त्रद्वयेन सम्पूज्य पूर्वादिक्रमेण पंचरत्नं पूजयेत्।

इसप्रकार से पूजन करे अथवा **ॐ सोममण्डलाय षोडश कलात्मने नमः** से पूजन करे। तदनन्तर त्रिकोण, वृत्त, षट्कोण, उसके मध्य में कुश से त्रिकोण लिखकर, त्रिकोण की तीनों रेखाओं में **अं १६ वर्ण कं १६ वर्ण थं १६ वर्ण** त्रिकोण के मध्य में **हं क्षं २** वर्ण ऐसा लिखकर, मूलमन्त्र से षट्कोण और त्रिकोण का पूजन कर, षट्कोण में षडंगों की पूजा करे। **गंगेति.......**। इस मन्त्र से अंकुशमुद्रा द्वारा सूर्यमण्डल से तीर्थों का आवाहन कर आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी का उनके मन्त्रों से **ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्क्ष्म्ल्व्र्यूं आनन्दभैरवाय**

वषट्, सूह्क्ष्म्ल् व्रूयीं सुरादेव्यै वौषट् इन दोनों मन्त्रों से पूजन कर, पूर्वादिक्रम से पंचरत्नों का पूजन करे।

यथा–ग्लूं गगनरत्नाय नमः, स्लूँ स्वर्गरत्नायनमः, म्लूं मर्त्य-रत्नेभ्यो नमः, प्लूं पातालरत्नेभ्यो नमः, न्लूं नागरत्नेभ्यो नमः। इति संपूज्य, शंखस्थद्रव्ये पंक्तियाग प्रतिपादक तत्त्वोक्तप्रकारेण कुंडगोलोद्भवम् उत्पाद्य संशोध्य मांसंमत्स्यंमुद्रां च शुद्धितत्त्वोक्तप्रकारेण संशोध्य निक्षिप्य हूँ इत्यवगुण्ठ्य धेनुमुद्रयामृतीकृत्य।

जैसे–ग्लूं गगनरत्नाय नमः (पूर्व में) स्लूं स्वर्गरत्नाय नमः (दक्षिण में), म्लूँ मर्त्यरत्नेभ्यो नमः (पश्चिम में), प्लूं पातालरत्नेभ्यो नमः (उत्तर में), न्लूँ नागरत्नेभ्यो नमः (मध्य में) इससे पंचरत्नों की पूजा कर, शंखस्थ- द्रव्य में पंक्तियाग प्रतिपादक प्रकार से कुण्डगोलोद्भव उत्पन्न कर, उसे संशोधित कर, मांस, मत्स्य और मुद्रा आदि शुद्धितत्त्वोक्तप्रकार से संशोधित किये गये मकारतत्त्वों पर डालकर, हूँ इस मन्त्र से अवगुंठित करके धेनुमुद्रा से उनका अमृतीकरण करे।

तद्यथा कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नमः, गं फं धूम्रायै नमः, घं पं मरीच्यै नमः, ङं मं ज्वालिन्यै नमः, चं धं रुच्यै नमः, छं दं सुषुम्णायै नमः, जं थं भोगदायै नमः, झं तं विश्वायै नमः, ञं णं बोधिन्यै नमः, टं ढं धारिण्यै नमः, ठं डं क्षमायै नमः इत्यर्ककलाः सम्पूज्य अथवा अर्कमण्डलाय द्वादश कलात्मने नमः इति सम्पूज्य तत्र त्रिकोण वृत्त षट्कोणमर्घपात्रे विलिख्य व्यस्त मूलमन्त्रेण त्रिकोणं सम्पूज्य षट्कोणे षडङ्ग पूजयित्वा वमिति मूलमन्त्र विलोममातृकां च पठन् घटस्थ कारणामृतेन त्रिभागमापूर्य जलेन वा भागमेकं संपूर्य दूर्वाक्षतरक्तपुष्पादिना सुगंधद्रव्याणि तत्र निक्षिप्य तत्र सोमकलाः संपूजयेत्।

वह–जैसे–कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नमः....। इत्यादि से सूर्य की द्वादशकलाओं का पृथक्-पृथक् अथवा ॐ अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः से एक साथ पूजन करे। वहीं अर्घपात्रपर त्रिकोण, वृत्त और षट्कोण लिखकर व्यस्त हाथों से मूलमन्त्र से त्रिकोण का पूजन कर, षट्कोण के छः कोणों में षडंगपूजन कर वं इस मूलमन्त्र और विलोममातृका को पढ़ता हुआ साधक अर्घ्यपात्र के तीनभागों को घट में पहले से स्थापित किये गये कारणामृत से तथा एक भाग को जल

से भरे। तत्पश्चात् उस अर्घ्यपात्र में दूर्वा, अक्षत, लालफूल इत्यादि सुगंधितद्रव्यों को छोड़े और उसी में सोमकलाओं का पूजन करे।

यथा– ॐ अं अमृतायै नमः आं मानदायै नमः, इं पूषायै नमः ईं तुष्ट्यै नमः, उं पुष्ट्यै नमः, ऊँ रत्यै नमः, ऋं धृत्यै नमः, ॠं शशिन्यै नमः, ऌं चंद्रिकायै नमः, ॡं कान्त्यै नमः, एं ज्योत्सनायै नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीत्यै नमः, औं अंगदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नमः।

जैसे–अं अमृतायै नमः........। इत्यादि सोमकलाओं का पृथक्-पृथक् पूजन करे।

तालत्रयं दिग्बन्धनं च कृत्वा तदुपरि मूलं संजप्य सामान्य-अर्घ्यवत्पात्राणि स्थापयेत् यथा।

तब तीनताली देकर, दिग्बन्धन करके, उसके ऊपर मूलमन्त्र का भली-भाँति जप करे। सामान्य-अर्घ्यपात्र की भाँति अन्यपात्रों का भी स्थापन करे।

यथा–समीपे गुरुपात्रं ततो भैरवपात्रं ततो वीरपात्रं ततः शक्तिपात्रं ततो योगिनीपात्रं ततो बलिपात्रं ततः पाद्यपात्रं ततो आचमनीयपात्रं ततोमधुपर्कपात्रं ततो देवी पात्रं ततः शंखपात्रं इति क्रमेण स्थापयित्वा सर्वपात्रेषु शंखद्रव्यस्थं बिन्दुन्निक्षिप्य गुरुपात्रामृतेन तत्त्वमुद्रया स्वाशिरसि अमुकानंदनाथ श्री पादुकां तर्पयामीति त्रिःसकृद् वा गुरुं संतर्प्य।

जैसे–सामान्यअर्घ्यपात्र के समीप में सर्वप्रथम गुरुपात्र की स्थापना करे। तब भैरवपात्र, वीरपात्र, शक्तिपात्र, योगिनीपात्र, बलिपात्र, पाद्यपात्र, आचमनीयपात्र, मधुपर्कपात्र, देवीपात्र की एक के बाद एक और अन्त में शंखपात्र की क्रमशः स्थापना करके सभी पात्रों में शंख में स्थित द्रव्य के बिन्दुओं को छोड़े। तत्पश्चात् गुरुपात्र के अमृत से तत्त्वमुद्रा के द्वारा अपने शिर पर **अमुकानंद नाथ श्री पादुकां तर्पयामि** ऐसा तीनबार अथवा एकबार करके गुरु का तर्पण करे।

देवीपात्रामृतेन स्वहृदिसायुधां सवाहनां सपरिवारां महाकालसहितां दक्षिणकालिकाख्यातांतर्पयामिति तत्त्वमुद्रया संतर्प्य तत्त्वोक्तप्रकारेण तत्त्व शुद्धिंविधाय देवीपात्रामृतेन आत्मानं पूजोपकरणं चाभ्युक्ष्य सर्वब्रह्ममयं विभाव्य पूजामारभेत्।

तब देवीपात्र के अमृत से साधक अपने हृदय में आयुधों, वाहन और परिवार तथा महाकाल के सहित दक्षिणकालिका नाम से प्रसिद्ध देवी का **ॐ**

सायुधां सवाहनां सपरिवारां महाकालसहितां दक्षिणकालिकाख्यातां तर्पयामि इस मन्त्र से तत्त्वमुद्रा से भलीभाँति तर्पण करे। तब तत्त्वोक्त प्रकार से शुद्धि सम्पन्न कर देवीपात्र के अमृत से अपना तथा पूजा- उपकरणों का सम्प्रोक्षण कर सब ब्रह्ममय है, ऐसा मान कर पूजन आरम्भ करे।

*** बटुकबलिदान क्रम ***

यथा चक्रस्य पूर्वदिशि क्रमेण त्रिकोणवृतं विलिख्य ऐं ह्रीं कूर्ममण्डलाय नमः इति मंडलं सम्पूज्य बं बटुकाय नमः इति पाद्यादिभिरभ्यर्च्य बलिमुपनीय बलिपात्रामृतेन–

"एह्येहि बटुकनाथ कपिल जटाभारभासुर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान्नाशयनाशय सर्वोपचार सहितं बलिं गृहणगृहण स्वाहेति एषं बलिं बटुकाय नमः" इति वामांगुष्ठानामिकाभ्यां उत्सृज्य।

जैसे–चक्र के पूर्व दिशा में क्रम से त्रिकोण और वृत्त लिखकर उस पर **ऐं ह्रीं कूर्ममंडलाय नमः** से मण्डल का भलीभाँति पूजन कर, **बं बटुकाय नमः** इस मन्त्र से पाद्य आदि के द्वारा पूजन कर, बलि सम्मुख लाकर, बलिपात्र के अमृत से **एह्येहि बटुकनाथ....एष बलिं बटुकाय नमः** इस मन्त्र से बायेंहाथ के अंगूठे और अनामिका से उत्सृजन करे (अमृततत्त्व छिड़के)।

मन्त्रार्थ–हे बटुकनाथ! आप कपिल- जटाओं के भार से भास्वर हैं, आप तीन नेत्रोंवाले हैं, आप ज्वालामुख हैं। अत: आप आइये, आइये मेरे सभी विघ्नों का नाश कीजिये, नाश कीजिये। सभी उपचारों के सहित इस बलि को ग्रहण कीजिये। यह आपको अर्पित है। यह बलि, बटुक के लिए है, उन्हें नमस्कार है।

चक्रस्य दक्षिण दिशि पूर्ववन्मंडलं विधायाभ्युक्ष्य योगिनीपात्रामृतेन बलिमुपनीय–

"ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वादिविगगनतलेभूतले निष्कले वा पाताले वानले वने वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्रस्थिता वा क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु चकृतपदाधूपदीपादिकेन प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पांतु वीरन्द्र वंद्याः यां योगिनीभ्यः स्वाहा सर्वयोगिनीभ्यो हूँ फट् स्वाहा एष बलिर्योगिनीभ्यो नमः" इति तत्त्वमुद्रया बलिमुत्सृज्य।

चक्र के दक्षिणदिशा में पहले की ही भाँति मंडल बनाकर, अभ्युक्षण कर, बलि लाकर योगिनीपात्र के अमृत से–**ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो........योगिनीभ्यो नमः**। इससे तत्त्वमुद्रा से बलि का उत्सर्जन करे।

मन्त्रार्थ–ऊपरी ब्रह्माण्ड, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, निष्कल, पाताल,

अग्नि, वन, जल या वायु, जहाँ कहीं भी स्थित क्षेत्र, पीठ, उपपीठ, आदि में अपने चरणों को स्थापित करने वाली, धूप-दीप आदि से प्रसन्न होने वाली देवियां, इस शुभ बलिविधि के कारण सदा हमारी रक्षा करें। श्रेष्ठ वीरों द्वारा वन्दिता योगिनियों के लिए यह समर्पित है। सभी योगिनियों के लिए समर्पित है। **हूँ फट्** यह बलि, योगिनियों को नमस्कारपूर्वक समर्पित है।

चक्रस्य दक्षिणदिशि पूर्ववन्मंडलं विधाय क्षेत्रपालमभ्यर्च्य बलिपात्रामृतेन बलिमुपनीय–

"क्षां क्षीं क्षूँ क्षैं क्षौं क्षः स्थान क्षेत्रपालधूपदीपसंहितं बलिं गृहण गृहण स्वाहा एष बलिः क्षेत्रपालाय नमः" इति दत्त्वा।

चक्र की दक्षिण-दिशा में ही पहले की भाँति मंडल बनाकर, क्षेत्रपाल की पूजाकर, बलि स्थापित कर, बलिपात्र के अमृत से **क्षां क्षीं........क्षेत्रपालाय नमः**। इससे बलि देवे।

मन्त्रार्थ–क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षौं क्षः स्थान के क्षेत्रपाल धूप-दीप सहित बलिग्रहण करें। यह आपको समर्पित है। यह बलि क्षेत्रपाल के लिए नमस्कारपूर्वक समर्पित है।

चक्रस्य उत्तरदिशि पूर्ववन्मंडलं कृत्वा गणेशमभ्यर्च्य बलिमुपनीय- "गां गीं गूं गैं गौं गः गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा बलिं गृहण गृहण स्वाहा एष बलिर्गणपतये नमः" इति दत्त्वा।

चक्र की उत्तरदिशा में पहले की भाँति मंडल करके, गणेश का पूजन कर बलि लाकर **गां गीं गूं......गणपतये नमः**। इससे गणपति-बलि प्रदान करे।

मन्त्रार्थ–गां गीं गूं.......। हे गणपति! आप श्रेयस प्रदान करने वाले हैं, आप सभी जनों को मेरे वश में लाइये। बलि ग्रहण कीजिये, ग्रहण कीजिये। यह आपको समर्पित है। यह बलि नमस्कारपूर्वक गणपति को समर्पित है।

स्व वामे चतुरस्त्र मंडलं कृत्वा पूर्ववत्सम्पूज्य तत्र साधारबलिं संस्थाप्य मूलेनाभिमंत्र्य धूपदीपादिना सर्वभूतं सम्पूज्य ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं फट् स्वाहा एष बलिः सर्वभूतेभ्यो नमः इति तत्त्वमुद्रया बलिपात्रामृतेनोत्सृज्य।

बायेंभाग में चौकोरमंडल कर, पहले की भाँति भलीभाँति पूजन कर, उसपर आधारसहित सार्वभूतबलि स्थापित कर, मूलमन्त्र से अभिमंत्रित

कर, धूप-दीप आदि से सर्वभूत का पूजन कर **ॐ ह्रीं सर्व........सर्वभूतेभ्यो नमः** इससे तत्त्वमुद्रा द्वारा बलिपात्र के अमृत से उत्सर्जन करे।

मन्त्रार्थ—ॐ ह्रीं सभीप्रकार के विघ्न करने वाले सभी भूतों को हुँ फट् स्वाहा यह बलि सर्वभूतों को नमस्कारपूर्वक समर्पित है।

चक्रस्थ प्रेतासनोपरिमूलेन मूर्त्तिं विचिंत्यात्मानं कामकलारूपं विभाव्य करकच्छपिकया पुष्पादिकं गृहीत्वा मूलाधारात्कुंडलिनीं ब्रह्मपथेन शिवापात्रां विभाव्य तत्रत्यामृतलोलीभूतां हृदयस्थाष्टदलपंकजे समानीय तदभेदेन मूलदेवीमंजनाद्रिनिभामित्यादि क्रमेण ध्यात्वा यंमिति वायुबीजेन वामनासया आवाह्य करस्थ पुष्पे समारोप्य।

देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामितावद्देवि इहावह ।।

इति मन्त्रं पठन् तत्पुष्पं क्लीं समूर्तौ निधायावाहनमुद्रया महाकाल सहिते अमुक देवि इहागच्छ इहागच्छ इत्यावाह्य स्थापनमुद्रया इहातिष्ठ इति संस्थाप्य सन्निधापनमुद्रया इह सन्निधेहि सन्निधेहि इति सन्निधाय निरोधिनीमुद्रया इह संनिरुध्य अंकुशेन लेलिहमुद्रया वा जीवन्यासं विधाय हूमित्यवगुण्ठ्य षडंगेन सकलीकृत्य छोटिकाभिर्दशदिग्बंधनं कृत्वा वमिति धेनुमुद्रयामृतकरणं च कृत्वा।

चक्र में स्थित प्रेतासन पर मूलमन्त्रोच्चारपूर्वक मूर्ति का चिन्तन करते हुए। अपने को कामकला के रूप में मानते हुए, करकच्छपिकामुद्रा से पुष्प आदि को ग्रहण कर, मूलाधार से कुंडलिनी को ब्रह्मपथ से शिवापात्र में मानते हुए, वहीं अमृत के लोलीभूत (लालायित) हृदयस्थित अष्टदलकमल पर लाकर, उससे अभेद के कारण मूलदेवी का अंजन के समान आदि या पूर्वोक्तक्रम से ध्यान करे, तब यं इस वायुबीज से बाईं नाक से आवाहन कर हाथ में स्थित पुष्पपर आरोपित कर, **देवेशि....... इहावह** इस मन्त्र को पढ़ते हुए उस पुष्प को **क्लीं** सहित मूर्ति पर रखे।

मन्त्रार्थ—हे देवेशि! आप भक्ति से सुलभ हैं। हे देवि! जब-तक मैं आपका पूजन करूँगा तब-तक आप अपने परिवार के सहित यहाँ पधारें।

तत्पश्चात् आवाहनमुद्रा से महाकालसहित **अमुक 'इष्टदेवी) इहागच्छ इहागच्छ** इस मन्त्र से आवाहन कर, स्थापनमुद्रा से **इह तिष्ठ इह तिष्ठ** इससे संस्थापनकर, सन्निधापनमुद्रा से **इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि** इससे सन्निधिकरण करके निरोधिनीमुद्रा से **इह संनिरुध्य** इस मन्त्र से संनिरोधकर अंकुशमुद्रा या लेलिहमुद्रा से जीवन्यास करके **हूँ** इस मन्त्र से अवगुंठन

कर, षडंग से सकलीकरण करके, छोटिका (चुटकी) द्वारा दशोदिशाओं में दिग्बंधन कर वं इस मन्त्र और धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे।

ॐ स्वागतं कुशलमिदमागम्य तामित्यभिलेप्ययोनिमुद्रां खड्गमुद्रां च प्रदर्श्य अग्नीशासुरवायुषु- मध्ये दिक्षु च षडङ्ग पूजयित्वा पंचदश- कोणेषु काल्यादि पंचदश देवीर्यथोक्तक्रमेणविभाव्य मूलमन्त्रमुच्चार्य महाकालसहिते अमुकदेवी सायुधे सपरिवारे मातस्तृप्यतामिति देवीपात्रामृतेन त्रिःसकृद्वा तर्पयित्वा मूलेन एतत्पाद्यं महाकालसहितायै अमुक देव्यै नमः इति पाद्यपात्रामृतेन दत्त्वा पादयोः। ॐ स्वागतं कुशल-मिदमागम्यताम्।

इससे अभिलेपन कर, योनिमुद्रा और षड्गमुद्रा का प्रदर्शन कर, अग्नि, ईशान, आसुर (नैर्ऋत्य) तथा वायु दिशाओं के मध्य स्थित षट्कोण में षडंगपूजन करके चक्र के पन्द्रहकोणों में काली आदि पन्द्रहदेवियों की यथोक्तक्रम से कल्पना करते हुए मूलमन्त्र का उच्चारण कर **महाकालसहित अमुक देवि सायुधे सपरिवारे मातस्तृप्यताम्** (महाकाल सहित अमुक देवी आयुध और परिवार के सहित हे माता! आप तृप्त होइये) ऐसा कह कर देवी-पात्र के अमृत से तीन या एकबार तर्पण कर मूलमन्त्र से **एतत्पाद्यं महाकालसहितायै अमुक देव्यै नमः** (यह पाद्य नमस्कारपूर्वक महाकालसहित अमुक देवी को समर्पित है।) इस मन्त्र से देवी के चरणों में पाद्यपात्र के अमृत से पाद्य अर्पित करे। यहाँ अमुक के स्थान पर दक्षिणाकालिके प्रयोग करे।

मूलमुच्चार्य महाकालसहितायै अमुकदेव्यै स्वाहेति शिरसि अर्घ्य पात्रामृतेनार्घ्यं दत्वा मूलेन महाकालसहितायै अमुक देव्यै मधुपर्कोवमिति मुखे दत्वा आचमनीयपात्रामृतेन आचमनीयमध्ये वं दत्वा मूलेन इमं स्नानीयं नमः इति सर्वांगे दत्वा।

मूलमन्त्र का उच्चारण कर **'महाकाल सहितायै अमुक देव्यै स्वाहा'** इससे शिरपर अर्घ्यपात्र के अमृत से अर्घ्यप्रदान करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्र से **'महाकाल सहितायै अमुक देव्यै मधुपर्को वं'** इससे देवता के मुख में मधुपर्क प्रदान करे। पुनः आचमनीयपात्र के अमृत से इसीप्रकार आचमनीय प्रदान करे तदनन्तर मूलमन्त्र से **'इमं स्नानीयं'** इस मन्त्र से देवता के सर्वांग पर स्नानीय द्रव प्रदान करे।

गंधमप्येवं दत्वा मूलेन धूपदीपाभरणवस्त्रादिकं आचमनीयपात्रा-मृतेनाचमनाय दत्वा पुरतस्त्रिकोण चतुरस्र मंडलं निर्माय नैवेद्यपात्रं मंडलोपरि

संस्थाप्य तत्त्वमुद्रया संस्पृश्य बलिपात्रामृतेन मूलमन्त्रेण महाकालसहितायै अमुक देव्यै नैवेद्यं ताम्बूलमिदं कर्पूरसहितं निवेदयामिति निवेद्य।

इसीप्रकार गंध भी प्रदान कर मूलमन्त्र से धूप, दीप, आभरण, वस्त्रादि तथा आचमनीयपात्र के अमृत से आचमन देवे। तब सामने की ओर त्रिकोण, चौकोर, मण्डल बना के उस मण्डल पर नैवेद्य पात्र को स्थापित कर, तत्त्वमुद्रा से स्पर्श कर, बलिपात्र के अमृत से मूलमन्त्र द्वारा **महाकालसहितायै अमुक देव्यै नैवेद्यं ताम्बूलमिदं कर्पूरसहितं निवेदयामि** इस मंत्र से नैवेद्य निवेदित करे।

देव्याः दक्षिणभागे महाकालभैरवं पूजयित्वा भैरवपात्रामृतेन संतर्प्य गुरुपंक्तिं पूजयेत् यथा देवीदक्षिणभागे वायव्यादीशानपर्यन्तं पंक्तिक्रमेण विभाव्य ॐ महादेव्यम्बायै नमः, महा देवानन्दनाथाय नमः, त्रिपुराम्बायै नमः, भैरवानन्दनाथाय नमः इति दिव्यौघ गुरून् पाद्यादिभिः सम्पूज्य गुरुपात्रामृतेन त्रिः सकृद्वा तत्त्वमुद्रया संतर्प्य।

देवी के दक्षिणभाग में महाकालभैरव का पूजन कर, भैरवपात्र के अमृत से भलीभाँति तर्पण कर, गुरुपंक्ति का पूजन करे। जैसे देवी के दाहिने भाग में वायव्य से ईशानपर्यन्त पंक्तिक्रम से कल्पना करके सर्वप्रथम **ॐ महादेव्यम्बायै नमः.......भैरवानन्दनाथाय नमः**। इसप्रकार से दिव्यौघ गुरुओं का पाद्यादि से भलीभाँति पूजन कर गुरुपात्र के अमृत से तीनबार अथवा एकबार भलीभाँति तर्पण करे।

ॐ ब्रह्मानन्दनाथाय नमः, पूर्णदेवानन्दनाथाय नमः, चलचित्तानन्दनाथाय नमः, चलाचलानंदनाथाय नमः, कुमारानन्दनाथाय नमः, क्रोधानन्दनाथाय नमः, वरदानन्दनाथाय नमः, स्मरदीपानन्दनाथाय नमः, मायाम्बायै नमः, मायावत्यम्बायै नमः इति सिद्धौघ गुरून् पाद्यादिभिः सम्पूज्य गुरुपात्रामृतेन तत्त्वमुद्रया त्रिः सकृद्वा संतर्प्य।

ॐ ब्रह्मानन्दनाथाय नमः............मायावत्यम्बायै नमः इन मन्त्रों से सिद्धौघ गुरुओं का पाद्यादि से भलीभाँति पूजन कर गुरुपात्र के अमृत से तत्त्वमुद्रा के द्वारा तीन या एकबार भलीभाँति तर्पण करे।

ॐ विमलानन्दनाथाय नमः, कुशलानन्दनाथाय नमः, भीमसेनानन्दनाथाय नमः, सुधाकरानन्दनाथाय नमः, मीनानन्दनाथाय नमः, गोरक्षानन्दनाथाय नमः, भोजदेवानन्दनाथाय नमः, प्रजापत्यानन्दनाथाय नमः, मूलदेवानन्दनाथाय नमः अर्हंतिदेवानन्दनाथाय नमः, विघ्नेश्वरदेवानन्दनाथाय नमः, हुताशनानन्दनाथाय नमः, समयानन्दनाथाय नमः,

संतोषानन्दनाथाय नमः, अमुकानन्दनाथाय (स्वगुरवे) नमः इति मानवौघ गुरून् पाद्यादिभिः संपूज्य गुरुपात्रामृतेन तत्त्वमुद्रया संतर्प्य पंचदशकोणेषु पंचदशदेवीः सम्पूजयेत्।

ॐ विमलानन्दनाथाय नमः........ अमुकानन्दनाथाय (अपने गुरु) पर्यन्त मानवौघ गुरुओं का पाद्यादि से भलीभाँति पूजन कर, गुरुपात्र के अमृत से तत्त्वमुद्रा का आश्रय ले भलीभाँति तर्पण करे, तत्पश्चात् पाँचत्रिकोणों के पन्द्रह कोणों में पन्द्रह देवियों का पूजन करे।

प्रथमतः सर्वाश्यामा इति क्रमेण ध्यात्वा सन्मुखकोणे ॐ नमः काल्यै नमः वामकोणे ॐ नमः कपालिन्यै नमः दक्षिण कोणे ॐ नमः कुल्लायै नमः इति सम्पूज्य योगिनीपात्रामृतेन त्रिः सकृद्वा तत्त्वमुद्रया संतर्प्य तद्बाह्य त्रिकोणे ॐ नमः कुरुकुल्लायै नमः, ॐ नमः विरोधिन्यै नमः, ॐ नमः विप्रचित्तायै नमः, इति पाद्यादिभिः संपूजयित्वा पूर्ववत् संतर्प्यतद्बाह्य त्रिकोणे पूर्ववत् उग्रां, उग्रप्रभां, दीप्तां पूर्ववत् संपूज्य संतर्प्य तद्बाह्य त्रिकोणे नीलां, घनां, बलाकां पूर्ववत् सम्पूज्य संतर्प्य तद्बाह्य त्रिकोणे मात्रां मुद्रांमितांपूर्ववत् सम्पूज्य संतर्प्य।

पहले **सर्वाश्यामा**–इसक्रम से ध्यान करके सबसे भीतरी त्रिकोण के सम्मुख कोण में **ॐ नमः काल्यै नमः**, बायें कोण में **ॐ नमः कपालिन्यै नमः**, दक्षिण कोण में **ॐ नमः कुल्लायै नमः** इसक्रम से देवियों का भलीभाँति पूजन कर योगिनीपात्र के अमृत से तीन या एकबार भलीभाँति तर्पण करे। पुनः उसी त्रिकोण के बाहर वाले त्रिकोण के कोणों में भी इसी क्रम से **ॐ नमः कुरुकुल्लायै नमः, ॐ नमः विरोधिन्यै नमः, ॐ नमः विप्रचित्तायै नमः** से पाद्यादि के द्वारा पहले की भाँति ही पूजन कर तर्पण करे, तब उसके बाहर वाले त्रिकोण में पहले की भाँति सम्मुख वाम और दक्षिण कोणों के क्रम से **उग्रा, उग्रप्रभा एवं दीप्ता** का पहले की भाँति पूजन और तर्पण करे। तदनन्तर उससे बाहर के त्रिकोण में **नीला, घना** और **बलाका** का पहले के बताये अनुसार पूजन एवं तर्पण करे। तब उस त्रिकोण से भी बाहर वाले त्रिकोण में पहले की ही भाँति **मात्रा, मुद्रा** तथा **मिता** का पूर्ववत् तर्पण एवं मार्जन करे।

अष्टदलेषु अष्टशक्तिर्ध्यात्वा पूजयेत् यथा पूर्वदले आं ब्राह्यै नमः, अग्निदले ईं नारायण्यै नमः, ऊँ माहैश्वर्यै नमः, ॠं चामुण्डायै नमः, लॄं कौमार्यै नमः, ऐं अपराजितायै नमः, औं वाराह्यै नमः, अः नारसिंह्यै नमः इति पाद्यादिभिः सम्पूज्य योगिनीपात्रामृतेन त्रिःसकृद्वा तत्त्वमुद्रया संतर्प्य अष्टदलाग्रेषु अष्टभैरवान् पूजयेत्।

अष्टदलकमल के आठदलों में ध्यानपूर्वक आठशक्तियों का पूजन करना चाहिए। जैसे–पूर्वीदल में **आं ब्राह्मै नमः**, अग्निकोणीय दल में **ईं नारायण्यै नमः** इसीक्रम से **ऊं माहेश्वर्यै नमः......अः नारसिंह्यै नमः** कहते हुए पाद्यादि से भलीभाँति पूजनकर, योगिनीपात्र के अमृत से तीन या एकबार तत्त्वमुद्रा द्वारा भलीभाँति तर्पण करे। तब इन आठदलों के अगलेभाग में आठभैरवों का पूजन करे।

पूर्वदलाग्रे ऐं ह्रीं अं असितांग भैरवाय नमः, ऐं ह्रीं इं रुरु भैरवाय नमः, ऐं ह्रीं उं चंडभैरवाय नमः, ऐं ह्रीं ऋं क्रोधभैरवाय नमः, ऐं ह्रीं लृं उन्मत्त भैरवाय नमः, ऐं ह्रीं एं कपालभैरवाय नमः, ऐं ह्रीं ओं भीषणभैरवाय नमः, ऐं ह्रीं अं संहारभैरवाय नमः इति क्रमेण पाद्यादिभिः सम्पूज्य भैरवपात्रामृतेन संतर्प्य दिक्पालान् पूजयेत्।

पूर्वी दलाग्र में **ऐं ह्रीं अं असितांगभैरवाय नमः......ऐं ह्रीं अं संहारभैरवाय नमः** तक पूर्वादिक्रम से ही आठ भैरवों का पाद्यादि से पूजनकर, भैरवपात्र के अमृत से तर्पण करके दिक्पालों का पूजन करे।

ऐं इन्द्राय सुराधिपतये गजवाहनाय सपरिवाराय वज्रहस्ताय नमः। रं वह्नये तेजोऽधिपतये छागवाहनाय शक्तिहस्ताय नमः। यं यमाय प्रेताधिपतये महिषवाहनाय कृष्णवर्णाय दंडहस्ताय नमः। क्षं नैर्ऋत्ये रक्षोऽधिपतये अश्ववाहनाय खड्गहस्ताय नमः। वं वरुणाय जलाधिपतये मकरवाहनाय पाशहस्ताय नमः। यं वायवे वायव्याधिपतये मृगवाहनाय अंकुशहस्ताय नमः। कुं कुबेराय धनाधिपतये नरवाहनाय गदाहस्ताय नमः। ह्रौं ईशानाय भूताधिपतये शूलहस्ताय वृषवाहनाय नमः इति पूर्ववत् सम्पूज्य पाद्यादिभिः सम्पूजयेत्।

ऐं इन्द्राय सुराधिपतये......वृषवाहनाय नमः। पर्यन्त मन्त्रों का क्रमशः उच्चारण करता हुआ पूर्वादिक्रम से इन्द्रादि दिक्पालों का पाद्यादि से विधिवत् पूजन करे।

मन्त्रार्थ–

१. **ऐं इन्द्रदेव** जो देवताओं के अधिपति, हाथी को वाहन बनाये हुए, हाथ में वज्र धारण किये हैं, उन्हें परिवारसहित नमस्कार है।

२. **रं अग्निदेव** जो तेज के अधिपति हैं, छाग (भेड़) को वाहन बनाये हुए, हाथ में शक्तिधारण किये हैं, उन्हें नमस्कार है।

३. **यं यमदेव** जो प्रेतों के अधिपति हैं, महिष को वाहन बनाये हुए हैं, काले रंग के हैं तथा हाथ में दंड धारण किये हैं, उन्हें नमस्कार है।

४. **क्षं नैर्ऋति** को जो राक्षसों के अधिपति हैं, अश्व को वाहन बनाये हुए हैं, हाथ में खड्गधारण किये हैं, उन्हें नमस्कार है।

५. **वं वरुणदेव** जो जल के अधिपति हैं, मकर को वाहन बनाये हुए हैं, हाथ में पाश धारण किये हैं, उन्हें नमस्कार है।

६. **यं वायुदेव** जो वायव्यकोण के अधिपति हैं, मृग को वाहन बनाये हुए हैं, हाथ में अंकुशधारण किये हैं, उन्हें नमस्कार है।

७. **कुं कुबेर** जो धन के अधिपति हैं, मनुष्य को वाहन बनाये हुए हैं, हाथ में गदा धारण किये हैं, उन्हें नमस्कार है।

८. **ह्रौं ईशानदेव** जो भूतों के अधिपति हैं, वृषभ को वाहन बनाये हुए हैं, हाथ में शूल धारण किये हैं, उन्हें नमस्कार है।

इति क्रमेण दिग्पालान्पूजयित्वा तदस्त्राणि पूजयेत् यथा—वामोर्ध्व हस्ते ॐ खड्गाय नमः, तदधो हस्ते ॐ मुंडाय नमः, दक्षिणाधोहस्ते ॐ वराय नमः, तदोर्ध्वहस्ते ॐ अभयाय नमः इति संपूज्य।

इस (उपर्युक्त) क्रम से दिक्पालों का पूजन करने के पश्चात् उन इष्टदेवी (कालिकाम्बा) के अस्त्रों का पूजन करना चाहिए, जैसे बाईं ओर ऊपरी हाथ में **ॐ खड्गाय नमः** से खड्ग का, उसके निचले हाथ में **ॐ मुण्डाय नमः** से मुण्ड का, दाहिनी ओर के निचले हाथ में **ॐ वराय नमः** से वरदमुद्रा का एवं दाहिनी ओर के ऊपरी हाथ में **ॐ अभयाय नमः** से अभयमुद्रा का भलीभाँति पूजन करे।

ततो घंटां संपूज्य अभिवाद्य, प्राणायामषडङ्गन्यासं पुनर्विधाय मुद्रां प्रदर्श्य तत्त्वोक्तमालयाष्टोत्तरं सहस्रं शतं विंशति वारान तस्यामेव विलीनां विभाव्य गुरून् स्वशिरसि देवीं स्वहृदये समर्प्य वामभागे निर्माल्य वासिनीं निर्माल्येन संपूज्य, यन्त्रलेपं शिरसि निधाय यथा सुखं विहरेदिति।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे पूजाविधिकथननाम पंचमंतत्त्वम्॥५॥

तत्पश्चात् घंटा का पूजन एवं अभिवादन, प्राणायाम, षडंगन्यास पुनः करके मुद्रा का प्रदर्शन करे तथा तत्त्वक्रम में कहे अनुसार माला से एक हजार आठ, एक सौ आठ या २८ बार उसी में अपने को विलीन मानते हुए मूलमन्त्र का जप करे, तदनन्तर गुरुओं को अपने शिर पर, देवी को हृदय में समर्पित कर, बायेंभाग में स्थित निर्माल्यवासिनी का निर्माल्य से पूजन कर, यन्त्र के लेप को शिर पर धारण कर, जैसे सुख मिले वैसे विहरण करे।

श्रीराघवभट्टविरचित कालीतत्त्व की पूजविधिकथन नामक पाँचवे तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई॥५॥



षष्ठतत्त्वम्

* द्रव्यशुद्धिविधि *

अथ द्रव्यशुद्धिविधि कथ्यते–द्रव्यशुद्धि विधि कही जाती है।

तदुक्तं विजयाकल्पे–जो विजयाकल्प में कहीं है।

संविदासवयोर्मध्ये संविद्देवि गरीयसी–हे देवि ! संविदा और आसव में संविदा ही श्रेष्ठ है।

सापुनश्चतुर्धा–वह चारप्रकार की होती है।

तदुक्तं तत्रैव–जो वहीं (विजयाकल्प में ही) कहा गया है।

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा चैव चतुर्विधा ।
श्वेतरक्तपीतश्यामसंविदा वर्णभेदतः ।।१।।

ब्राह्मणीसंविदा श्वेतवर्ण की, क्षत्रियासंविदा रक्तवर्ण, वैश्या संविदा पीतवर्ण तथा शूद्रासंविदा श्यामवर्ण की होने के कारण संविदा चार प्रकार की कही गयी है।।१।।

संविदे ब्रह्मसंभूते ब्रह्मपुत्रि सदानघे ।
भैरवानां तु दत्तात्वं पवित्राभव सर्वदा ।।२।।

ॐ ब्राह्मण्यै नमः स्वाहेति मन्त्रेण ब्राह्मणीं शोधयेत्।

इस मन्त्र से ब्राह्मणीसंविदा का शोधन करे। **मन्त्रार्थ**–हे संविदा! आप ब्रह्मा से उत्पन्न हुई हैं, आप ब्रह्मा की पुत्री हैं। आप सदैव अघ (पाप) रहित हैं। आप ब्रह्मा द्वारा भैरवों को प्रदान की गई हैं। अतः आप सर्वदा पवित्र हों। ऐसी ब्राह्मणी को नमस्कार है।।२।।

सिद्धिमूलि क्रिये देवि हीनबोधप्रबोधिनी ।
राजाप्रजावश्यकरी शत्रुकंठ निषूदिनी ।।३।।

ॐ स्त्रीं क्षत्रियायै नमः स्वाहेति मंत्रेण क्षत्रियां शोधयेत्।

सिद्धिमूलि क्रिये.......स्वाहा' इस मन्त्र से क्षत्रियासंविदा का शोधन करे।

मन्त्रार्थ–क्रिया के सिद्धि का आप मूलाधार हैं। आप जिनमें बोधतत्त्व का अभाव है ऐसों का भी प्रबोध करनेवाली हैं। आप राजा और प्रजा दोनों को ही वश में करनेवाली हैं, आप शत्रुओं का कंठनिषूदन (मारने का काम) करनेवाली हैं। ऐसी क्षत्रियासंविदा को नमस्कार है।।३।।

अपरां– अन्य (वैश्या) संविदा शोधन के लिए।

अज्ञानेन्धन दीपाग्ने ज्ञानाग्ने ज्ञानरूपिणी ।
अज्ञानस्याहुतिं प्रीतिं सम्यक्ज्ञानं प्रयच्छ मे ।।४।।

ॐ ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा मंत्रेण शोधयेत्।

अज्ञानेन्धनदीपाग्ने..........स्वाहा इस मन्त्र से वैश्यासंविदा का शोधन करे।

मन्त्रार्थ–अज्ञानरूपी ईन्धन को जलाने हेतु आप अग्निस्वरूप हैं। आप स्वयं ज्ञानरूपी अग्नि हैं किंवा आप मेरे अज्ञान की आहुति एवं मेरे प्रेम को स्वीकार करें तथा मुझे सम्यक्ज्ञान प्रदान करें। ह्रीं वैश्यासंविदा को नमस्कार है।।४।।

ततः परां– तब अन्य शूद्रा संविदा के शोधन के लिए।

नमस्यामि नमस्यामि योगमार्ग प्रदायिनी ।
त्रैलोक्य विजयेमातः समाधिफलदा भव ।।५।।
ॐ क्लीं शूद्रायै नमः स्वाहा कथितं मन्त्र मुत्तमम्।

नमस्यामि..........स्वाहा यह शूद्रासंविदा के संशोधन का उत्तममन्त्र कहा गया है।

मन्त्रार्थ–हे योगमार्गप्रदान करनेवाली संविदे! आपको बारम्बार नमस्कार है। हे माता! आप त्रैलोक्यविजय प्रदान करनेवाली हैं। आप मेरे लिए समाधि का फल प्रदान करनेवाली हों, शूद्रासंविदा को नमस्कार है।।५।।

यदाएकेनैव मंत्रेण सर्वाः शोधयेत्– उपर्युक्त पद्धति से चारो प्रकार की संविदाओं का शोधन करे अथवा एक ही मन्त्र से सभीप्रकार की संविदाओं का शोधन करना चाहिए।

तदुक्तं तत्रैव– जो वहीं बताया गया है।

ॐ अमृतेअमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि पदं ततः ।
अमृतमाकर्षय द्वंद्वं सिद्धिं देहि ततः परं ।।
त्रैलोक्यं मे ततो ब्रूयात् व शमानय तत्परम् ।
द्विठान्तोऽयंमनुः प्रोक्तं चतुष्काणां च शोधने ।।

'ॐ अमृते अमृतोद्भवेवर्षिणि अमृतं आकर्षय आकर्षय सिद्धिं देहि त्रैलोक्यं मे वशमानय स्वाहा'।

मन्त्रार्थ–हे अमृते! आप अमृत से उत्पन्न हैं। आप अमृत वर्षा करने वाली है, आप मेरे लिए अमरता को आकर्षित करें अवश्य आकर्षित करें, आप मुझे सिद्धि प्रदान करें, आप तीनों लोकों को मेरे वश में लाएं।

* आनन्दभैरवध्यान *

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
अष्टादशभुजं देवं पंचवक्त्रं त्रिलोचनम् ।।६।।
अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम् ।
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ।।७।।
कपालखट्वाङ्गधरं घण्टां डमरुवादिनम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं गदामुशलधारिणम् ।।८।।
खड्गखेटकपट्टीशं मुद्गरं शूलदण्डधृक् ।
विचित्रं खेटकं मुण्डं वरदाभयपाणिनम् ।।९।।
लोहितं देव-देवेशं भावयेत्साधकोत्तमः ।।१०।।

साधकों में श्रेष्ठ साधक ऐसे देवताओं के भी देवेश, अर्थात् सर्वोत्तम देव, (आनन्दभैरव) की भावना अर्थात् ध्यान करे जो करोड़ों सूर्य के समान आभावाले, करोड़ों चन्द्रमा के समान सुन्दर व शीतल हैं। जो अट्ठारहभुजाएँ, पाँचमुँह और तीननेत्र धारण करनेवाले देवता हैं। जो अमृत के सागर के मध्य में स्थित ब्रह्मकमल के ऊपर विराजमान हैं। जो वृष पर आरूढ़, नीलेकण्ठ वाले तथा सभीप्रकार के आभूषणों से विभूषित हैं। जो अपने हाथों में कपाल-खट्वाङ्ग और घण्टा धारण किये हैं। जो डमरु बजा रहे हैं। जो पाश, अंकुश, गदा, मुशल, खड्ग, खेटक, पट्टीश, मुद्गर, शूल, दण्ड, वरद और अभय मुद्राओं में हाथ और खेटक, मुण्ड धारण किये हुए हैं तथा जो लालवर्ण के हैं।।६-१०।।

एवं ध्यात्वा 'ह्स्क्ष्म्ल्व्र्यूं आनन्द भैरवाय वषट्' इत्यानन्द भैरवं तत्र वार त्रयंपूजयेदिति– इसप्रकार ध्यान करते हुये **ह्स्क्ष्म्ल्व्र्यूं आनन्द भैरवाय वषट्।** इससे वहाँ आनन्द भैरव का तीनबार पूजन करे।

* सुधादेवी ध्यान *
(आनन्द भैरवी)

भावयेच्च सुधां देवीं चन्द्र कोटियुतप्रभां ।
हिमकुंदेदुधवलां पंचवक्त्रां त्रिलोचनां ।।
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानंदकरोद्यतां ।
प्रहसंती विशालाक्षीं देवदेवस्य सन्मुखीं ।।११।।

हस्क्ष्भ्ल्व्र्यीं सुधादेव्यै वौषडित्यानंद भैरवीं सम्पूज्य।

सुधादेवी का साधक ध्यानकरे, वे सुधादेवी करोड़ों चन्द्रमाओं की

प्रभा से युक्त हैं। वे बर्फ, कुन्द और चन्द्रमा की भाँति श्वेतवर्ण की हैं। उनके पाँच मुख एवं प्रत्येक मुख में तीननेत्र हैं। वे देवी १८ भुजाओं से युक्त हैं तथा सबको आनन्द प्रदान करने के लिए सदैव उद्यत रहती हैं। वे हँसती हैं, उनके नेत्र विशाल हैं एवं वे सदैव देवों के देव आनन्द भैरव के सम्मुख उपस्थित रहती हैं।।११।।

ह्स्क्ष्भ्ल्व्र्यीं सुधादेव्यै वौषट् इसमन्त्र से आनन्द भैरवी का भलीभाँति पूजन करे।

द्रव्यमध्ये त्रिकोण चक्रंविलिख्य वामावर्तेन पश्चिमकोणादारभ्य दक्षिणकोणपर्यन्तं अकारादि षोडशाक्षरं दक्षिणकोणादुत्तरकोणपर्यन्तं कादि षोडशाक्षरं उत्तरादि पश्चिमकोणपर्यन्तंथादि षोडशाक्षरं त्रिकोण मध्ये हलक्ष त्रयंविलिख्य।

तब साधक द्रव्य के मध्य में त्रिकोणचक्र लिखकर, वामावर्त से पश्चिमकोण से आरम्भ कर दक्षिण तक अकारादि (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अ:) १६ वर्णों को, दक्षिणकोण से उत्तरकोण तक क से आरम्भ कर (क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त) इन सोलह वर्णों को एवं उत्तर से पश्चिमकोण तक थ से आरम्भ कर (थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स) इन सोलह अक्षरों को लिखकर त्रिकोण के मध्य में ह ल क्ष इन तीनवर्णों को लिखे।

ततः शिवशक्तिसमागमाद्रव्यमध्ये अमृतत्त्वंविचिंत्य धेनुमुद्रयामृती कृत्य वमिति वरुणबीजं मूलं च अष्टधा पात्रं धृत्वा पठेत्।

तब शिव-शक्ति के समागम से प्राप्त द्रव्य के मध्य में अमृत् तत्त्व, का चिन्तन करता हुआ व धेनुमुद्रा से उसका अमृतीकरण करके वं इस वरुण बीज और मूलमंत्र का आठबार पाठ करके पात्र में धारण करे।

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे– जैसा कि स्वतन्त्रतन्त्र में कहा गया है।

ततश्चभावयेद्द्रव्यमतिरक्तनिभं प्रिये ।
अकथादि त्रिपंक्त्यातु हलक्षाक्षर मंडितम् ।।१२।।
पूर्वोक्त योनिमुद्रायां शिवशक्तयोः ।
समागमंअमृतं चिन्तये द्देवीमष्टधा अमृतं जपेत् ।।१३।।

हे प्रिये! तत्पश्चात् अत्यन्त लालरंग के रक्त के समान, रक्तवर्ण द्रव्य (तीर्थ) का साधक ध्यानकरे जो अ, क, थ से आरम्भ होनेवाली १६-१६ वर्णों की तीन पंक्तियों और ह ल क्ष इन तीन वर्णों से सुशोभित

है। तब पहले कही गई योनिमुद्रा से शिवशक्ति के समागम से उत्पन्न अमृत का चिन्तन करता हुआ देवी के अमृत (अमृतीकरणमन्त्र) का आठ बार जप करे।।१२-१३।।

अष्टधा मूल मन्त्रं च घटं धृत्वा जपेत्ततः ।।१४।।

तब घट को (स्थापित) कर उसपर आठबार मूलमंत्र का जप करे।।१४।।

एतत्तु कारणं देवि सुरसंघ निषेवितम् ।
अतएव तस्यनाम सुरेति भुवनत्रये ।।१५।।

हे देवि! इसप्रकार से संशोधित कारणद्रव्य का देवताओं के समूह सेवन करते हैं इसीलिए तीन लोकों में उसका सुरानाम प्रसिद्ध है।।१५।।

अस्याः गंधः केशवस्तु तेन गन्धेनभावितः ।
न पूजयेत् परां देवीं कालिकां दक्षिणामिति ।।१६।।

इसका गंध विष्णुस्वरूप है, इससे भावित होकर परा (सर्वश्रेष्ठ) देवी दक्षिणकालिका का पूजन नहीं करना चाहिये। अर्थात् कारणद्रव्य के गंध पर ध्यान न दे।।१६।।

अथमांस शुद्धिः (मांसशुद्धि)

मांसं त्रिविधं भवति तदुक्तं रुद्रयामले ।
मांसं तु त्रिविधं देवि जलखेचरभूचरम् ।।१७।।

मांस तीनप्रकार का होता है जैसा रुद्रयामलग्रन्थ में कहा गया है। हे देवि! मांस तीन प्रकार का होता है, जलचर, खेचर, भूचर, यह निर्धारण उन स्थलों से सम्बन्धित प्राणियों पर निर्भर है।।१७।।

गो नरेभाश्व महिषं वाराहाजंमृगोद्भवः ।
महामांसाष्टकं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारणम् ।।१८।।

गौ या बैल, मनुष्य, हाथी, घोड़ा, भैंसा, सूअर, बकरा, मृग इन आठ पशुओं से उत्पन्न मांस, महामांस कहे गये हैं जो देवता को प्रसन्नता देनेवाले हैं।।१८।।

तद्भावे तदनुकल्पः— उसके अभाव में उसके अनुकल्प (प्रतीक) का प्रयोग करे।

तदुक्तं समयाचारतन्त्रे—जो समयाचारतन्त्र में कहा गया है।

मांस के अनुकल्प—

लशुणार्द्रकपिणाक गोधूममाषपंचकम् ।
लवणं च महेशानि मांसप्रतिनिधौस्मृतः ।।१९।।

हे महेशानि ! लहसुन, आदी, पिणाक (हींग), गेहूँ, ऊर्द ये पाँच और नमक ये मांस के प्रतिनिधि बताये गये हैं॥१९॥

'ॐ प्रतद्विष्णुस्तवति वीर्येण मृगो न भीमो कुचरो गरिष्ठाः यस्योरुषु्त्रिषु विक्रमेणाधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा' इति मंत्रेण मांसंशोधयेत्।

ॐ प्रतद्विष्णु----विश्वा इसमन्त्र से मांस का शोधन करे।

अथमत्स्य शुद्धिः (मत्स्यशुद्धि)

तदुक्तं तत्रैव–जो वहीं कहा गया है।

मत्स्यंतु त्रिविधं ज्ञेयं उत्तमाधमम् ध्यमम्।
उत्तमं त्रिविधं देवि! शालपाठीनरोहित।।२०।।

मत्स्य, उत्तम, मध्यम और अधम भेद से तीनप्रकार का जानना चाहिये। उत्तम श्रेणी के मत्स्य भी शाल, पाठीन, रोहित इन तीन प्रकारों के होते हैं॥२०॥

प्राचीनं कण्टकैर्हीनम् तैलाक्तं स्वादसंयुतम्।
देव्याःप्रीतिकरं चैव मध्यमं तूदीरितम्।।२१।।
क्षुद्राणि तानि सर्वाणि अधमान्यातु सत्तमा।।२२।।

जो मत्स्य पुराना, काँटो से रहित, तेल में डूबा हुआ, स्वादयुक्त, देवी को प्रसन्नता देनेवाला होता है उसे मध्यम मत्स्य कहा गया है तथा अन्य सभी छोटे मत्स्य अधम कहे गये हैं॥२१-२२॥

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्व्वारुकमिवबन्धनान् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्।।
इतिमन्त्रेण मत्स्यं शोधयेत्।

ॐ त्र्यम्बकं......मामृतात् इसमन्त्र से मत्स्य का शोधन करे।

अथमुद्राशुद्धिः (मुद्राशुद्धि)

तदुक्तं कुलार्णवे–जो कुलार्णव में कही गई है।

ब्रैहेयं मण्डलाकारं चन्द्रबिम्बनिभं शुभम्।
चारुरूपं मनोहारि शकराद्यैः प्रपूरितम्।
पूजाकाले तु देवानां मुद्रैषा परिकीर्तिताः।।२३।।

धान से उत्पन्न चावल से बनी, चन्द्रमा के बिम्ब के समान मण्डलाकार, शुभ, सुन्दर, मन को अच्छा लगनेवाली चीनी आदि से

भरी हुई जो रोटिका संभवतः पुआ आदि, पूजा के समय प्रयोग की जानेवाली मुद्रा कही गई है॥२३॥

'ॐ तद्विष्णोः परमंपदं सदापश्यन्ति सूरयः दिवीवचक्षुराततम् तद्विप्रासो द्विपन्यवो चाग्निवान्सः समिंधते विष्णोर्यत् परमं पदम्' इति मन्त्रेण मुद्रां शोधयेत्।

ॐ तद्विष्णोः........पदम्। इसमंत्र से मुद्रा का शोधन करे।

अथ कुण्डगोलोद्भवशुद्धिः यथा– अब कुण्डगोलशुद्धि कहते हैं जैसे।

ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतुत्वष्टारूपाणि पिंशतु।
आसिंचतु प्रजापतिर्धातागर्भं दधातु ते।।
गर्भं धेहि सिनीवाली! गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते आश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ।।

प्लूं ग्लूं स्लूं म्लूं न्लूं स्वाहा अमृते अमृतोद्भवे अमृतवार्षिणी। अमृतं श्रावय श्रावय स्वाहेति मंत्रेण कुण्डगोलोद्भवादिकं शोधयेदिति।

ॐ विष्णुर्योनि..........स्वाहा। इसमन्त्र से कुण्डगोलोद्भवादि का शोधन करे। (मन्त्रार्थ गुरुगम्य है)

अथतत्त्वशुद्धिः तत्त्वशुद्धि तदुक्तं श्रुतौ–अब तत्त्वशुद्धि कहते हैं जो वेदों में कहा है।

ॐ प्राणापानसमानोदानव्यानो मे शुद्ध्यंतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्माभूयासं स्वाहा। ॐ पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानि मे शुद्ध्यंतां ज्योतिरहं विरजाविपाप्मा भूयासं स्वाहा। ॐ प्रकृत्यहंकारबुद्धिर्मनःश्रोत्राणि मे शुद्ध्यंतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा। ॐ त्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवचांसि मे शुद्ध्यंतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा। ॐ पाणिपादपायूपस्थश्रद्धामेधा शुद्ध्यंतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा। ॐ स्पर्शरूपरसगंधाकाशानि मे शुद्ध्यंतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा। ॐ वायुः तेजः सलिलः भूम्यात्मनो मे शुद्ध्यंतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा इति सप्तमन्त्रैः हस्ताभ्यां सर्वांगे मार्जयेदिति तत्त्वशुद्धिः।

'प्राणापान.......स्वाहा' पर्यन्त सातमन्त्रों को पढ़ते हुये दोनों हाथों से सर्वांग का मार्जन करे। ऐसा करने से तत्त्वशुद्धि होती है।

मन्त्रार्थ–मेरे प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, प्रकृति, अहंकार, बुद्धि, मन, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पैर, पायु, उपस्थ, श्रद्धा, मेधा, स्पर्श, रूप, रस, गंध, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि, आत्मा शुद्ध हों। मैं ज्योतिस्वरूप हूँ मैं निर्दोष और निष्पाप होऊँ।

अथशक्तिशुद्धिः (शक्तिशुद्धि)

तदुक्तं कुलतंत्रे–जो कुलतन्त्र में कही है।

अभिषेकाद्भवेद्च्छुद्धिः मन्त्रस्योच्चाराणाच्छुतौ।
रतिकाले महेशानि दीक्षाकाले च कन्यका।।२४।। शुद्ध्यन्तीतिशेषः

हे महेशानि! कन्यकाओं की शुद्धि रतिकाल और उनके दीक्षा ग्रहण दोनों ही समयों में उनके अभिषेक एवं वैदिक मन्त्रों के उच्चारण से होती है॥२४॥

शुद्धेन रेतसा चापि जलेन मनुनामुना।
सर्वांगमभिषिंचेन्नारीं रंडां वा मन्त्रवर्जिताम् ।।२५।।

जो स्त्री, वैश्यानारी मन्त्र प्रयोग की अधिकारिणी न हो शुद्ध वीर्य, जल से, वेदमन्त्रों को छोड़कर मूलमन्त्र से उसके सभी अंगों का अभिषिंचन करना चाहिये॥२५॥

आदौ मायां समुच्चार्य त्रिपुरायै समुच्चरेत्।
नमः शब्द समुच्चार्य इमां शक्तिं ततो वदेत् ।।२६।।
पवित्रीकुरुशब्दांते ममशक्ति कुरु प्रिये।
वह्नि कांतां समुच्चार्य शुद्धिमन्त्राः सुरेश्वरि ।।२७।।

हे सुरेश्वरि ! सर्वप्रथम मायाबीज (ह्रीं) का उच्चारण करके **त्रिपुरायै** कहे तत्पश्चात् **नमः** शब्द का उच्चारण करने के पश्चात् **इमां शक्तिं** बोले तदनन्तर **पवित्रीकुरुशब्द** के अन्त में **हे प्रिये ! ममशक्तिं कुरु** और सबके अन्त में **वह्निकांता** (स्वाहा) का उच्चारण करे। ऐसा करने पर **'ह्रीं त्रिपुरायै नमः इमांशक्तिं पवित्रीकुरु मम शक्तिं कुरुस्वाहा'** यह शक्तिशोधनमन्त्र बनता है।

मन्त्रार्थ–ह्रीं त्रिपुरा देवी को नमस्कार है, आप इस (प्रस्तुत) शक्ति को पवित्र करके मेरी शक्ति बनायें॥२६-२७॥

अनेन मनुना देवि अभिषिक्ताः स्त्रियः सदा।
रममाणो भवोन्नित्यं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।।२८।।

हे देवि ! इसमन्त्र से अभिषेक की गई स्त्रियों के साथ सदैव रमण करता हुआ साधक, सभी सिद्धियों को प्राप्त करता है॥२८॥

अभिषेकादिति प्रथमं ह्रीं त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रीकुरु ममशक्तिं कुरु स्वाहेति मन्त्रेण जलादिनाभिषिंच्य शनैः शनैः कर्णौस्वाभेदेन निजमंत्रं जपन् अंगिकुर्यादिति रत्यर्थं शुद्धिः।

रतिकालिकी शुद्धि का तात्पर्य है कि पहले **ह्रीं त्रिपुरायै नमः........स्वाहा** मन्त्र से जलादि के द्वारा शक्ति का अभिषेक कर, अपने को एकाकार कर धीरे-धीरे उसके कानों में अपने मूलमन्त्र का जप करता हुआ साधक, उस शक्ति को अंगीकार करे।

दीक्षाकाल पूजाकालेत्यर्थः यद्वातासां प्रथमतःदीक्षार्थं जलादिना उक्तमंत्रेणाभिषिंचेदिति दीक्षार्थं शक्तिशुद्धिः।

पूर्ववर्णित श्लोक में दीक्षाकाल का तात्पर्य पूजाकाल से है। ऐसा करते समय जो शक्ति या शक्तियाँ प्रस्तुत हों उनका पहले पूर्वकथित **ह्रीं त्रिपुरायै........स्वाहा** मन्त्र पढ़कर अभिषेक करे। यह प्रयोग दीक्षा (पूजा) हेतु शक्तिशुद्धि का है।

तथा च उक्त मन्त्रेणाभिषिंच्य स्वाभेदेनतस्याः कर्णे निज मंत्रं जपन् सर्वकर्म कुर्यादित्यदीक्षितशक्तिः शुद्धिः— और ऊपर कहे गये मन्त्र से अभिषेक कर अपने को उससे एकाकार कर, अपने मूलमंत्र को धीरे-धीरे जपता हुआ, सबकार्य सम्पन्न करे। यह अदीक्षित शक्तिशुद्धि का प्रयोग है।

दीक्षिताशक्तिः सर्वदा सर्वकर्मणि शुद्धैव— दीक्षिता शक्ति तो सदैव सभी कामों में शुद्ध होती है उसके शुद्धि की आवश्यकता नहीं होती।

तदुक्तं यामलादौ—जो यामल आदि में कहा गया है।

दीक्षिता तु च या शक्तिः सैव शुद्धा भवेत्सदा ।
अदीक्षिता तु या शक्तिः मायां तस्यै निवेदयेत् ।
अथवोक्तविधानेन शोधयेत्छक्तिमुत्तमाम् ।। २९।।

जो शक्ति दीक्षित होती है वह तो सदैव शुद्ध होती है किन्तु जो शक्ति अदीक्षित हो तो उसे पहले माया (भगवती) को अर्पित करे अथवा उस उत्तमशक्ति का ऊपर कहे गये विधान से शोधन करे॥२९॥

अन्यत्रापि—अन्यत्र भी कहा है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दीक्षयेन्निज कौलिकीमित्यादि् गुरुवचनात्– इसलिए सभीप्रकार के प्रयत्नों से साधक को कौलिकी (अपनी शक्ति) को दीक्षित करना चाहिये। इन गुरुवाक्यों से भी यही सिद्ध होता है।

अभिषेक मंत्रेणैव स्वाभिन्नबुद्धया स्वमंत्रेण मायाबीजेन दीक्षयेदित्येव शुद्धिः।

पहले अभिषेक करे तब अपने से अभिन्नबुद्धि से अपने मन्त्र या मायाबीज से शक्ति की दीक्षा सम्पन्न करे यही शक्तिशुद्धि का तात्पर्य है।

मातंगी तंत्रेप्युक्तं–दीक्षामात्रेण शुद्धयन्ति स्त्रियः सर्वत्र कर्मणि इत्यतत्र मात्र पदेनाभिषेकस्य व्यतिरेक प्रत्ययादभिषेकोऽपिस्वतन्त्र एवं शुद्धिहेतुः।

मातंगीतन्त्र में भी कहा गया है–सभी कामों में स्त्रियों की शुद्धि दीक्षामात्र से ही हो जाती है यहाँ मात्र शब्द से अभिषेक का व्यतिरेक सिद्ध होता है इससे अभिषेक शक्तिशुद्धि का एक अतिरिक्त कारण प्रतीत होता है।

अतएवाभिषेकादिति स्वतंत्रैव हेतुना प्रतीयत इत्याहुः– अतएव अभिषेक आदि स्वतंत्र कारण प्रतीत होते हैं ऐसा कहा गया है।

शक्तिशुद्धिस्त्वावश्यकी अन्यथा निंदाश्रवणात्–शक्तिशुद्धि आवश्यक है ऐसा न करने पर सुनने मात्र से ही निंदा होती है।

तदुक्तं समयाचारे–जैसा कि **समयाचारतंत्र** में कहा गया है—

असंस्कृतां तु यः शक्तिं पूजयेदीहयेदथ ।
पच्यते नरकेघोरे सिद्धिं चापि न विंदति ।।३०।।

इत्यादि बहुश्रवणादिति—

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे द्रव्यशुद्धिप्रतिपादनं नाम षष्टंतत्त्वम्।।६।।

जो साधक असंस्कृत, न शुद्ध की गई शक्ति की पूजा करता है या कामना करता है, वह घोर नरक में पड़ता है एवं उसे सिद्धि भी प्राप्त नहीं होती। ऊपर कही बातें बहुत से गुरुजनों से सुनी गई हैं।।३०।।

श्रीराघवभट्टविरचित कालीतत्त्व के द्रव्यशुद्धि नामक छठवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई।।६।।



सप्तमतत्त्वम्

* कुण्डगोलोत्पत्तिनिरूपणम् *

अथ कुण्डगोलोत्पत्ति निरूप्यते—अब कुण्डगोल-उत्पत्ति का निरूपण किया जाता है।

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे—जो स्वतन्त्रतन्त्र में कहा है।

आनीय शोभनां बालां कुलामृतरसाय च ।
प्रसूनतूलिकामध्ये कुलपुष्पं हरेद्यथा ।।१।।

कुलामृतरसहेतु सुन्दर बाला (शक्ति) को लाकर प्रसूनतूलिका के मध्य कुलपुष्प का आहरण करे।।१।।

(यहाँ कुलामृत, प्रसूनतूलिका, कुलपुष्प, सद्गुरु द्वारा समझे जाने चाहिए।)

वाग्भवं ऐं, कामबीजं क्लीं, स्त्रीबीजं स्त्रीं, कामराजं क्लीं, हर ह्लां ब्लेंमात्मकं दत्वाधारशक्तिं समुच्चरेत् श्रीपादुकां ततोदद्यात्पूजयामि वदेत्ततः। अनेनमनुना तस्याः ललाटे सुमनोहरं। त्रिकोणं तत्र संलिख्य सिन्दूराद्यैर्विशेषतः।।

वाग्भव ऐं, कामबीज क्लीं, स्त्रीबीज स्त्रीं, कामराज क्लीं, हर ह्लां ब्लें कहकर **आधारशक्ति** कहे तत्पश्चात् **श्रीपादुकां** बोलकर **पूजयामि** शब्द कहे अर्थात् **ऐं क्लीं स्त्रीं क्लीं ह्लां ब्लें आधारशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि** इस मन्त्र से उस बाला के ललाट पर सुन्दर, मन को रुचिकर, त्रिकोण, विशेषकर सिन्दूरादि से लिखे।

बटुकं योगिनीं चैव क्षेत्रपालं गणेश्वरम् ।
लक्ष्मीं सरस्वतीं चैव पूजयेत्तत्र सुन्दरि ।।२।।

हे सुन्दरि ! तब बटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल, गणेश्वर, लक्ष्मी एवं सरस्वती का पूजन करे।।२।।

कामबीजं समुच्चार्य कामबीजं ततः परं ।
श्रीपादुकां ततोदत्त्वा पूजयामि वदेत्ततः ।
दक्षपादतलेदेवि पूजयेन्मनुनामुना ।।३।।

तत्पश्चात् कामबीज **क्लीं** बोलकर पुनः कामबीज कहने के पश्चात्

श्रीपादुकां फिर **पूजयामि** कहे। इसप्रकार हे देवि ! **क्लीं क्लीं श्रीपादुकां पूजयामि** इस मंत्र से शक्ति के दक्षिणपादतल का पूजन करना चाहिये॥३॥

वं वसंतं समुच्चार्य नादहीनां रमां ततः ।
पादुकां पूजयामीति तस्यावाम करे न्यसेत् ।।४।।

वं वसंतं नाद से रहित रमाबीज **श्री** बोलकर **पादुकां पूजयामि** यह कहकर उसके बायें हाथ में न्यास करे॥४॥

***मन्त्र*– वं वसन्तं श्रीपादुकां पूजयामि।**

शक्तिबीजं समुच्चार्य सोमपादपदं ततः ।
श्रीपादुकां पूजयामि स्तनद्वये ।।५।।

शक्तिबीज सौः कहकर सोमपाद कहे तत्पश्चात् **श्री पादुकां पूजयामि** के रूप में **सौः सोमपादं श्रीपादुकां पूजयामि** मन्त्र पढ़कर उसके दोनों स्तनों में न्यास करे॥५॥

आरोहक्रमतः कामकलान्यासं चरेत्सुधीः ।
श्रद्धाप्रीतिरतिश्चैव धृतिकांतिर्मनोहरा ।।६।।
मनोरमा मनोरामा मदनोन्मादिनीति च ।
मोहिनीदीपिनी चैव बोधिनी च वशंकरी ।।७।।
रंजिनी सुभगा देवि शोभना प्रियदर्शना ।
अकारादिः स्वैरेताः कलाः कुसुमधन्विनः ।।८।।

हे देवि ! बुद्धिमानसाधक आरोहक्रम से कामकलान्यास सम्पन्न करे। श्रद्धा, प्रीति, रति, धृति, कांति, मनोरमा, मनोरामा, मदनोन्मादिनी, मोहिनी, दीपिनी, बोधिनी, वशंकरी, रंजिनी, सुभगा, शोभना, प्रियदर्शना, अकारादि स्वरों के साथ कुसुमधन्वा (कामदेव) की कलाएँ हैं॥६-८॥

पूषार्यमा सुमनसा रति प्रीतिस्तथा धृतिः ।
सौम्याचैव मरीचिश्च दशमीचांशुमालिनी ।।९।।
अंगिरा शशिनी चैव छाया सम्पूर्णमंडला ।
पुष्टिश्चैवामृता चैव कलाषोडशार्चयेत् ।
अकारादि स्वर युतां पूजयेदवरोहतः ।।१०।।

पूषा, अर्यमा, सुमनसा, रति, प्रीति, धृति, सौम्या, मरीचि, दशमी, अंशुमालिनी, अंगिरा, शशिनी, छाया, संपूर्णमंडला, पुष्टि, अमृता इन १६ कलाओं का अकारादि स्वरों के साथ अवरोहक्रम से पूजन करे॥९-१०॥

पृष्ठवंशं समारभ्य शिरोत्तं कामचापकम् ।
विन्यस्य विधिवन्मन्त्री पूजयेत्तस्यमूर्धनि ।।११।।

पृष्ठवंश (रीढ़) से आरम्भ कर शिर के उत्तमभाग तक कामचाप का न्यास करके मन्त्रसाधक उसके मस्तक पर विधिवत् पूजन करे।।११।।

धूमात्मकं समुच्चार्य कामचाप पदं ततः ।
पाद श्रीपादुकां पूजयामिति पूजयेत् ।।१२।।

धूं कहकर कामचाप कहे तत्पश्चात् पादं श्रीपादुकां बोलकर अन्त में पूजयामि अर्थात् धूं कामचापपाद श्रीपादुकां पूजयामि ऐसा कहकर उसके पैर का पूजन करे।।१२।।

मूर्ध्नि पादे मुखे गुह्ये हृदयेषु यथा क्रमात् ।
पंचबाणैः पंचबाणान् यथास्थानेषु विन्यसेत् ।।१३।।

शिर, पैर, मुख, गुह्यस्थान, हृदय इन पाँचस्थानों में कामदेव के पाँचबाणों का न्यास करे।।१३।।

द्रां द्रावण पदं दत्वा बाणपाद पदं ततः ।
श्रीपादुकां ततोदत्वा पूजयामिति पूजयेत् ।।१४।।

द्रां द्रावण शब्द देकर बाणपाद तत्पश्चात् श्रीपादुकां बोले और अन्त में पूजयामि अर्थात् द्रां द्रावणं बाणपादं श्रीपादुकां पूजयामि इस मन्त्र से पूजन करे।।१४।।

द्रीमात्मकं समुच्चार्य उन्मादबाणमुच्चरेत् ।
पादश्रीपादुकां दत्वा पूजयामिति पूजयेत् ।।१५।।

द्रीं युक्त उन्मादबाणपाद कहे तत्पश्चात् श्रीपादुकां पूजयामि देकर द्रीं उन्मादबाणपाद श्रीपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे।।१५।।

कामबीजं ततोदत्वा मोहबाणपदं ततः ।
पाद श्रीपादुकां दत्वा पूजयामिति पूजयेत् ।।१६।।

कामबीज क्लीं मोहबाण तदनन्तर पाद श्रीपादुकां पूजयामि, क्लीं मोहबाणपाद श्रीपादुकां पूजयामि ऐसा कहकर पूजन करे।।१६।।

क्लीमात्कं तु समुच्चार्य संदीपनपदं ततः ।
बाणपाद श्रीपादुकां पूजयामिततो वदेत् ।।१७।।

क्लीं सहित संदीपन शब्द तत्पश्चात् बाणपाद श्रीपादुकां पूजयामि कहे। इसप्रकार क्लीं संदीपनबाणपाद श्रीपादुकांपूजयामि कहकर पूजन करे।।१७।।

पूजयामिति संपूज्य शोषणं बाणमुच्चरेत् ।
शोषणं च समालिख्य बाणपाद पदं ततः ।
पादं श्रीपादुकां दत्वा पूजयामीति पूजयेत् ।।१८।।

पूजयामि इससे पूजन कर शोषणबाण का उच्चारण करे। शोषण शब्द लिखकर बाणपाद शब्द तब श्रीपादुकां शब्द बोलकर पूजयामि ऐसा कहते हुये शोषणबाणपाद श्रीपादुकां पूजयामि इसमन्त्र से पूजन करे।।१८।।

ललाटे मंडले पश्चात् त्रिकोणं पूजयेत्ततः ।
वाग्भवं शुभपादं च श्रीपादुकां ततोवदेत् ।
पूजयामि ततोदत्वा दक्षरेखासु पूजयेत् ।।१९।।

उपर्युक्त रीति से बाणन्यास करने के पश्चात् ललाटमंडल पर त्रिकोण का पूजन करे इस हेतु वाग्भव (ऐं) शुभपाद श्रीपादुकां कहे। फिर पूजयामि ऐसा कहकर ललाटस्थित उसके त्रिकोण की दक्षिणीरेखा का पूजन करे।।१९।।

त्रीमात्मकं समुच्चार्य भगपादपदं ततः ।
श्रीपादुकां ततो दत्वा पूजयामीतिपश्चिमे ।।२०।।

त्रीं युक्त भगपाद शब्द बोलकर श्रीपादुकां पूजयामि कह कर पश्चिमीरेखा का पूजन करे।।२०।।

कामबीजं समुच्चार्य भगसर्पिपदं ततः ।
श्रीपादश्रीपदं दत्वा पादुकां च ततोवदेत् ।
पूजयामिति सम्पूज्य पूजयेद् वामपार्श्वके ।।२१।।

कामबीज क्लीं का उच्चारण कर भगसर्पि पद तत्पश्चात् श्रीपाद श्रीपादुकां बोलकर पूजयामि कहकर क्लीं भगसर्पि श्रीपाद श्रीपादुकां पूजयामि मन्त्र से वामपार्श्व का पूजन करे।।२१।।

हसौमात्कमालिख्य भगावहपदं ततः ।
पाद श्री पादुकां दत्वा पूजयेत् मध्यदेशतः ।।२२।।

ह्सौं पूर्वक भगावह शब्द तदनन्तर पाद श्रीपादुकां पूजयामि से बना ह्सौ भगावह श्रीपादुकां पूजयामि मन्त्र से मध्यदेश में पूजन करे।।२२।।

उड्डीशी श्रीपदं दत्वा देव्युड्डीशी पदं ततः ।
नाथदेव पदंदत्वा श्रीरक्ताम्बा ततो वदेत् ।।२३।।
श्रीचर्यानाथ समालिख्य पादं श्रीपादुकां ततः ।
पूजयामिति संलिख्य पूजयेद्देवि सुव्रते ।।२४।।

हे देवि ! हे सुन्दर व्रतवाली! उड्डीशी श्रीदेवी उड्डीशी शब्द लिख कर नाथ देव शब्द दे तब श्रीरक्ताम्बा श्रीचर्यानाथ पाद श्रीपादुकां पूजयामि लिखकर पूजन करे।

मन्त्र—उड्डीशी श्री देवी उड्डीशी नाथ देव श्री रक्ताम्बा श्रीचर्यानाथ-पाद श्रीपादुकां पूजयामि।।२३-२४।।

श्रीपदं च समालिख्य जालंधरपदं ततः ।
महापीठं समालिख्य नादहीनां रमाततः ।।२५।।
जालेश्वरीपदं दत्वा देवी जालेशीमालिखेत् ।
नाथ देव पदंदत्वा श्रीजालम्बा पदं ततः ।।२६।।
श्रीषष्ठीश पदं दत्वानाथ देव पदं ततः ।
पादश्रीपादुकां दत्वा पूजयामीति पूजयेत् ।
अनेन मनुना देवि पूजयेन्नाभि मण्डले ।।२७।।

हे देवि ! श्री शब्द लिखकर जालंधरमहापीठ लिखे, नादहीन रमा (श्री) लिखकर जालेश्वरीदेवी जालेशीनाथ देव तत्पश्चात् श्री जालम्बा श्रीषष्ठीशनाथ देव पद लिखने के पश्चात् पादश्री पादुकां पूजयामि लिखने से बने—श्रीजालन्धरमहापीठं श्रीजालेश्वरीदेवी जालेशीनाथदेव श्रीजालम्बा श्रीषष्ठीशनाथदेव पाद श्रीपादुकां पूजयामि मन्त्र से शक्ति के नाभिमण्डल का पूजन करे॥२५-२७॥

श्रीपदं च पदं दत्वा पूर्णेश्वरी ततो वदेत् ।
देवी श्रीपाद पूर्णेशीनाथ देव ततो वदेत् ।।२८।।
चामुण्डा पदमाभाष्य देवी श्रीपादमालिखेत् ।
उड्डीशनाथमालिख्य देवपादपदं ततः ।
परं श्रीपादुकांदत्वा पूजयामिति मस्तके ।।२९।।

श्रीपूर्णेश्वरीदेवी कहकर श्रीपादपूर्णेशीनाथ देव कहे। तब चामुण्डा श्रीपादउड्डीशनाथदेव लिखकर अन्त में श्रीपादुकां पूजयामि से श्रीपूर्णेश्वरीदेवी श्रीपादपूर्णेशीनाथदेव चामुण्डा श्रीपादउड्डीशनाथ देव श्रीपादुकां पूजयामि मन्त्र से मस्तक पर पूजन करे॥२८-२९॥

श्रीपदं च ततोदत्वा कामेश्वरी पदं ततः ।
देवी श्रीपदमाभाष्य कामेश्वरानंदनाथ च ।
श्रीमहापदमाभाष्य तुष्टाम्बा श्रीपदं ततः ।।३०।।
मित्रीशनाथ माभाष्य पाद श्रीपादुकां ततः ।
पूजयामि ततोदत्वा पूजयेत् कामशासने ।।३१।।

श्री शब्द कहकर कामेश्वरी देवी, तब श्रीकामेश्वरानन्दनाथ श्रीमहातुष्टांबा श्रीमित्रीशनाथ पाद कहकर अन्त में श्रीपादुकां पूजयामि बोलकर श्रीकामेश्वरीदेवी श्रीकामेश्वरानंदनाथ श्रीमहातुष्टाम्बा श्रीमित्रीशनाथ पाद श्रीपादुकां पूजयामि मंत्र से कामशासन (भौंहों) का पूजन करे॥३०-३१॥

इसक्रम में–

गुह्यपीठस्य वामेतु गुरुपंक्ति भजेत् सुधीः ।
अनंग कुसुमादिभ्यो हृत्सरोजेभजेत् पुनः ।।३२।।

बुद्धिमान साधक गुह्यपीठ के वामभाग में गुरुपंक्ति का पूजन करे। तब **अनंगकुसुमादिभ्यो** से हृदयकमल पर पूजन करे॥३२॥

वाग्भवं ग्लौं समुच्चार्य क्लेमात्कं वदेत्तः ।
ब्लों क्लं ब्लंश्चसमुच्चार्य मन्त्रेणसाधकोत्तमः ।।३३।।
योनिमुद्रा प्रदर्श्याथ योनौ सोमं विचिंतयेत् ।
वाग्भवं कामबीजं च स्त्रीबीजं तदनंतरं।।
क्षोभिणी नाम विद्येयंस्तनयोः क्षेममाचरेत्।।३४।।

तब साधकों में श्रेष्ठ साधक वाग्भव (ऐं) **ग्लौं क्लें** सहित **ब्लों क्लं ब्लः** कहकर **ऐ ग्लौं क्लें ब्लों क्लं ब्लः** मन्त्र से योनिमुद्रा का प्रदर्शन कर योनि में सोमदेवता का ध्यानकरे। पुनः वाग्भव **(ऐं)** कामबीज **(क्लीं)** स्त्रीबीज **(ह्सौ)** क्षोभिणी नामक इस विद्या से स्तनों का पूजन करे॥३३-३४॥

योनिमुद्रा प्रदर्श्याथ शनैरेवाहिसाधकः ।
वाग्भवम्लूँ समुच्चार्य क्लें क्लीं चैव ततःपरम् ।।३५।।
क्लीमात्कं समुच्चार्य व्लूमात्मकं समुच्चरेत् ।
क्षमात्मकं ततोभं क्लें क्लीं योनौ तस्यां विचिन्तयेत् ।।३६।।

साधक योनिमुद्रा का प्रदर्शन कर धीरे-धीरे वाग्भव ऐं म्लूँ कहे तब **क्लें क्लीं** तत्पश्चात् **क्लीं व्लूँ क्षं भं लें व्लीं** से बने **ऐं म्लूँ क्लें क्लीं क्लीं व्लूं क्षं भं, क्लें क्लीं** इन बीज मंत्रों के उच्चारण से उसकी योनि का चिन्तन करे॥३५-३६॥

क्रीमात्मकं ततोदत्वा तस्याक्षोभं विचिन्तयेत् ।
द्राविणीनामविद्येयं भ्रूमध्ये विचिंतयेत् ।।३७।।

क्रीं मन्त्र से उसके क्षोभ का चिन्तन करे। यह द्राविणीनामक विद्या कही जाती है। इसी का चिन्तन मध्य में करे॥३७॥

मूलमंत्रं पंचबाणं ततोयौनौ विचिंतयेत् ।
चेतनीनाम विद्येयं चिंतयेद्योनि मध्यतः ।।३८।।

मूलमन्त्र और पंचबाणों का उसके योनि में चिन्तन करे यह चेतनी नामक विद्या है जिसका ध्यान, शक्ति के योंनि के मध्य करना चाहिये॥३८॥

परानंद मयोभूत्वा निर्भरस्थिरमानसः ।
चिन्तयेन्निज विद्यायाः बीजं मूर्ध्निसरोजके ।।३९।।

तब परम आनन्दमय हो अथवा परादेवी के भाव से अभिभूत होकर निर्भर और स्थिरमन से अपनी आराध्या के बीजमन्त्र का ध्यान, उस सरोज के मूर्धा पर करे॥३९॥

ततस्तस्यां योनिर्मध्ये मूलमन्त्रैश्च साधकः ।
पुष्पांजलि त्रयं दत्वा ततः क्षोभं विचिंतयेत् ।।४०।।
स्वमक्षुभितो मंत्री शक्तिं क्षोभं विचिन्तयेत् ।।४१।।

तब उसकी योनि के मध्य में साधक मूलमन्त्रों से तीन पुष्पांजलियाँ देकर, उसमें क्षोभ उत्पन्न करे। मन्त्रसाधक स्वयं क्षोभरहित हो शक्ति में क्षोभ का चिन्तन करे॥४०-४१॥

कल्लोलिनी कानन . कंदरादौ ।
दुर्गाश्रमे चार्पित चित्तवृत्तिः ।।
ऋतुकुमारं भरतिः स्ववीर्यं ।
श्लाघ्योऽपि दीर्घं रमते रतेषु ।।४२।।
कुलामृतं च त धृत्वा गृहीत्वा दुर्लभंनरैः ।
तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेच्चात्रिलोचनां ।।४३।।
सान्निध्याद्वीक्षणाद्वापि प्रीता सिद्धिं प्रयच्छति ।।४४।।

कल्लोलिनीकानन के मध्यस्थित कन्दरा के आरम्भ में स्थित दुर्गा के आश्रम में अपनी चित्तवृत्ति को केन्द्रित कर, ऋतुक्रम से प्रारम्भ (ऋतुकालिकी) रति और अपने श्लाघ्यवीर्य से दीर्घकाल तक रमण करे। रतावस्था के पश्चात् कुलामृत (रज) एवं पुरुष दुर्लभ (तेजस) को ग्रहण कर उसी दिव्य अमृत से त्रिलोचना भगवती का तर्पण करे। यदि साधक इसके सान्निध्य में रहकर या उसे देखते हुये पूजन करे तो भी भगवती प्रसन्न हो, उसे सिद्धि प्रदान करती हैं। (यह बातें गुरु से समझें)॥४२-४४॥

समस्त देवतानां च तर्पणं च सदामृतैः ।
गुरुणां साधकानांच सर्वेषां तर्पणं चरेत् ।।४५।।

सदा इस अमृत से सभी देवताओं, गुरुओं, साधकों, सभी का तर्पण करे।।४५।।

तेनामृतेन द्रव्ये सर्वेतुष्टा भवंति च ।
यत्कामं कुरुते मंत्री तत्क्षणात् प्रसीदति ।।४६।।

उस अमृतद्रव्य से ऊपर कहे गये सभी संतुष्ट हो जाते हैं और तब मन्त्रसाधक जो भी कामनायें करता है, वह तत्क्षण प्रसन्न (संतुष्ट) होता है।।४६।।

अर्थाद्वा कामुकाद्वापिलोभाद्वापि च यो नरः ।
लिंगयोनिरतोमंत्री रौरवं नरकं व्रजेत् ।।४७।।

जो मन्त्रसाधक मनुष्य, अर्थसिद्धि हेतु, कामना से या किसी भी प्रकार के लोभ के वशीभूत होकर लिंग और योनि के प्रयोग में रत होता है, वह रौरवनरक को जाता है।।४७।।

पूजाकाले विना देवि पश्येच्छक्तिं दिगम्बरां ।
अल्पायुश्च हतश्रीश्चानिष्टार्तिश्च नसंशयः ।।४८।।

जो साधक पूजाकाल के अतिरिक्त, शक्ति को दिगम्बरावस्था में देखता है, वह अल्पायु, श्रीहीन और अनिष्ट से दुःखी होता है, इसमें कोई संशय नहीं है।।४८।।

एतदभावे अनुकल्पमपि कुर्याद्—इसके अभाव में अनुकल्प का प्रयोग करे।

तदुक्तं भावचूडामणौ—जैसा कि **भावचूड़ामणि** में कहा गया है।

अपरां पुष्प मध्ये तु कुलस्थानं मनोहरम् ।
हयारिकुसुमैश्चवा स्वयमस्ति सदाशिवः ।।४९।।

अपराजिता के पुष्प में सुन्दर कुलस्थान होता है तथा हयारि (कनैल) के कुसुम में स्वयं सदाशिव का निवास करते हैं।।४९।।

तन्मध्ये लघुमादाय पुष्पमध्येतु चन्दनम् ।
रक्तकुंकुमरागं वा दत्वा तत्र शिवात्मके ।।५०।।
योजयेच्छिव शक्तयोश्च ऐक्यं संभावयताधिया ।
क्षणं विचिंत्य तत्रैव संचित्य परमेश्वरीम् ।।५१।।

उसमें से थोड़ा ले या पुष्प में चन्दन रखे और उसमें शिवस्वरूप

लाल कुंकुम या अङ्ग-राग मिलाकर शिवशक्ति की एकताभावना की बुद्धि से उन्हें परस्पर मिलाये। क्षणभर विचारपूर्वक वहीं देवी का चिंतन करे, जपकरे।।५०-५१।।

तदातदेव कुंडोत्थं द्रव्यं परमदुर्लभम् ।
अमृतादधिकं क्षेममेतद्द्रव्यं तु साधकैः ।।५२।।

उक्त क्रिया द्वारा उसकुण्ड से उत्पन्न जो द्रव्य है वह परम दुर्लभ है। साधकों द्वारा इसद्रव्य को अमृत से भी अधिक श्रेष्ठ समझना चाहिये।।५२।।

अथ पद्धतिः—अब पद्धति कहते हैं।

प्रसूनतूलिकोपरि पंक्तिं संस्थाप्य ऐं क्लीं स्त्रीं क्लीं हर (ह्रां) व्लें आधारशक्ति श्रीपादुकां पूजयामीतिमंत्रेण तस्यशिरसि त्रिकोणं निर्माय।

प्रसूनतूलिका (कामध्वज) पर पंक्ति (शक्ति) को स्थापित कर **ऐं क्लीं स्त्रीं क्लीं ह्रां व्लें आधारशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि** इसमन्त्र से उस शक्ति के शिर पर त्रिकोण बनाये।

ॐ मद्यार्णव श्रीपादुकां पूजयामि। ॐ पोतासनं श्रीपादुकां पूजयामि।

ॐ पंकेरुहासनं श्रीपादुकां पूजयामि। ॐ महाप्रेतासनं श्रीपादुकां पूजयामि। इत्युपर्युपरि आसनानि सम्पूज्य— इनमन्त्रों से क्रमशः ऊपर-ऊपर के आसनों का पूजन करे।

तत्र कंबलाद्यासनमास्तीर्योपविश्य भुविपारंपर्योपविश्य भुवि चतुरस्त्रमंडलं विधाय तत्र वामे वां वटुकनाथ श्रीपादुकां पूजयामि, यां योगिनी श्रीपादुकां पूजयामि, क्षं क्षेत्रपाल श्रीपादुकां पूजयामि, गं गणपति श्रीपादुकां पूजयामि इति पूर्वादि क्रमेण पूजयित्वा।

कंबल आदि के आसन पृथ्वी पर बिछाकर या परंपरानुसार बैठकर, पृथ्वी पर एक चौकोर मण्डल बनाये। तत्पश्चात् उसके बायेंभाग में **वां वटुकनाथ श्रीपादुकां पूजयामि, यां योगिनी श्रीपादुकां पूजयामि, क्षं क्षेत्रपाल श्रीपादुकां पूजयामि, गं गणपति श्रीपादुकां पूजयामि** कहते हुये क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में बटुकनाथ, योगिनी, क्षेत्रपाल एवं गणेश का पूजन करे।

पुरतश्चतुरस्त्र मंडलं विधाय। गां गंगा श्रीपादुकां पूजयामि, यां यमुना श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीं लक्ष्मी श्रीपादुकां पूजयामि, ऐं सरस्वती श्रीपादुकां पूजयामि इति सम्पूज्य।

तब सामने चौकोर मंडल बनाये और **गां गंगा श्रीपादुकां पूजयामि, यां यमुना श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीं लक्ष्मी श्रीपादुकां पूजयामि, ऐं सरस्वती श्रीपादुकां पूजयामि** से गंगा, यमुना, लक्ष्मी और सरस्वती की पूजा करे।

तस्या पादतले कामराजपाद श्रीपादुकां पूजयामि, वामहस्ते वं वसंतपाद श्रीपादुकां पूजयामि, सोः सोमपाद श्रीपादुकां पूजयामि स्तनयोः सम्पूज्य कामकलान्यसेत्।

उसके पादतल में **कामराजपाद श्रीपादुकां पूजयामि,** बायेंहाथ में **वं वसंतपाद श्रीपादुकां पूजयामि,** स्तनों में **सौः सोमपाद श्रीपादुकां पूजयामि** से पूजन करे। तत्पश्चात् कामकलान्यास इसप्रकार करे।

अं श्रद्धाकला श्रीपादुकां पूजयामि दक्षपादांगुष्ठे – दाहिने पैर के अंगूठे में।
आं प्रीतिकला श्रीपादुकां पूजयामि पादपृष्ठे – पैर की तली में।
इं रतिकला श्रीपादुकां पूजयामि गुल्फे – टखनों में।
ईं धृतिकला श्रीपादुकां पूजयामि जंघायां – फिली में।
उँ कांतिकला श्रीपादुकां पूजयामि जानुनि – घुटनों में।
ऊँ मनोरमाकला श्रीपादुकां पूजयामि ऊरुमध्ये – ऊरू में।
ऋं मनोहराकला श्रीपादुकां पूजयामि ऊरुमूले – ऊरु के मूल में।
ॠं मनोरमाकला श्रीपादुकां पूजयामि कट्यां – कमर में।
लृं मदनोन्मादिनी कला श्रीपादुकां पूजयामि नितंबे – नितम्ब में।
लॄं मोहिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि स्तनयोः – स्तनों में।
एं दीपिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि कक्षायां – काँख में।
ऐं बोधिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि कंठे – कंठ में।
ओं वशंकरीकला श्रीपादुकां पूजयामि कर्णमूले – कान की जड़ में।
औं रंजिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि कपोले – गालों में।
अं भगाकला श्रीपादुकां पूजयामि नेत्रे – नेत्रों में।
अः प्रियदर्शनाकला श्रीपादुकां पूजयामि मस्तके – मस्तक पर।

इत्येवमेताः कलाः सम्पूर्णाः सोम कलाः पूजयेत्– इसीप्रकार इन कलाओं तथा समस्त सोमकलाओं का पूजन करे।

यथा–जैसे।

अं पूषाकला श्रीपादुकां पूजयामि शिरसि — शिर पर।
आं अर्यमाकला श्रीपादुकां पूजयामि वामनेत्रे — बायें नेत्र में।
इं सुमनाकला श्रीपादुकां पूजयामि कपोले — कपोल में।
ईं रतिकला श्रीपादुकां पूजयामि कर्णमूले — कान की जड़ में।
उं प्रीतिकला श्रीपादुकां पूजयामि कंठे — कंठ में।
ऊं धृतिकला श्रीपादुकां पूजयामि कक्षायां — पार्श्व में।
ऋं सौम्यकला श्रीपादुकां पूजयामि स्तनौ — स्तनों में।
ॠं मरीचिकला श्रीपादुकां पूजयामि कट्यां — कमर में।
लृं दशमीकला श्रीपादुकां पूजयामि नितंबे — नितंब पर।
ॡं अंशुमालिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि ऊरुमूले— जाँघ की जड़ में।
एं अंगिराकला श्रीपादुकां पूजयामि ऊरूमध्ये— जाँघ के मध्य में।
ऐं शशिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि जानुनि — घुटने में।
ओं छायाकला श्रीपादुकां पूजयामि जंघायां — फिली में।
औं संपूर्णकला श्रीपादुकां पूजयामि गुल्फे — टखने में।
अं तुष्टिकला श्रीपादुकां पूजयामि पादपृष्ठे — पैर के तलवे में।
अः अमृतकला श्रीपादुकां पूजयामि वामांगुष्ठे — बाएँ अंगूठे में।

इति विन्यस्य—इनसे ऊपर कथित अंगों में न्यास करे।

धूं कामचाप श्रीपादुकां पूजयामि इत्यनेन मन्त्रेण पृष्ठवंशादाराभ्य चापाकारेण मस्तकपर्यन्तं विन्यस्य पंचबाणान्यसेत्।

धूं कामचाप श्री पादुकां पूजयामि इसमन्त्र से **पृष्ठवंश** (पूँछ की हड्डी) से आरम्भ कर धनुष के आकार में मस्तकपर्यन्त न्यासकर कामदेव के पांचबाणों का न्यास करे।

यथा—*जैसे।*

ॐ द्रां द्रावणबाणपाद श्रीपादुकां पूजयामि मूर्ध्नि— मूर्धा में।
ॐ द्रीं उन्मादनबाणपाद श्रीपादुकां पूजयामि पादयोः— पैरों में।
ॐ क्लीं मोहनबाणपाद श्रीपादुकां पूजयामि वक्त्रे— मुख में।
ॐ ब्लूं संदीपनबाणपाद श्रीपादुकां पूजयामि गुह्ये—गुह्य भाग में।
ॐ सः अशोकबाणपाद श्रीपादुकां पूजयामि हृदि— हृदय में।

एवं क्रमेण विन्यस्य ललाटास्योः ऊर्ध्वाग्रत्रिकोणं पूजयेद् यथा।

उपर्युक्तक्रम से न्यास के पश्चात् शक्ति के ललाट में अधोगामी त्रिकोण का पूजन करे। *जैसे*—

ऐं सुभगापाद श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणरेखायां– दक्षिणी रेखा में।

ऐं भगापाद श्रीपादुकां पूजयामि पश्चिमरेखायां– पश्चिमी रेखा में।

क्लीं भर्गसर्पिणीपाद श्रीपादुकां पूजयामि वामरेखायां– बायीं-रेखा में।

ह्सौ भगावहापाद श्रीपादुकां पूजयामि इति मध्ये संपूज्य– मध्य में भली-भाँति पूजन करे।।

पीठ चतुष्ट्यं पूजयेद्यथा– तत्पश्चात् चारपीठों का पूजन करे *जैसे।*

*** उड्डीयानपीठपूजन ***

श्रीउड्डीशदेवी श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीउड्डीशनाथदेव श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीरक्ताम्बा श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीचर्यानाथ श्रीपादुकां पूजयामि उड्डीयानमहापीठे हृदि।

श्रीउड्डीशदेवी......श्रीपादुकां पूजयामि पर्यन्त मन्त्रों से उड्डीयान-महापीठ हृदय में उपर्युक्त देवताओं का पूजन करे।

जालंधरपीठपूजन

श्रीजालेश्वरीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि। श्रीजालेशनाथदेव श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीजालम्बा श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीषष्ठीशनाथ श्रीपादुकां पूजयामि जालंधरमहापीठे नाभौ।

श्रीजालेश्वरी देवी.......श्रीपादुकां पूजयामि पर्यन्त मन्त्रों से जालंधरपीठ नाभि में उपर्युक्त देवताओं का पूजन करे।

*** पूर्णगिरिपीठपूजन ***

श्रीपूर्णेश्वरीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीपूर्णेशनाथदेव श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीचामुंडाम्बा श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीउड्डीशनाथ श्रीपादुकां पूजयामि पूर्णगिरिपीठे मस्तके।

श्रीपूर्णेश्वरी देवी.....श्रीपादुकां पूजयामि पर्यन्त मन्त्रों से पूर्णगिरिपीठ मस्तक पर पूजन करे।

*** कामरूपपीठपूजन ***

श्रीकामेश्वरीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीकामेश्वरानंदनाथ श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीमहातुष्टम्बता श्रीपादुकां पूजयामि, श्रीमित्रीशनाथदेव श्रीपादुकां पूजयामि कामरूपमहापीठे रसने।

श्रीकामेश्वरीदेवी.....श्रीपादुकां पूजयामि पर्यन्त मन्त्रों से कामरूपपीठ रसना में पूजन करे।

इति क्रमेण विन्यस्य। गुह्यपीठस्य वामभागे स्वगुरुपंक्ति सम्पूज्य हृत्पक्षे अनंग कुसुमादिभ्यो नमः इति पूजयेत्।

उपर्युक्त क्रम से न्यास करे, गुह्यपीठ के वामभाग में साधक अपनी गुरुपंक्ति का पूजन कर हृदयकमल पर **अनंग कुसुमादिभ्यः नमः** इस मन्त्र से पूजन करे।

ऐं क्लौं ऐं ग्लौं ब्लें ब्लौं ब्लं ब्लः इति मन्त्रेण आधारे योनिमुद्रां विचिंत्य योनौ शक्तिक्षोभं विचिंतयेत्।

ऐं.....ब्लः तक के बीजों के उच्चारणपूर्वक आधार में योनिमुद्रा का चिन्तन करता हुआ योनि में शक्ति के क्षोभ का चिंतन करे।

ऐं क्लीं स्त्रीं क्षोभिणीति मन्त्रेण स्तनयोः क्षोभं विचिन्तयेत् ।

'ऐं क्लीं स्त्रीं क्षोभिणी' इसमन्त्र से शक्ति के स्तनों में क्षोभ की भावना करे।

ऐं ब्लूं ब्लें ब्लं क्लीं क्लें क्लीं क्षं इति द्राविणीविद्यां स्मरन् तस्याः भ्रूमध्यं क्षोभं विचिन्तयेत्।

ऐं ब्लूं ब्लें ब्लं क्लीं क्लें क्लीं क्षं इस द्राविणीविद्या (मन्त्र) का स्मरण करता हुआ, उसकी भौहों के बीच क्षोभ की भावना करे।

तस्यायोनौ द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः मूलविद्ययान्यस्य

द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः मूलमन्त्र बोलता हुआ उसकी योनि में क्षोभ की भावना करे।

कुलद्रव्य घटात् पात्रांतरे कृत्वा गुरवे निवेद्य शक्तये दत्वा स्वयं स्वीकृत्वानंदमनो भूत्वा बीजं विद्याद्यबीजं स्वशिरसि विन्यस्य।

तत्पश्चात् कुलद्रव्य के घट से दूसरे पात्र में, द्रव्य लेकर गुरु को निवेदित करे। तब शक्ति को दे। अन्त में स्वयं ग्रहण कर आनन्दपूरितमन होकर बीजविद्या या आद्या के बीज से अपने शिर पर न्यास करे।

पुनस्तस्याः योनौ मूलविद्यया करवीरादि पुष्पांजलित्रयं प्रक्षेपेण ताम् क्षोभयन् स्वयमपि कल्लोलिनीत्या अक्षुब्धो भूत्वा शिवरूपमात्मानं शक्तिं शक्तिरूपांच विभाव्य आनंदमय विभावयन् वामावर्तेन देवतायाः गुर्वादीनां च सकृतार्पणं कृत्वा अवशिष्टं अर्घ्यपात्रे निक्षिप्य निःशंकं पूजयेदिति किंचित्तु इती देहेन्यस्तान् अन्यासान् स्वदेहेन्यसेदित्याहुः।

पुनः उनकी योनि में मूलविद्या से करवीर (कनैल) आदि पुष्पों से तीन पुष्पांजलि अर्पित करके उन्हें क्षुब्ध करे। स्वयं भी **कल्लोलिनी......।**

इत्यादि चिन्तन से क्षोभरहित अपने को शिवरूप तथा शक्ति को शक्ति-स्वरूप मानते हुए आनन्दभाव होकर वामावर्तसे देवता, गुरु आदि को एक-एक बार अर्पण कर अवशिष्टद्रव्य, अर्घ्यपात्र में रख दे। तत्पश्चात् शंकारहित हो पूजन करे। कुछ अन्य विद्वान कहते हैं कि दूती के देह में न्यास किये देवताओं का अपने देह में भी न्यास करे।

तदभावे तदनु कल्पमपि कुर्याद्यथा। उसके अभाव में उसका अनुकल्प ही करे, जैसे।

अपरां पुष्पं च समानीय लघुपदास्यान्तथा चंदनापरा पुष्पगर्भं पूरयित्वा हयारि कुसुमं तेन संयोज्य उभयोः शिवशक्तित्वेन विचिन्त्य तयोः संगमं विभाव्य तस्मात्तु कुलद्रव्योत्पत्ति विधाय तदुपरि यथाशक्त्या निजविद्यां जप्त्वा तत्कुसुमं अर्घ्यपात्रे निक्षिप्य देवतायै निवेदयेदिति।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे कुंडगोलोत्पत्तिप्रतिपादनंनाम सप्तमं तत्त्वम्।

अपराजिता के पुष्प को लाकर उसके गर्भ में चन्दन भरकर हयारि (कनैल) के पुष्प से उसका मेल कराये। दोनों में शिवशक्ति के रूप की भावना कर उनके सम्मिलन का चिन्तन करे और उससे कुलद्रव्य की उत्पत्ति की कल्पना करता हुआ, उसके ऊपर यथाशक्ति अपनी विद्या का जप करके उस कुसुम को अर्घ्यपात्र में छोड़ कर देवता को निवेदित करे।

श्रीराघवभट्टविरचित कालीतत्त्व में कुण्डगोलोत्पत्तिप्रतिपादन नाम के सातवें पटल की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई।।७।।



तद्दशांशेन विप्राणां भोजनं विधिपूर्वकम् ।
एष पाशवकल्पस्तु सर्वतंत्रेषु सूचितः ।।१२।।

उसकी दशांशसंख्या में ब्राह्मणों को विधिपूर्वक भोजन कराये। यह पाशवकल्प है जिसका वर्णन सभी तन्त्रों में किया गया है।।१२।।

स्वतन्त्रतन्त्रेऽपि—स्वतन्त्रतन्त्र में भी कहा गया है।

दिवा लक्षं शुचिर्भूत्वा हविष्याशी जपेन्नरः ।
ततस्तु तद्दशांशेन होमयेद्धविषां प्रिये ।
तर्पयेत्तीर्थतोयेन पयसा सर्पिषा प्रिये ।।१३।।
मधुना वा सितामिस्रतोयेन तर्पयेच्छिवां ।
देवीं चाभिषिंचेत्तोयैस्तर्पणस्य दशांशः ।।१४।।

हे प्रिये! मनुष्य (साधक) हविष्य के भोजन का नियम ले, पवित्र होकर दिन में एकलाख जप करे, उसके दशांश (दस हजार) से हविष्यान्न का होम करे। तत्पश्चात् उसके दशांश मन्त्रों से शिवा का तीर्थ (कारण), जल, दूध, मधु या मिश्रीमिले जल से तर्पण करे। तब तर्पण की दशांश संख्या से जल से देवी का अभिषेक करे।।१३-१४।।

तद्दशांशहविष्यान्नैर्भोजयेद्भक्तितः प्रिये ।
कालीमन्त्र विदो विद्वान् दक्षिणां गुरवे ददेत् ।।१५।।
पाशवं कथितं कल्पं शृणुवीरं ततः परम् ।।१६।।

हे प्रिये! तब अभिषेक के दशांशमन्त्र से ब्राह्मणों को हविष्यान्न से भोजन कराये। तत्पश्चात् ऐसे गुरु को जो कालीमन्त्र का जाननेवाला एवं विद्वान् हो उसे दक्षिणा प्रदान करे। यह पाशवकल्प (पशु श्रेणी के साधकों द्वारा आचरितपुरश्चर्याविधान) कहा गया है। आगे वीरकल्प सुनो।।१५-१६।।

एवं पुरश्चरणिकं सामान्यविधिपूर्वकम् ।
पाशवकल्पोक्ताचार पूज्य पूर्वकं च लक्ष जपः ।।१७।।

उपर्युक्त क्रिया की सामान्य विधि है। इसी पाशवकल्प के अनुसार सर्वप्रथम पूजन करे तब एकलाख मन्त्र का जप करे।।१७।।

तद्दशांश होमाद्यात्मकम् पुरश्चरणम् पशूनां पर्यवसितमिति—उसका दशांश होमादि क्रमशः करने से पशु साधकों द्वारा किया हुआ पुरश्चरण सम्पन्न होता है।

अथ वीरपुरश्चरण विधिरुच्यते—अब वीरपुरश्चरण विधि कहते हैं।

तदुक्तं कुलचूडामणौ—जो कुलचूड़ामणिग्रन्थ में कहा है।

पुरश्चरणकाले च राजशक्तिं प्रपूज्य च ।
दीक्षितां भक्ष्यपुष्पाद्यैर्भोज्यैः पायससंभवैः ।।१८।।

आरम्भकाले चानीतां स्वयं भक्ष्यान्न भोजनैः ।
नानाविधं पिष्टकं च नानारससमन्वितम् ।।१९।।
दुग्धं दधिघृतं तक्रं नवनीतं सुशर्करम् ।
उंशिलाखण्डचूर्णं च नानाविधि रसार्पणम् ।।२०।।
नारिकेलं कपित्थं च नागरंगे सुदर्शनम् ।
लिंपाकं बीजपूरं च दाडिमं फलमुत्तमम् ।।२१।।

पुरश्चरण काल में वीरसाधक दीक्षित राजशक्ति का भक्ष्यपायस से बने भोज्यपदार्थों और पुष्पादि से पूजन करे जो आरम्भ में स्वयं लाई गई हो। ऐसीशक्ति को अपने द्वारा खानेयोग्य अन्न भोजनादि से पूजन करना चाहिए। इसहेतु अनेकप्रकार के पिष्ट (आटे), अनेकप्रकार के रस (पेय), दूध, दही, घी, मट्ठा, मक्खन जिसमें उचित मात्रा में शर्करा (चीनी) मिली हो। जिनमें उंशिलाखण्ड का चूर्ण और विविध प्रकार के रसायन मिले हों। नारियल, कैंथ, नारंगी, सुदर्शन, लिंपाक (चकोतरा), बीजपूर, अनार जैसे उत्तमफल सम्मिलित हों, ऐसे भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों से राजशक्ति का पूजन करे॥१८-२१॥

नाना वन्यफलं चैव नाना गंधविलेपनम् ।
चन्दनं मृगनाभिं च श्रीखंडं नवपल्लवम् ।।२२।।
टंकणं लौध्रकं चैव जलजं वनजं तथा ।
नानाशैलसमुद्भूतं नानालंकारभूषितम् ।।२३।।

साधक उसपर नानाप्रकार के जंगलीफलों और गंधादिलेपों का उपयोग करे। जो चन्दन, मृगनाभि (कस्तूरी), श्रीखंड, नवपल्लव, लौध्रक, टंकण (सुहागा) और अनेकप्रकार के जल में उत्पन्न, वन में उत्पन्न, पहाड़ों में उत्पन्न पदार्थों से पूजित एवं नानालंकारों से भूषित करे॥२२-२३॥

शून्यालये समानीय चार्घ्यादिकं विशोधयेत् ।
अमृतीकरणं कृत्वा शक्तिश्चाभिमुखे नयेत् ।।२४।।

तत्पश्चात् उसशक्ति को शून्यालय एकान्त में लाकर अर्घ्यादि का एवं शक्तिशोधन करे। तब शक्ति के अमृतीकरण एवं अभिमुखीकरण की क्रिया सम्पन्न करे॥२४॥

तेनोदकेन सर्वास्ताः संप्रोक्ष्य विधिपूर्वकम् ।
अमृतीकरणं पश्चात् सकलीकरणादि च ।।२५।।

उसीजल से सबका विधिपूर्वक संप्रोक्षण करने के बाद अमृतीकरण एवं सकलीकरण की क्रियाएँ करे॥२५॥

अथाष्टकन्यका वक्ष्ये देवी रूपधरायतः।
ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा च कुलभूषणा ॥२६॥
वेश्यानामथ नापितकन्या रजकी योगिनी तथा।
विशेष वैदग्ध्ययुता सर्वा एव कुलांगनाः ॥२७॥

देवीरूपधारिणी आठ कन्याओं के विषय में कहते हैं—ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा, वेश्या, नापित की कन्या (नाईन), रजकी, (धोबिन ये योगिनी) होती हैं। ये सभी कुलांगनाएँ जो कुल की शोभा बढ़ाने वाली हैं। ये आठों कन्याएँ विशेष वैदग्ध (कुशलता) युक्त होती हैं॥२६-२७॥

अष्टकन्या रूपभेदं विलोक्यामर्षचेष्टितम्।
ब्रह्मण्याद्यष्टशक्तीनां नामभिः कृतसंज्ञका ॥२८॥
आसनं प्रथमं दत्वा स्वागतं च वदेत् पुनः।
अर्घ्यं पाद्यं च पानीयं मधुपर्कं जलं तथा ॥२९॥
स्नापयेद् गंध पुष्पाभिः केशसंस्कारमाचरेत्।
धूपयित्वा ततः केशान् कौशेयं च निवेदयेत् ॥३०॥

उपर्युक्त आठ कन्यारूपों को जो अमर्षादि चेष्टाओं से युक्त हों देख कर ब्रह्माणी आदि आठशक्तियों का, उनके पुकार नाम से सम्बोधन करते हुए उन्हें सर्वप्रथम आसन प्रदान करे। तब स्वागत है ऐसा कहे। तत्पश्चात् क्रमशः उन्हें पाद्य, अर्घ्य, पानीय, मधुपर्क अर्पित करे। उन्हें स्नान कराये। गंध, पुष्पादि से उनके केशों का संस्कार करे। धूप आदि से उनके केशों को धूपित करके, उन्हें कौशेय (रेशमी वस्त्र) निवेदित करे॥२८-३०॥

ततः स्थानान्तरे पीठयास्तीर्य पादुकायुगम्।
दत्वा तत्र समासीनां नानालंकारभूषणैः।
भूषयित्वानुलेपंच गन्धमाल्यं निवेदयेत् ॥३१॥

तब अन्य स्थानपर बने पीठपर, दोनों पैरों को फैलाकर उसपर बैठी हुई दूती को अनेक आभूषणों आदि से विभूषित करे उसे अनुलेप एवं गन्ध-माल्य आदि निवेदित करे॥३१॥

तां तां शक्तिं समावाह्य मूर्ध्नितासां समानयेत्।
भोज्य मंडलमध्येतु स्वर्णपात्रे सुशोभने ॥३२॥

चर्व्यं चोष्यं तथा लेह्यं भोज्यं पेयं च भैक्षकम् ।
अदीक्षित यदि सुतां ततो मातां निवेदयेत् ।।३३।।

उन-उन ब्राह्यादि शक्तियों का आवाहन, उन दूतियों के मस्तक पर करे। तत्पश्चात् भोज्यमण्डल के मध्य में सुन्दर शोभित होनेवाले स्वर्णपात्र में चबाकर खानेयोग्य, चूसकर खानेयोग्य, चाटकर खानेयोग्य, भोजन करनेयोग्य, पीनेयोग्य, और भक्षणकरनेयोग्य, इन छः प्रकार के नैवेद्य रखकर, उन्हें निवेदित करे। यदि अदीक्षित सुता (दूती) हो तो यह नैवेद्य माता (शक्ति) को अर्पित करे॥३२-३३॥

अथ प्रथमं पूजा तत्त्वोक्तप्रकारेण–शंखं घटं च संस्थाप्य तेनोदकेन ताः संप्रोक्ष्य यथोक्त क्रमेणास्य स्वरूपं निश्चित्य तदनुसारेण नाम धृत्वा सम्पूज्य पाद्यादिभिर्देवीं ध्यात्वा तासां मूर्ध्नि समावाह्य जीवन्यासादिकं विधाय पाद्यादिभिः सम्पूज्य।

सर्वप्रथम पूजन तत्वोक्तप्रकार से करे–शंख और घट की विधिवत् स्थापना करे। तब उसके जल से उन कन्याओं का संप्रोक्षण करे। तत्पश्चात् यथोक्तक्रम से उनके स्वरूपों का निश्चयकर उनका नामकरण करे। पाद्य आदि से उनका पूजनकर देवी का ध्यान करना चाहिए। तत्पश्चात् उनके मस्तकपर नामानुरूप आवाहनकर, जीवन्यास की प्रक्रिया सम्पन्नकर उनका पाद्यादि से पुनः पूजन करे।

ततस्तासु भैक्षादिकं भुंजाना सुसव्यकर्णेषु शान्तिस्तोत्रं पठेदिति।।३४।।

तब उनका, भैक्षादि नैवेद्य का भोजन करती हुई देवियों के दाहिने कान में शान्तिस्तोत्र का पाठ करे॥३४॥

तदुक्तं तत्रैव– जो वहीं कहा गया है।

आसां तु सव्यकर्णेषु तत स्तोत्रं समाचरेत् ।।३५।।

तब उनके दाहिनेकान में, उनके स्तोत्र का पाठ करना चाहिए॥३५॥

*** ब्राह्मीस्तोत्र ***

मातर्देविनमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे ।
कृपयाहर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।३६।।

(१) ब्राह्मीस्तोत्र–हे माता! आपने ब्रह्मा का रूप धारण किया है, आप पापरहित हैं, आपको नमस्कार है। कृपा करके आप साधना में आये मेरे विघ्नों को दूर कीजिये तथा मुझे मन्त्र की सिद्धि प्रदान कीजिये॥३६॥

*** माहेश्वरीस्तोत्र ***

माहेशि वरदे देवि परमानंदरूपिणि ।
कृपयाहर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।३७।।

(२) **माहेश्वरीस्तोत्र**–हे माहेशी (महेश की शक्ति)! आप वर देने वाली हैं। हे देवि! आप स्वयं ही परम-आनन्द का रूप हैं। कृपा करके आप साधना में आये मेरे विघ्नों को दूर कीजिये और मुझे सिद्धि प्रदान कीजिये।।३७।।

*** कौमारीस्तोत्र ***

कौमारी सर्व विद्येशी कुमारक्रीडने वने ।
कृपयाहर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।३८।।

(३) **कौमारीस्तोत्र**–हे कौमारी देवी! आप सभी विद्याओं की स्वामिनी हैं। आप कुमार के क्रीडावन में विहार करती हैं। कृपा करके आप साधना में आये मेरे विघ्नों को दूर कीजिये और मुझे सिद्धि प्रदान कीजिये।।३८।।

*** वैष्णवीस्तोत्र ***

विष्णुरूपधरे देवि विनितासुतवाहिनी ।
कृपयाहर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।३९।।

(४) **वैष्णवीस्तोत्र**–हे देवि! आप विष्णु का रूप धारण की हुई हैं तथा विनितासुत (गरुड़) के वाहन पर आप विराजमान हैं। कृपा करके आप साधना में आये मेरे विघ्नों को दूर कीजिये और मुझे सिद्धि प्रदान कीजिये।।३९।।

*** वाराहीस्तोत्र ***

वाराहि वरदे देवि दंष्ट्रोधृतवसुन्धरे ।
कृपयाहर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।४०।।

(५) **वाराहीस्तोत्र**–हे वाराही देवी! आप वर देने वाली हैं। आप ने अपने दाँतों पर पृथ्वी को धारण किया है। कृपा करके आप साधना में आये मेरे विघ्नों को दूर कीजिये और मुझे सिद्धि प्रदान कीजिये।।४०।।

*** ऐन्द्रीस्तोत्र ***

शक्ररूप धरे देवि शक्रादि सुरवन्दिते ।
कृपयाहर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।४१।।

(६) **ऐन्द्रीस्तोत्र**–हे देवी! आप इन्द्र का रूप धारण की हुई हैं तथा आप इन्द्रादि देवताओं द्वारा वन्दित भी हैं। कृपा करके आप साधना में आये मेरे विघ्नों को दूर कीजिये और मुझे सिद्धि प्रदान कीजिये।।४१।।

*** चामुण्डास्तोत्र ***

चामुण्डेमुण्डमालासृक् चर्चिते विघ्ननाशिनि ।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।४२।।

(७) चामुण्डास्तोत्र—हे चामुण्डा देवि! आप रक्त से चर्चित मुण्डों की माला धारण की हैं। आप समस्त विघ्नों का नाश करने वाली हैं। कृपा करके आप साधना में आये मेरे विघ्नों को दूर कीजिये और मुझे सिद्धि प्रदान कीजिये।।४२।।

*** महालक्ष्मीस्तोत्र ***

महालक्ष्मीर्महामोक्ष्ये क्षोभसंतापनाशिनी ।
कृपयाहर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।४३।।

(८) महालक्ष्मीस्तोत्र—हे महालक्ष्मी! आप महान् मोक्ष देने वाली हैं। आप क्षोभ एवं संताप का नाश करने वाली हैं। कृपा करके आप साधना में आये मेरे विघ्नों को दूर कीजिये और मुझे सिद्धि प्रदान कीजिये।।४३।।

मितिमातृमये देवि मितिमातृबहिष्कृते ।
एके बहुतरे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते ।।४४।।

हे देवि! उपर्युक्त मातृकाओं के स्वरूप वाली देवि या उससे बाहर भी जो देवीरूप हैं। आप अकेली होते हुए भी बहुत हैं आप विश्वरूप हैं। आपको नमस्कार है।।४४।।

एतत् स्तोत्रम् पठेद्यस्तु कर्मारम्भे सुसंयतः ।
विदग्धां वा समालोक्य तस्य विघ्नं न जायते ।।४५।।

कार्य के आरम्भ में जो साधक भली-भाँति संयतचित्त होकर इस ऊपर कथित स्तोत्र को पढ़ता है या विदग्धा को देखते हुए पढ़ता है। उस साधक की साधना में विघ्न नहीं उत्पन्न होते।।४५।।

कुलीनस्य द्वारदेवाः कथितास्तव पुत्रक ।
दीक्षाकाले नित्यपूजा समये नाचर्येद्यदि ।
तस्य पूजा फलं वत्स नीयते यक्षराक्षसैः ।।४६।।

हे पुत्र! पहले तुम्हारे कुलीन (कौलिक साधक) के भैरव, क्षेत्रपाल गणेशादि का द्वारदेवता के रूप में वर्णन किया गया है। हे वत्स यदि कोई साधक दीक्षाकाल में या नित्यपूजा के समय उनका पूजन नहीं करता है तो उसकी पूजा के फल को, यक्ष और राक्षस ले लेते हैं।।४६।।

यदि व्रीडा परास्तास्तु भोजयेत् तद्गृहाद् वहिः ।
स्थितं स्तोत्रं पठेत्तावत् यावत्तृप्तिः प्रजायते ।।४७।।

यदि वे देवियाँ लज्जापरायण हों तो उन्हें बाहर ही भोजन कराये एवं जब-तक वे भोजन करें या भोजन से संतुष्ट न हो जायँ तब-तक खड़े होकर स्तोत्र पाठ करे॥४७॥

आचम्यमुखवासादि ताम्बूलं च निवेदयेत् ।
ततोदद्यात् पुनर्माल्ये गंध चंदन पंकजम् ।
स्तुत्वा प्रदक्षिणीकृत्य वरं प्रार्थ्य विसर्जयेत् ।।४८।।

तब उन्हें आचमन कराये एवं मुख को सुगन्धित करने हेतु ताम्बूलादि निवेदित करे। तत्पश्चात् उन्हें क्रमशः माला, गन्ध, चन्दन, कमलपुष्प आदि पूजाद्रव्य प्रदान करे। तदनन्तर स्तुति, प्रदक्षिणा और प्रार्थनापूर्वक उनका विसर्जन करना चाहिए॥४८॥

अन्यायदि नागच्छंति निजकन्या निजानुजा ।
अग्रजा मातुलानी वा माता वा तत्सपत्निका ।।४९।।
वयस्या जातितोवापि हीना वा परमाकला ।
पूज्या कुलरसैः सर्वैर्निजाहंकारवर्जितैः ।।५०।।

यदि अन्य कन्या न आयें तो साधक को अपनी कन्या, अपनी छोटीबहन, बड़ीबहन, मामी, माता अथवा उसकी सप्तनी (सौतेली माता), मित्र, जाति से हीन या श्रेष्ठ कलावाली का, अपना अहंकार छोड़कर, निरभिमान हो, कुल रसों से पूजन करना चाहिए॥४९-५०॥

सर्वाभावे सेकतरा पूजनीया प्रयत्नतः ।
संस्कृतासंस्कृतावापि जननी वा च निष्पत्तिः ।।५१।।

सबपात्रों के अभाव में चाहे व संस्कारित हो, न हो, एकमात्र माता का ही पूजन करने से कार्यसिद्धि होती है॥५१॥

पूर्वाभावे परापूज्या मंदशायोषितो यतः ।
एकश्चेत्कुलशास्त्रज्ञः पूजार्हस्तत्र भैरवः ।।५२।।

पहली के न मिलने पर दूसरी का पूजन करना चाहिए। क्योंकि स्त्रियाँ मेरा ही अंश होती हैं। यदि एक भी व्यक्ति कुलशास्त्र का ज्ञाता हो तो वह भैरवरूप में पूजनीय होता है॥५२॥

सर्व एव सुरापूज्या ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ।
एकचेद्युवती तत्र पूजिता वां विलोकिता ।।५३।।

सभी ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप में पूजनीय हैं यदि वहाँ एक भी युवती हो तो उसका भी अवलोकन करते हुए पूजन करना चाहिए।।५३।।

सर्वाभावेपरादेव्यः पूजितां कुलभैरव ।।५४।।

हे कुलभैरव! सबके अभाव में परादेवी का पूजन करना चाहिए।।५४।।

इदं चादौ मध्ये अंते च पौरश्चराणिकानां वीराणां शक्तिपूजनमावश्यकं अन्यथा निंदा श्रवणात्।

इसप्रकार से पुरश्चरण के आरम्भ, मध्य और अन्त में वीरसाधकों द्वारा शक्तिपूजन आवश्यक है। अन्यथा सुनने में भी निन्दा होती है।

तदुक्तं कुलचूडामणौ—जैसा कि **कुलचूड़ामणि** में भी कहा है।

आदावंते च मध्ये च जपपूर्तो विशेषतः ।
न पूजयति चेत्कांतां तदा विघ्नैर्विलुप्यते ।।५५।।

पुरश्चरण के आदि, अन्त और मध्य में विशेषकर जप की पूर्त्ति के पश्चात् यदि साधक कांता (स्त्री) का पूजन नहीं करता है तो वह विघ्नों के बीच विलुप्त हो जाता है।।५५।।

पूर्वार्जितफलं नास्ति काकथा परजन्मनि ।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन यदिच्छेदात्मनो हितम् ।।५६।।
ममापि क्रोधसंताप शमनं विघ्ननाशनं ।
यत्नतः पूजनीयाः स्युः कलाः कुलजनैस्ततः ।।५७।। इति।

ऐसी अवस्था में पूर्व-अर्जितफल भी नहीं मिलता, फिर परजन्म की क्या बात है? इसलिए यदि साधक अपना हित चाहे तो सबप्रकार के प्रयत्नपूर्वक शक्तिपूजन करे। कुलजनों (कौलिक साधकों) द्वारा प्रयत्नपूर्वक कलाओं का पूजन किया जाना चाहिए क्योंकि यह मेरे क्रोध से उत्पन्न संताप को दूर करने तथा विघ्नों का नाश करनेवाला होता है।।५६-५७।।

एवमेतत्कर्मनिष्पाद्य रात्रौ देवीं यथाविधि पूजयित्वा उत्तमशैय्यामासीनां ताम्बूलपूर्णास्यो भूत्वा यथोक्ताचार कुर्वन् तुल्य संख्यया प्रत्यहं समाप्तिपर्यन्तं रहसि मालामादाय जपेदिति।

पहले इस कर्मकाण्ड को सम्पन्न कर, रात्रि में उत्तमशैय्या पर आसीन देवी का स्वयं ताम्बूलपूरितमुख होकर, विधिपूर्वक पूजनादि यथोक्त आचार करते हुए प्रतिदिन समाप्ति पर्यन्त एकान्त में माला लेकर समान संख्या में जप करे।

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे—जो **स्वतन्त्रतन्त्र** में कहा है।

रात्रौ मांसरसैर्देवी पूजयित्वा विधानतः ।
ततो नग्नांस्त्रियं नग्नोवासन् क्लेदयुतोऽपिच ।
जपेल्लक्षं ततो देवीं होमयेज्वलितानले ।।५८।।

रात्रि में मांसरस से देवी का विधिपूर्वक पूजन करने के पश्चात् स्वयं नग्नावस्था में नग्नस्त्री से युक्त एवं पसीने से भरकर एकलाख जप करे तथा प्रज्वलितअग्नि में देवी का होम करे।।५८।।

योनिकुंडेस्थितः सर्पिर्मांसमध्वायुतंस्तथा ।
दशांश भोजयेत् साधु साधकं कालिकाप्रियम् ।।५९।।

योनिकुण्ड पर स्थित हो घी, मांस, मधु आदि से देवी का होम करे। दशांश संख्या में साधु, कालिकाप्रिय साधकों को भोजन कराये।।५९।।

मद्यं मांसं च मत्स्यं च चर्वणं च प्रदापयेत् ।
ततस्तु तोषयेदभक्त्या गुरुं स्वर्णादिभिः प्रिये ।।६०।।

हे प्रिये! मद्य, मांस, मत्स्य, चर्वण उन्हें प्रदान कर तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक गुरु को स्वर्णादि से सन्तुष्ट करे।।६०।।

एतत् कल्पद्वया देवि मंत्राः सिध्यंति निश्चितम् ।।६१।।

हे देवि! इन विधान से दो बार आचरण करने से निश्चित रूप से मन्त्रसिद्ध हो जाते हैं।।६१।।

अत्रेदं तत्त्वं–यहाँ यह रहस्य है।

पशूनांपुरश्चरण चतुष्ट्यात्सिद्धिः तदुक्तमेव वीरकल्पे–पशुसाधकों को चार पुरश्चरण करने से सिद्धि प्राप्त होती है। जैसा कि वीरकल्प में कहा है।

भावना रहितांनां च क्षुद्राणां क्षुद्रचेतसां ।
चतुर्गुणो जपः प्रोक्तः सिद्ध्येनान्यथा भवेत् ।।६२।।

भावना से रहित, क्षुद्रकोटि के क्षुद्रचित्त वाले साधकों को सिद्धिलाभ हेतु चारगुना जप कहा गया है। अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती।।६२।।

क्षुद्राणां पशूणामित्यर्थः ननु वीरत्वमिच्छतां–क्षुद्रों से यहाँ तात्पर्य वीरता की इच्छा रखने वाले, पशुओं से है।

द्विजेन किं कार्यमिति उच्यते–द्विज के द्वारा क्या किया जाना चाहिए कहा जाता है।

पशूनां द्विजानां पाशव एवकल्पः। वीराणां द्विजानां वीर एवेति विभागात्–पशुवृत्ति के द्विजों के लिए पाशवकल्प ही बताया है तथा वीर-द्विजों के लिए वीर-आचार है। यही विभाग बताया गया है।

ननु द्विजानां चैव सर्वेषां दिवा विधिरिहोच्यते शूद्राणां च यथाप्रोक्तं रात्राविष्टं महाफलमिति वाक्येन सहविरोधः स्यादिति।

निश्चय ही सभीप्रकार के द्विजों के लिए दिन में ही साधना की विधि कही गई है, शूद्र के लिए पूर्ववर्णितक्रम से पूजन करना चाहिए। यहाँ रात्रि में पूजन से इष्टमहाफल की प्राप्ति होती है। इस कथन का विरोध प्रतीत होता है।

तस्य तंत्रांतरेणैकवाक्यतया द्विजानामित्यनेन पशूनामित्यर्थस्य विवक्षितत्वाच्छूद्राणामित्यनेनापि वीराणामिति सैवाभिप्रेतत्वाच्चेति।

इसका अन्य तंत्रों की एकवाक्यता से, द्विजों से का तात्पर्य पशुओं से निकलने के कारण शूद्रों से वीरों की विवक्षा होता है। वही अभिप्रेत है।

अथवा मंत्रांतरपरतयैवेदंवाक्यं योज्यं एवं वाथविशेषं चात्रा।

अथवा मन्त्रान्तरपरक होने पर ही इस वाक्य को योजित करने की आवश्यकता है। अथवा विशेष कहा गया है।

कुलार्णवेऽपि—कुलार्णव में भी कहा है।

सुवेषी कुलशास्त्रादिसम्यक् विज्ञायते यतः ।
कुलद्रव्यं निषेवेन तस्य सिद्धिर्न संशयः ।।६३।।

सुन्दरवेशधारण कर कुलशास्त्र (कुलाचार) को जो साधक भलीभाँति जानता है। उसकी कुलद्रव्य के सेवनमात्र से ही सिद्धि हो जाती है। इसमें कोई संशय नहीं है।।६३।।

विनाद्रव्याधिवासेन न स्मरेन्न जपेत्प्रिये ।
ये जपति तथा मूढास्तेषां दुःखं पदे पदे ।।६४।।

हे प्रिये! द्रव्यादि के अधिवासन अर्थात् पात्रासादन के बिना न तो देवता का स्मरण करे और न जप ही करे। जो उनके अभाव में जप करते हैं, वे मूढ़ अपने प्रत्येक पादक्षेप में दुःख, प्राप्त करते हैं।।६४।।

मद्यं मासं तथा मत्स्यं मुद्रामैथुनमेव च ।
अन्योन्यंनित्यता ज्ञेया पंचानामपि पूजने ।।६५।।

पूजन में मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन इन पाँचों में परस्पर नित्यता ही जाननी चाहिए।।६५।।

ब्राह्मणेन सदाकार्या क्षत्रियैश्च रणागमे ।
वैश्यैर्धनप्रयोगे च शूद्रैनैव कदाचन ।।६६।।

इसप्रकार का पूजन ब्राह्मण द्वारा सदा न किया जाना चाहिए। क्षत्रियों द्वारा युद्ध उपस्थित होनेपर, वैश्यों द्वारा धनप्राप्त्यर्थ प्रयोगों में नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु शूद्रों द्वारा कभी नहीं किया जाना चाहिए।।६६।।

शूद्रैः केवल पशुभिरित्यर्थः—यहाँ शूद्रों से तात्पर्य पशुओं से है।

तदुक्तं भावचूडामणौ—जैसा कि भावचूड़ामणि में कहा है।

वीरसाधनकार्यं तु कर्त्तव्यं वीर पुरुषैः ।
दिव्यैरपि च कर्त्तव्यं पशुभिनचपामरैः ।।६७।।
वरं पामर कार्यं तन्न पशोरिति निश्चितम् ।
यद्ययत्पुरा प्रोक्तं संकेत मंत्र साधनामिति ।।६८।।

वीरसाधनकार्य, वीर पुरुषों द्वारा ही किया जाना चाहिए। यह दिव्य साधक के द्वारा भी किये जाने योग्य है किन्तु पशुओं एवं पामर (नीच) साधकों द्वारा नहीं किया जाना चाहिए, यदि पामर द्वारा किया भी जाय तो भी पशु द्वारा तो नहीं ही किया जाना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि पामर, पशु से भिन्न है। पशु पामर नहीं है, यह निश्चित है। जो-जो पहले कहा गया है वह मन्त्र साधन का संकेत मात्र है।।६७-६८।।

अन्यदपि तंत्रोक्तं—अन्यतन्त्रों में भी कहा है।

यदि विप्रः कुलश्रेष्ठः कुलद्रव्यपरायणः ।
तदानेन विधानेन कर्त्तव्यं कुलतोषणम् ।।६९।।

साधक यदि विप्रवर्ण का, कुलश्रेष्ठ, कुलद्रव्यपरायण हो तो उसे इस विधान से साधना कर कुल की तुष्टि करनी चाहिए यहाँ विप्र का तात्पर्य वीर से लें।।६९।।

कुलश्रेष्ठ इति वीरभाव प्रपन्न इत्यर्थः—यहाँ कुलश्रेष्ठ का तात्पर्य वीरभाव के प्रति समर्पित साधक से है।

वीरभावप्रपन्नानां तु एषविधिरावश्यकः ।
अन्यथा निन्दाश्रवणात्तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे ।।७०।।

यह साधनाविधि वीरभाव को समर्पित साधकों के लिए आवश्यक है। अन्यथा सुनने मात्र से ही निन्दा होती है। ऐसा स्वतन्त्रतन्त्र में कहा गया है।।७०।।

विना पीत्वा सुरां भुक्त्वामांसं गत्वारजस्वलाम् ।
योजयेद्दक्षिणां देवीं तस्य दुःखः पदे पदे ।।७१।।

बिना सुरापान किये, बिना मांसभक्षण किये, बिना रजस्वला नायिका का गमन किये, जो साधक दक्षिणाकालिका का जप करता है। उसे पद-पद पर दुःख का अनुभव करना पड़ता है।।७१।।

कुलसद्भावेप्युक्तं—कुलसद्भावतन्त्र में भी कहा गया है।

रात्रौ नग्नोमुक्तकेशो मैथुनेवापि तत्परः ।
प्रकर्त्तव्यं प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये ।।७२।।

साधक को सभी कामनाओं की सिद्धि हेतु रात्रि में नग्न एवं खुले केश हो, मैथुन में भी तत्पर हो, प्रयत्नपूर्वक साधना करनी चाहिए।।७२।।

कुण्डयोनिरूपमिहज्ञेयं—यहाँ कुण्ड योनि रूप को जानना चाहिए।

तदुक्तं तन्त्रांतरे—जैसा कि किसी अन्यतन्त्र में कहा गया है।

योनिरूपं तु कुंडं वै कृत्वा वितस्ति मात्रतः ।
हस्तविस्तारतस्ता वा कृत्वाचापि तथाप्यधः ।।७३।।
तत्रकार्याहि मन्त्रेण अग्निस्थापनिका क्रिया ।
महाकालाय देवाय दद्याच्च प्रथमाहुतिम् ।।७४।।

एक बित्ता अथवा एकहाथ माप का, योनि के रूप का, कुण्ड बनाना चाहिए जो उतना ही गहरा हो। तत्पश्चात् उसमें ही मन्त्रोच्चारपूर्वक अग्निस्थापन की प्रक्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। तब उसमें महाकालदेवता को पहली आहुति देनी चाहिए।।७३-७४।।

एवं मत्स्येन मांसेन भक्तेन रुधिरेण च ।
कृष्णापुष्पेण चाज्येन रक्तेन च विशेषतः ।।७५।।

इस उपर्युक्त रीति से हवन प्रारम्भ कर उस कुण्ड में मत्स्य, मांस, भात (पके चावल), रक्त, कालेपुष्प, घी, विशेष कर रक्त, मांसादि से भी सुधीसाधक, श्मशान में हवन करे।।७५।।

आमिषादिभिरप्येवं श्मशाने जुहुयात्सुधीः ।
तर्पयेच्च पयोभिश्च रक्तधारायुतैः सदा ।।७६।।
मज्जाभिश्च तथा तद्वत्स्वकीयेन कचेन च ।
आकर्षितायाः कन्यायाः कुलप्रक्षालनेन च ।।७७।।
मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि ।
मूषमार्जार रक्तेन तर्पयेत्परदेवताम् ।।७८।।
तेन तेन च द्रव्येण मार्जयेच्च दशांशतः ।।७९।।

हवन के बाद रक्तधारायुत जल से, मज्जा से या अपने केश से, आकर्षण की कन्या के कुलप्रक्षालन जल से, भेंड़ा, भैंसा या मनुष्य के रक्त अथवा चूहे-बिल्ली के रक्त से परदेवता भगवती का तर्पण करे। तदनन्तर जिन द्रव्यों से तर्पण किया हो उन्हीं से तर्पण की दशांश संख्या में मार्जन भी करे॥७६-७९॥

एवं त्रिकोणकुण्डं सामान्यविधिनापि संस्कृत्यमूलेन अग्निसंस्थाप्य महाकालाय प्रथमाहुतिं दत्वा तद्दशांशेन जलादौ मंत्रविलिख्ययथासंभवं देवीं पूजयित्वा मूलमुच्चार्य अमुकदेवताभिषिंचयामीत्यभिषिंच्य तद्दशांशेन देवता यथोक्त ब्राह्मणान् संपूज्याभिषेक दशांशेन यथा भैरवंसन्तर्प्य स्वर्णादिदक्षिणां दत्वा गुरुं संतोष्य विहरेदिति। ब्राह्मणभोजनल्यावश्यकं अन्यत्रानुकल्प स्थिताऽपि संभवात्।

इसप्रकार से त्रिकोणकुण्ड बनाकर उसे, सामान्यविधि से संस्कारित करके, उसमें मूलमन्त्र से अग्निस्थापन कर, महाकाल को पहली आहुति प्रदान करे। उसके दशांश से जल आदि पर मंत्र को लिख कर यथासंभव देवी-पूजन करने के पश्चात् मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए **अमुकदेवतामभिसिंचामि।** इस मन्त्र से अभिषेक कर, उसकी दशांश संख्या में देवता के उपासक ब्राह्मणों का भलीभाँति पूजन करे, उसकी दशांश संख्या में सम्बन्धित भैरव को तृप्त करने के पश्चात् स्वर्ण आदि की दक्षिणा, अपने गुरु को अर्पित कर उन्हें तृप्त कर, साधक इच्छानुसार विहार करे। इस प्रक्रिया में ब्राह्मणभोजन आवश्यक है। अन्य साधनों के लिए तो अनुकल्प का भी प्रयोग किया जा सकता है।

तदुक्तं कुलप्रकाशे—जैसा कि **कुलप्रकाश** में कहा है।

एकमंग विहीनेतु मन्त्रान्नेष्टमाप्नुयात् ।
अत्रै बहुविधैर्देवि पदार्थे षड्विधान्वितैः ।
सुभोजितेषु विप्रेषु सर्वंतत्सफलं भवेत् ।।८०।।
सम्यक् सिद्धैकमन्त्रस्य पंचांगोपासनेन हि ।
सर्वेमन्त्राश्च सिद्ध्यन्ति तत्प्रभावात् कुलेश्वरि ।।८१।।

हे देवि! पुरश्चरण के जप, होम, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मणभोजन आदि जो पाँच अंग, बताये गये हैं। उनमें से एक के भी कम होनेपर मन्त्र इष्टफल नहीं देता। किन्तु बहुतप्रकार के अन्नों से तथा पूर्वकथित चर्व्य, चोष्य आदि छः पदार्थों से ब्राह्मणों को सुन्दर भोजन कराने से सब कुछ

सफल हो जाता है। भलीभाँति सिद्ध किये गये पंचागोपासना की भी आवश्यकता नहीं रहती। हे कुलेश्वरि! एक मन्त्र की साधना के प्रभाव से ही सभी मन्त्र, स्वतः सिद्ध हो जाते हैं।।८०-८१।।

अन्यत्राऽपि—अन्यत्र भी कहा है।

सर्वथा भोजयेद् विप्रान् कृत सांगार्थ सिद्धये।
विप्राराधनमात्रेण व्यंगं सांगं भवेत्सदा।।८२।। इति

अंगों के सहित की गई पूर्वोक्त सांग उपासना के पश्चात् भी अर्थ की सिद्धि के लिए ब्राह्मणों को सबप्रकार से भोजन कराये। विप्र की आराधना मात्र से अंगहीन पुरश्चरण भी सदैव सांगोपांग पूर्ण हो जाता है।।८२।।

होमतर्पणाभिषेकानाशक्तयौ तु द्विगुणास्त्रिगुणश्चतुर्गुणः।
पंचगुणो विप्रक्षत्रियवैश्यशूद्रैर्यथासंख्य जपः कार्यः।।

इसप्रकार का उपर्युक्त होम, तर्पण, अभिषेकादि में असमर्थ होने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र साधकों द्वारा जपे गये मन्त्र के पुरश्चरण हेतु क्रमशः दोगुना, तीनगुना, चारगुना और पाँचगुना जप किया जाना चाहिए।

तदुक्तं कुलप्रकाशे—जो **कुलप्रकाश** में कहा गया है।

यद्यदंगविहीनं स्यत्तत्संख्या द्विगुणं जपं।
कुर्यात् वर्ण भेदेन द्वित्रि चतुःपंच संख्यया।।८३।।
गुरु संतोषमात्रेण मन्त्राः सिद्ध्यन्ति मंत्रिणः।।८४।।

जो-जो अंगहीन हो उससे दूना जप करना चाहिए। या वर्ण भेद से दो, तीन, चार या पाँच गुने की संख्या में जप करना चाहिए। मन्त्रजापक के मन्त्र, गुरु के संतोष मात्र से ही सिद्ध हो जाते हैं।।८३-८४।।

अत्रापि शूद्राणां होमानुगुणेन जप एव नतु शक्तावपि होमः—यहाँ भी शूद्रादि हेतु होमादि निमित्त समर्थ होने पर भी जप ही करने का निर्देश किया गया है।

तदुक्तं ज्ञानप्रकाशे—जैसा कि **ज्ञानप्रकाश** में कहा है।

स्त्रीशूद्राभ्यां न होतव्यं मन्त्रोच्चारण पूर्वकमित्यादि तस्मात्पाशवकल्पेन लक्षजपन्तद्दशांश होमाद्यात्मकं पुरश्चरणम्।

तात्पर्य यह कि स्त्री और शूद्रों द्वारा मन्त्रोच्चारणपूर्वक होम नहीं करना चाहिए। उपर्युक्त सब का तात्पर्य यह है कि पाशवकल्प के

अनुसार एकलाख जप और उसके दशांशक्रम में होमादि करने से पुरश्चरण सिद्ध होता है।

वीरकल्पेऽपि तथैव पर्यवसितमिति—वीरकल्प में भी वैसा ही बताया गया है।

अतएव लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्याशी दिवाशुचिः ।
रात्रौ ताम्बूलपूर्णास्यः शय्यायां लक्षमानतः ।।८५।। इति।

साधक दिन में हविष्य का भोजन करके पवित्रभाव से एकलाख मन्त्र का जप करे तथा रात्रि में मुख में ताम्बूल धारण कर, शय्या पर स्थित हो, एकलाख मन्त्र का जप करे।।८५।।

कर्पूरस्तवेऽपि—**कर्पूरस्तव** में भी कहा है।

वशीलक्षमंत्रं प्रजपति हविष्याशनरतो ।
दिवामातुयुष्मच्चरणयुगलध्याननिरतः ।।
परं नक्तं नग्नो निधुवनविनोदेन च मनुं ।
जपेल्लक्षं सम्यक् स्मरहर समानः क्षितितले ।।८६।।

हे माता! जो साधक नित्य हविष्यभोजी, वशी होकर, तुम्हारे दोनों चरणकमलों में ध्यान लगाये हुए, एकलाख मूलमन्त्र का जप करता है। वही पर साधक रात्रि में निधुवनविनोद, सुखानन्दपूर्वक, नग्नावस्था में भलीभाँति एकलाख मन्त्रजप करता है, वह इस पृथिवी पर शिव के समान ही हो जाता है।।८६।।

इतिवाक्ययोर्बलाक्रमेणैव समुचितं लक्षद्वयात्मकं ये वदंति वदयास्तं। कल्पद्वयेति परस्परं निरपेक्ष एकैकलक्षद्वयजप, प्रतिपादकृन्नानावचन विरोधेन।।

इनदोनों वाक्यों के बल के क्रमानुसार सम्मिलित रूप से कहते हैं या कहाते हैं-दोनों ही कल्पों में परस्पर एक-एक लाख करके दो लाख जप प्रतिपादक अनेकों वाक्यों के विरोध के कारण ही कहा गया है।

अथ हैनं मंत्रराजं नियमेन जपेत्। नियमेन वालक्षमावर्त्यति स पाप्मानं तरति। स ब्रह्महत्यांतरति इत्यादि श्रुतिविरोधेन च कल्पद्वयादेव मंत्रं सिद्ध्यति निश्चितमित्यादि वचनोक्तयोरपि कल्पद्वयसूचकपरतमोपपत्तेः किं च एकस्मिन्न कर्मणि नाना कर्मणांगत्वादिति शुचिः।

इस मन्त्रराज का नियमपूर्वक जप करना चाहिए या नियम से एक लाख जो साधक मन्त्रराज का आवर्तन करता है। वह पापभाव को पार कर लेता है। वह ब्रह्महत्या से तर जाता है। इन वैदिक वचनों से विरोध सिद्ध होता है। इसीलिए दोनोंकल्पों से मन्त्र की सिद्धि होती है। यह निश्चित है। इन वचन के महत्व से वे दोनों भी दोनों कल्पों के सूचक हैं। यह बात सिद्ध होती है। अथवा एक कर्म अनेक कर्मों का अंगत्व होने से होता है। यह पवित्रभाव है।

पशुवशीत्यापि पशुरेव परंवीर इति तयोर्यदिति भावः–कर्पूरस्तव के उपर्युक्त स्तोत्र में पशु अथवा वशी दोनों, पशु ही सिद्ध होता है। इसीप्रकार परं और वीर दोनों ही वीर का बोध कराते हैं। इनदोनों में जो हो ऐसा भाव है। अर्थात् अन्यत्र जो पशु शब्द है यहाँ वही वशी तथा वीर शब्द परं शब्द में वर्णित है।

शुचिः हविष्याशी मनुं दिवा लक्षं जपेत्–पवित्र, पशुभावापन्नसाधक हविष्यभोजी हो दिन में एकलाख मन्त्रजप करे।

न तु रात्रौ–न कि रात्रि में।

तदुक्तं भावचूडामणौ–जैसा कि **भावचूड़ामणिग्रन्थ** में कहा गया है।

मद्यं मासं तथा वापि न परद्रव्य लोभकृत्।
सिन्धुतीरे वनेवापि पत्तने वा शिवालये।।८७।।
बिल्वमूले विप्रोद्वापि मौनी स्यात् सर्वकर्मसु।
एकलिंग विविक्तेषु पुण्यक्षेत्रेषु शोभने।।८८।।

मद्य, मांस से पूजन करते हुए साधक को दूसरे के द्रव्य का लोभ नहीं करना चाहिए। ऐसी दशा में नदी तट, वन, नगर, या शिवालय में, बिल्ववृक्ष के मूल में जप करता हुआ, वह विप्र साधक सभी कर्मों में मौन रहता हुआ, एकान्त में, एकलिंग क्षेत्र में, सुन्दर पुण्यक्षेत्र में साधना करे।।८७-८८।।

न शूद्रदर्शनं कुर्यात् कौटिल्यं दूरतस्त्यजेत्।
देवता शुद्धभावेन ध्यातव्या च समाहितैः।।८९।।

साधक को शूद्र का दर्शन नहीं करना चाहिए। वह कुटिलता को दूर से ही छोड़ दे। उसके द्वारा देवता का समाहितचित्त से शुद्ध भावना से ध्यान किया जाना चाहिए।।८९।।

त्रिसन्ध्यं देवपूजा स्यात्रिसंध्यं जपमाचरेत् ।
रात्रौ माला च मन्त्रं च स्पृशेन्नैव कदाचन ।।
न मन्त्रमुच्चरेद्वापि मौनीस्यात् सर्वकर्मसु ।
विस्तरस्तु पश्चाचार प्रतिपादकतत्वविदेवावगंतव्यं ।।९०।।

उसके द्वारा प्रात:, मध्याह्न, सायं तीनों संध्याओं में जप और देवपूजन किया जाना चाहिए। वह मन्त्र का साधक कभी भी रात्रि में माला का स्पर्श न करे, न मन्त्र का उच्चारण ही करे। वह सभी कर्मों में मौन ही रहे।।९०।।

तथेति येन येन स्वकल्पोक्त द्रव्यादिदानेन प्रकारेण देवतां पूजयित्वा पशूनां दिवैव जपादिकं कार्यमिति वा तथा तेन तेन स्वकल्पोक्त द्रव्यादिदान प्रकारेण देवतां पूजयित्वा वीरेण संध्यामेव जपादिकं कार्यमिति वाक्यस्योत्तरार्थः।

विस्तार से पश्चाचार के प्रतिपादक तत्त्ववेत्ताओं से ही इसे जानना चाहिए। उसीप्रकार अपनी पद्धति के अनुरूप जिस-जिस पदार्थ के दानादि से पशुसाधक दिन में ही जप आदि करे, उन्हीं से अपनी पद्धति में कहे गये द्रव्यप्रकारों से वीरसाधक संध्याकाल में पूजन करे। यह उपर्युक्त कथन का उत्तरपक्ष है।

अतएव वशीत्यादि वाक्यंगतार्थमिति—यही वशी इत्यादि वाक्यों का रहस्य है।

अतएव कालीकल्पेऽप्याह—इसीलिए **कालीकल्प** में भी कहा गया है।

आचार निरतो नित्यं दिवालक्षं जपेत्पशुः ।
दिव्योवाप्यथवा वीरो रात्रौ लक्षं जपं चरेत् ।।९१।।
दशांशं होमयेदग्नौ तर्पयेदभिषिंचयेत् ।
भोजयेत्तु यथा विप्रान्निज भावमुपाचरनित्यादि ।।९२।।

पशुसाधक नित्य अपने आचार-पालन में तत्पर होकर दिन में एकलाख जप करे। दिव्यसाधक अथवा वीरसाधक रात्रि में एक लाख जप करे। तत्पश्चात् उसका दशांश अग्नि में होम करे, तब क्रमशः अपने भावों के अनुरूप नित्य आचरण करता हुआ, तर्पण, अभिषेक एवं ब्राह्मणभोजन सम्पन्न करे।।९१-९२।।

इदं कल्पं तु काली तारोन्मुखी छिन्नादिसाधारणं–यह विधि काली, तारा, उन्मुखी (सुमुखी), छिन्ना (छिन्नमस्तिका) आदि की उपासना हेतु समान रूप से है।

तदुक्तं कालीतन्त्रादौ यथा–यह कालीतन्त्र के प्रारम्भ में कहा गया है जैसे—

यथा काली तथा तारा तथोन्मुखीत्यादि–जैसी काली, वैसी ही तारा, उन्मुखी इत्यादि की उपासना होती है।

काली श्रुतौ च–कालीश्रुति में भी कहा गया है।

नान्य प्रकारेण सिद्धिर्भवति हवैकालिकायां मनोर्वातारायाः मनोर्वासर्वस्य मनोवैन्यमरिवं। ॐ तत्सदिति।

कालिका के मन्त्र की, तारा के मन्त्र की क्या सभी महाविद्याओं के मन्त्र की सिद्धि अन्यप्रकार से नहीं होती। अन्यप्रकार की साधना यहाँ अरिवत् हो जाती है।

ॐ तत्सदिति तंत्रराजादावपि ॐ तत्सत– ऐसा तंत्रराज आदि में भी कहा है।

कालिकामुख्यदेवीनां भेदपूजनमात्रे ।
स्थापनेनविना शंखघट्योः कुलभैरव ।।९३।।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे पुरश्चरणप्रतिपादनं नामाष्टमृतत्त्वम्।।८।।

हे कुलभैरव! कालिका और अन्य देवियों का मुख्य भेद शंख, घण्टा के स्थापन के बिना पूजनमात्र में ही है।।९३।।

श्रीराघवभट्टविरचित कालीतत्त्व में पुरश्चरणप्रतिपादन नाम के आठवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई।।८।।



नवमतत्त्वम्

* रहस्यपुरश्चरणविधि *

अथ रहस्यपुरश्चरणविधिरुच्यते—अब रहस्य की पुरश्चरणविधि कही जाती है।

तदुक्तं वीरतन्त्रादौ—जो वीरतन्त्रादि में कही गयी है।

घटीबन्धेन वस्त्रं वै मूलेन परिधाय च।
तद्बाह्ये च पुनर्वस्त्रं मूलेनांगविलेपनम्॥१॥
धृतोष्णीश्चमूलेन सिन्दूरेणोर्ध्वपुण्ड्रकः।
इष्टदेवं गुरुं नत्वा यात्रा प्रहरमध्यतः॥२॥
कार्या च साधकैः सार्धं हृदिमंत्रंपरामृशन्।
अक्षुब्धो भुक्तभोज्यस्तु यदिस्याद्वीरसाधकः॥३॥

मूलमन्त्र पढ़ता हुआ साधक, सर्वप्रथम घटीबन्धन से वस्त्र धारण करे। उसके बाहर पुनः वस्त्र अर्थात् उपवस्त्र धारण करे। तब मूलमन्त्र से अंग में चन्दनादि का लेप करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्र से ही पगड़ी धारण करे तथा सिन्दूर का ऊर्ध्व पुण्ड्रतिलक लगाये। तब इष्टदेवता, गुरु को प्रणाम कर, हृदय में मन्त्र का परामर्श करता हुआ, मध्य प्रहर तक साधकों के साथ यात्रा (व्यवहार) करे। यदि वह वीर साधक है तो उसे क्षुब्ध हुए बिना भोज्यपदार्थों का भोग करना चाहिए, वहाँ कोई दिव्य या पशुभाव का साधक न हो॥१-३॥

दिव्यो वा न पशुस्तत्र भुक्त्वा साधन माचरन्।
अष्टम्यां वा चतुर्दश्याम् पक्षयोरुभयोरपि॥४॥
भौमवारे तमिस्त्रा साधये सिद्धिमुत्तमं।
उपचारं समादाय कुलामृतरसं तथा॥५॥

दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी, मंगलवार और तामिस्त्रा (अमावस्या) में साधक उत्तमसिद्धि प्राप्त करे। वह पूजोपचारों एवं कुलामृत को लेकर उपर्युक्तकाल में साधना करे॥४-५॥

रुद्रयामलादौ—रुद्रयामल आदि में कहा है।

सत्ये क्रमाश्चतुवर्णैः क्षीराज्यमधुपिष्टकैः।
त्रेतायां पूजयेद्देवीं घृतेन सर्वजातिभिः॥६॥

मधुभिस्सर्ववर्णैश्च पूजयेद् द्वापरे युगे।
पूजनीया कलौ देवी केवलैरासवैश्चतैः ।।७।।

सभी वर्णों के साधकों को सत्ययुग में दूध, घी, मधु, पिष्टा (चूर्ण) से देवी का पूजन करना चाहिए। त्रेता में घी से सभी जाति के लोग पूजन करें। द्वापर युग में सभी वर्णों के साधकों द्वारा मधु से पूजन किया जाना चाहिए। कलियुग में केवल आसव से देवी की पूजा करनी चाहिये। इसलिए आसव (सुरा) भी चारप्रकार की होती है।।६-७।।

अतएव गुडार्द्रकसुरातु ब्राह्मणस्य च।
गौडीनेया क्षत्रियेण माध्वी वैश्येण तत्र वै ।।८।।
कदली मधुसंमिश्र शालित्वक्केवलैः सुरा।
सर्वशूद्रस्यचैवोक्तं यत्र वा तद्रुचिर्भवेत् ।।९।।

गुड़ और आदी के रस से ब्राह्मण की, गुड़ के सीरे से क्षत्रिय की सुरा, मधु से प्राप्त आसव वैश्य की सुरा, केला तथा मधु मिश्रित धान की भूसी या केवल धान की भूसी से बनी सुरा शूद्र की सुरा होती है। साधक अपने वर्ण के अनुरूप आसव का प्रयोग करे। अथवा जिस क्षेत्र या जिस साधक की जो रुचि हो उसी का प्रयोग करना चाहिए।।८-९।।

गृहीत्वा दातव्यं सर्वं नैवस्पृशेवनैदनुकल्प बोधक वाक्यानां युग चतुष्ट्यं साधारणतया योग जनमपास्तं।

इन आसव को ग्रहण करना तथा सबको देना चाहिए। शेष हेतु अनुकल्प बोधक चारोंयुगों की व्यवस्था साधारणतया योगीजनों के लिए है।

कलावनुकल्पबोधकाश्रवणात्–कलि में ही अनुकल्पबोधक द्रव्य सुने जाते हैं।

पूज्यमेवं विधानेन कलियुगे इति कलियुग में इस विधान से पूजन करना चाहिए, यह तात्पर्य है।

पूजनीया कलौदेवी केवलैरासवैश्चतैरिति च यामलादि वचन बलादेव विरोधोपपत्तेश्चेति तस्मादनुकल्पो युगांतर परोबोद्धव्यः।

कलियुग में देवी केवल आसव से ही पूजी जानी चाहिए। इसका यामल वचनों से बलशाली विरोध प्रतीत होता है। अतः यामलों में कथित अनुकल्प सम्बन्धी वचन अन्य युगों के लिए जानना चाहिए।

अन्यथा तेन सह भिन्नवाक्यतापत्तेरिति–अन्यथा उनसे भिन्न-वाक्यता सिद्ध होगी।

देव्युवाच–

महानीलक्रमं देव सूचितं न प्रकाशितम् ।
कथयस्व महादेव सर्वसिद्धिप्रदं महत् ।।१०।।

देवी बोलीं—हे महान् देव! पूर्व में जिस नीलक्रम को आपने सूचित किया किन्तु प्रकाशित नहीं किया है। उस सबप्रकार की सिद्धि देने वाले महान् क्रम को कहिए।।१०।।

श्रीभैरव उवाच–

सर्वसिद्धिप्रदं साक्षात्सर्वदेवनमस्कृतम् ।
सर्वपापहरं देवि सर्वरोगविनाशनम् ।।११।।

श्रीभैरव बोले—हे देवि! यहक्रम सबप्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाला, प्रत्यक्ष फल देने वाला, सभी देवताओं द्वारा नमस्कार योग्य है। यह सभीपापों का हरण करने वाला और सभीरोगों का नाश करने वाला है।।११।।

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दिक्पालानांच भामिनि ।
भैरवाणां च सर्वेषां गन्धर्वाणां च योगिनाम् ।।१२।।
स्वतः सिद्धिप्रदं गुह्यं महानीलक्रमं महत् ।।१३।।

हे भामिनी! यह महानीलक्रम ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं, दिक्पालों, भैरवों, गन्धर्वों, योगियों, सभी की स्वतः सिद्धि प्रदान करने वाला एवं गोपनीय है।।१२-१३।।

नान्यत् सिद्धिप्रदं देवि वीर साधनवर्जितम् ।
महाबलो महाबुद्धिः महासाहसिकः शुचिः ।।१४।।
महास्वच्छो दयावाँश्च सर्वभूतहितेरतः ।
तेषां कृते महादेवि कथितं वीरसाधनम् ।।१५।।

हे देवि! वीरसाधन को छोड़कर इतना सिद्धिप्रद और कोई उपाय नहीं है। किन्तु जो साधक महान् बलशाली, महान् बुद्धिमान्, महान् साहसवाला, पवित्र, महान् स्वच्छ और दयावान् तथा सभी प्राणियों के हित में तत्पर रहने वाले हो। हे महादेवि! ऐसे साधकों के लिए ही वीरसाधन का क्रम कहा गया है।।१४-१५।।

सामिषान्नं गुडच्छागं सुरापिष्टकमेव च ।
नानाफलं च नैवेद्यं स्वस्वकल्पोक्त साधितम् ।।१६।।
चितास्थानं समानीय सुहृद्भिः शस्त्रपाणिभिः ।
समानगुणसम्पन्नैः साधको वीतभीः स्वयम् ।।१७।।

नवीक्षयेश्चतुर्दिक्षु देवता ध्यानतत्परः ।
भीतश्चेत साधकस्तत्र चतुर्दिक्षु च साधकाः ।
नो चेत्स्वयं केवलोऽसौ भैरवः परिकीर्त्तितः ।।१८।।

मांसयुक्त अन्न, गुड़, छाग, सुरा, पिष्टक और अनेकप्रकार के फलों एवं नैवेद्यों को, जो अपनी-अपनी विधि द्वारा जुटाये गये हों, उपर्युक्त पदार्थों को, साधक स्वयं निर्भय होकर अपने समान गुण से सम्पन्न, सुहृद, हाथ में शस्त्र लिए हुए साधकों के साथ, चितास्थान पर उससमय ले आये। वह देवता के ध्यान में तत्पर हो वह उससमय, चारोंदिशाओं में न देखे। यदि साधक भयभीत चित्त हो तो चारों दिशाओं में साधकों को नियुक्त करे। वह अकेले ही भैरव कहा गया है।।१६-१८।।

अक्षालितां चिताभूमिं गत्वा साधकसत्तमः ।
प्रक्षालिता घटी प्रायः कारयेदस्थि संचयम् ।।१९।।

साधकों में उत्तम साधक बिनाधोयी हुई चिताभूमि पर जाकर स्वच्छ किये घट में अस्थिसंचय का कार्य सम्पन्न करे।।१९।।

अस्त्रांत मूलमंत्रेण प्रोक्षणं यज्ञभूमिषु ।
गुरुपादरजोध्यात्वा गणेशं बटुकं तथा ।
योगिनीं मातृकांचैव वामपादपुरस्सरम् ।।२०।।

अस्त्र (फट्) के अन्त सहित मूलमन्त्र का उच्चारण कर यज्ञभूमि का प्रोक्षण करे। तब गुरु के चरणकमल, गणेश, बटुक, योगिनी एवं मातृकाओं का ध्यान करके अपने बाएँ पैर को आगे की ओर बढ़ाये।।२०।।

ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः ।
पिशाचाः सिद्धयक्षाश्च गन्धर्वाप्सरसांगणाः ।।२१।।
योगिन्यो मातरी भूताः सर्वाश्च खेचरस्त्रियः ।
सिद्धिदास्ता भवंत्वेव तथा च मम रक्षकाः ।
प्रणम्य मनुनानेन पुष्पांजलित्रयं क्षिपेत् ।।२२।।

ये चात्र..........मम रक्षकाः। इसमन्त्र से प्रणाम कर तीन पुष्पांजलि अर्पित करे।

मन्त्रार्थ—यहाँ पर जो देवता और भयानकराक्षस, पिशाच, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व और अप्सराओं के समूह, मातृस्वरूपा योगिनियाँ, आकाशगामी स्त्रियाँ स्थित हैं, वे सभी मेरे लिए सिद्धि देनेवाली तथा रक्षा करनेवाली हों।।२१-२२।।

श्मशानाधिपतिं पश्चाद्भैरवं कालभैरवम् ।
महाकालं यजेत्पश्चात् पूर्वादिक्चतुष्टये ।।२३।।

उपर्युक्त मन्त्र द्वारा देवताओं को पुष्पाञ्जलि देने के पश्चात् चारों दिशाओं में पूर्वादि के क्रम से श्मशानाधिपति, भैरव, कालभैरव एवं महाकाल का पूजन करे।।२३।।

पाद्यादिभिश्चमन्त्रज्ञो बलिंपश्चान्निवेदयेत् ।
हूँ बीजं पुनः पश्चात् श्मशानाधिपतित्पदम् ।।२४।।
इममत्र सामिषान्नं बलिं गृह्ण ततः परम् ।
गृहण गृहण पदे युग्मं विघ्ननिवारणं ततः ।।२५।।
कुरु सिद्धिं मेऽभिमतं प्रयच्छ स्वाहयाचितम् ।
ताराद्यमनुना देवि प्रथमो बलिरीरितम् ।।२६।।

हे देवि! उक्त पूजनक्रम में चारोंदिशाओं में पाद्यादि से पूजनकर, बलि प्रदान करनी चाहिए। अब बलिदान मन्त्र कहते हैं– पहले हूँ बीज तब **स्वाहा से युक्त श्मशानाधिप इममन्त्र सामिषान्नं बलिं गृह्ण गृह्ण** तत्पश्चात् **विघ्नं निवारणं कुरु सिद्धिं मेऽभिमतं प्रयच्छ** मन्त्र को तारपूर्वक (ऊँकार सहित) **ॐ हूँ श्मशानाधिप इममन्त्र सामिषान्नबलिं गृहण गृहण विघ्नं निवारणं कुरु सिद्धिं मेऽभिमतं प्रयच्छ स्वाहा।** इसमन्त्र से प्रथम (श्मशानाधिप) बलि कही गई है।।२४-२६।।

माया ते भैरवः पश्चात् भयानक ततः परम् ।
पूर्ववद्बलिमुद्धृत्य दक्षिणे बलिमाहरेत् ।।२७।।
हुँमंते च समुच्चार्य महाकाल ततः पदम् ।
श्मशानाधिप इत्येष बलित्रयमनुत्तमम् ।।२८।।

माया (ह्रीं) के अन्त में भैरव भयानक के पश्चात् पूर्ववत् बलि आदि शब्दों को कहते हुए दक्षिण दिशा में भैरवबलि प्रदान करे। हुँ के अन्त में महाकाल तब श्मशानाधिप आदि मन्त्रों को कहकर बलिप्रदान करे। ये तीन श्रेष्ठ बलियाँ हैं।।२७-२८।।

कालरात्रि महाकालि कालिके घोर निःस्वने ।
गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम् ।
हूँ कालिकायै स्वाहेति कालिकायै बलिं दत्वा ।।२९।।

कालरात्रि..............स्वाहा। इसमन्त्र से कालिका को बलि प्रदान करे।

मन्त्रार्थ—हे कालरात्रि! महाकालिका! आप घोर गर्जन करने वाली हैं। हे माता! आप इस बलि को ग्रहण करें एवं मुझे उत्तम सिद्धि प्रदान करें। हूँ कालिका को समर्पित है॥२९॥

तव भूतनाथदापयेत्—तब भूतनाथ को बलि प्रदान करे।

हूँ शब्दान्ते भूतनाथांते श्मशानाधिप इत्यपि। प्रणवाद्येन मन्त्रेण दापयेद्बलिमुत्तमम्।

हूँ शब्द के अन्त में **भूतनाथ** और **श्मशानाधिप** इत्यादि को प्रणवपूर्वक कहकर भूतनाथ को उत्तम बलि प्रदान करे।

ॐ हूँ भूतनाथ श्मशानाधिप........। बलि मन्त्र पढ़े।

हूँ सर्वगणनाथांते धिपश्चैव तथा पुनः श्मशानमस्तके दत्वा पूर्ववच्च बलिं हरेत्।

हूँ **सर्वगणनाथ** के अन्त में **श्मशान** के मस्तक पर **धिप** शब्द कहे और पहले की भाँति मन्त्रोच्चारपूर्वक बलिप्रदान करे।

ताराद्येन बलिं दत्वा पंचगव्येन सुन्दरि ।
अस्थि संप्रोक्षणं कृत्वा पीठमंत्रं न्यसेत्ततः ।
भूर्जेवा वटपत्रे वा तत्र पीठमनुं न्यसेत् ।।३०।।

हे सुन्दरि! तार (ॐ) कार से प्रारम्भकर बलि देकर पंचगव्य से अस्थिसंप्रोक्षण करके पीठमन्त्रों का न्यास करे। पीठपर भोजपत्र या वटपत्र रखकर उनपर पीठमन्त्रों का न्यास करे॥३०॥

पीठमास्तीर्य तस्मिन्वै वीरासनस्ततः ।
वीरार्दनेन देवेशि लोष्ठान् दिक्षुपरिक्षिपेत् ।।३१।।

तब वह उसपर ही पीठ (आसन) बिछाकर बद्धवीरासन में उस पर विराजमान हो। हे देवेशि! वीरार्दन (मन्त्र) से वह लोष्टों (मांसखण्डों) को दिशाओं में फेंक दे॥३१॥

कूर्चयुग्मं द्वयं देवि माया युग्मं ततः परम् ।
कालिकेघोरदंष्ट्रे च प्रचंडे चण्डनायिके ।।३२।।
दानवान्दारयेत्युक्त्वा हनेति द्वितयंततः ।
परवीरशरीरमाविघ्नं छेदय द्वितयं ततः ।
द्विठंतो वर्मशस्त्रांतो वीरार्दोयं मनुर्मतः ।।३३।।

कूर्चयुग्मंद्वयम् (हूँ हूँ हूँ हूँ) मायायुग्म (ह्रीं ह्रीं) तत्पश्चात् **कालिके घोरदंष्ट्रे** और **प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय** कहकर दो बार **हन्** तब

परवीर शरीरमाविघ्नं छेदय छेदय तदनंतर (स्वाहा) तब वर्म (हुँ) शस्त्र (फट्) से वीरार्दनमन्त्र कहा गया है।

वीरार्दनमन्त्र–हूँ हूँ हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान्दारय हन् हन् परवीरशरीरमाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हुं फट्।।३२-३३।।

अनेनाभिमंत्रितं लोष्ट्रं दशदिक्षु विनिक्षिपेत् ।
तन्मध्ये भैरवोदेवो न विघ्नैः परिभूयते ।।३४।।
यदि प्रमादाद्देवेशि साधको भयविह्वलः ।
तदातैस्तुसुहृद्वर्गैः रक्षितोनाभिभूयते ।।३५।।

इससे अभिमंत्रित लोष्ट्र (मिट्टी का ढेला) को दसों दिशाओं में फेंके। ऐसा करने से उससे बीच में भैरव देवता विघ्न से परिभूत नहीं होते। हे देवेशि! यदि प्रमादवश साधक भयविह्वल हो, तो उसके सुहृद्वर्ग द्वारा रक्षा की जानी चाहिये। इसप्रकार रक्षित होने से वह अभिभूत नहीं होता।।३४-३५।।

अर्केन्दुसितावाद्याव तूलिनिर्मित वर्त्तिकाम् ।
प्रदीपं तत्र संस्थाप्य यंत्रं तत्र प्रपूजयेत् ।
हतेतस्मिन् महादीपे विघ्नैश्च परिभूयते ।।३६।।

रवि, चन्द्र और शुक्र आदि वारों को काते गये सूत की वर्तिका से युक्त प्रदीप स्थापितकर वहाँ यन्त्र का पूजन करे। यदि वह दीप बुझ जाय तो, साधक विघ्न से ग्रस्त हो जाता है।।३६।।

तदधः अस्त्रमंत्रेण निस्वनेच्चैवप्रदीपम् ।
तत्तत् कल्पविधानेन भूतशुद्ध्यादिकं चरेत् ।।३७।।

उसके नीचे अस्त्र मंत्र से एकान्त में उस प्रदीप की स्थिति में अपने कल्पविधान के अनुसार भूतशुद्धि आदि सम्पन्न करे।।३७।।

षोढावां तारकं वापि विन्यस्य पूजयेत्ततः। देवतामितिशेषः–षोढा अथवा तारकन्यास कर पूजन करे। किसका पूजन करे तो देवता का पूजन करे यह शेष है।

अतएव यामलादि–इस सम्बन्ध में यामल आदि का कथन है।

ततः पंचोपचारेण पुरतो देवतां यजेत् ।
निमील्यचक्षुषीपश्चात् देवं ध्यात्वा मनुं जपेत् ।।३८।।

तब पहले पंचोपचार से पीठ के सामने देवता का पूजन करे। तत्पश्चात् अपने नेत्रों को भलीभाँति बन्दकरके देवता का ध्यान करता हुआ मन्त्र जप करे।।३८।।

ततः परं तु मंत्रज्ञोगजांतकसहस्रकाम् ।
निशायां वा समारभ्य उदयांतं समाचरेत् ।।३९।।
यद्यसह्यभयं कर्ण नेत्रे वस्त्रेण वन्धयेत् ।
अर्धरात्र्यपर्यन्तं यदि किंचिन्नपि लक्ष्यते ।
जयदुर्गामनुना चार्ध्यं तेनैव सर्षपान् क्षिपेत् ।।४०।।

उसके पश्चात् मन्त्रवेत्ता साधक गजांतकसहस्र (आठहजार) संख्या में जप करे। अथवा रात्रि से प्रारम्भ कर उदयकाल तक जप करता रहे। यदि असह्य भय की अनुभूति हो तो कान और आँखों को भी वस्त्र से बाँध ले। तब भी यदि अर्धरात्रिपर्यन्त कुछ भी न दिखाई दे तो। जयदुर्गा मन्त्र से अर्घ्य दे और उसी से पीली संरसों चारों ओर छोड़े॥३९-४०॥

ॐ तिलोसि सोम दैवत्यो गोसवस्तृप्ति कारकः ।
पितृणां स्वर्गदातात्वं मर्त्यानामभयप्रदः ।
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शांतिकारकः ।।४१।।
इति छिप्त्वा तिलान्तत्रचतुर्भागे शवादितः ।
पुनः सप्तपदं गत्वा पुनस्तत्रैव संविशेत् ।।४२।।
देवं तत्रापि संपूज्य पूजयेन्मनुमुत्तमम् ।।४३।।

ॐ तिलोसि....कारकः। इसमन्त्र को पढ़ता हुआ शव के चारो ओर तिल छोड़े। तब शव से सात पद आगे जाकर वापस लौटकर, पुनः वहीं बैठ कर वहाँ देवता का पूजन कर उत्तम मन्त्र का जप करे॥४१-४३॥

निर्भयं प्रजपेन्मन्त्रं यावत्सिद्धिः प्रजायते ।
भयं तु स्वप्नवत् ज्ञेयं परेह्नि शेषमाचरेत् ।।४४।।

साधक निर्भय होकर जब-तक सिद्धि न प्राप्त हो जाय तब-तक मन्त्र जप करता रहे। भय यदि उपस्थित हो तो उसे स्वप्नवत् सारहीन समझे। जप के शेषभाग को वह अगले दिन पूर्ण करे॥४४॥

इति चितासाधनं—इसप्रकार चितासाधन सम्पूर्ण हुआ।

* अथ शवसाधनविधिः *

पूर्वोक्तमुपचारादि समादाय तु साधकः ।
साधयेच्च हितां सिद्धिः साधनस्थानमाश्रयेत् ।
गुरुध्यानादिकं सर्वं पूर्वोक्तमतमाचरेत् ।।४५।।

शवसाधनविधि

पूर्व कहे उपचार आदि को लेकर साधक हितकारीसिद्धि को साधे

और उसी के अनुरूप साधन एवं स्थान का आश्रय ले। तत्पश्चात् पहले के विचार के अनुसार ही गुरुध्यान, न्यासादिक का आचरण करे॥४५॥

वीरार्दनांकिते भूमौ मायामोहो न विद्यते ।
चे चक्रेत्यादि मंत्रेण पुष्पांजलित्रयं क्षिपेत् ॥४६॥
स्थानाधिपतीनां तु पूर्ववद्बलिमाहरेत् ।
अघोरास्त्रेण मंत्रेण शिखाबंधनमाचरेत् ।
सुदर्शनेन वा रक्षा उभाभ्यां च प्रकल्पयेत् ॥४७॥

वीरार्दनांकित भूमि पर माया-मोह नहीं रह जाता। चे चक्र-इत्यादि मन्त्र से तीन पुष्पांजलि अर्पित करे। पहले की भाँति ही स्थानाधिपतियों को बलिप्रदान करे। अघोर नामकमन्त्र से शिखाबंधन तथा सुदर्शनमन्त्र से रक्षा-विधान करना चाहिये। अथवा दोनों ही मन्त्रों से रक्षाविधान करे॥४६-४७॥

*** अघोर मन्त्र ***

माया स्फुर द्वयं भूयः प्रस्फुरद्वयं पुनः च ।
घोरघोरतरस्यान्ते तनुरूप पदं ततः ॥४८॥
चट युग्मं तदन्ते च प्रचटद्वितयं पुनः ।
कह युग्मं वमद्वंद्व ततो विन्धयुगं पुनः ॥४९॥
घातय द्वितयं वर्म फडन्तस्समुदाहृतः ।
एक पंचाशदोर्णोऽयमघोरास्त्रमयं मनुः ॥५०॥

माया (ह्रीं) स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चट-चट प्रचट-प्रचट कह कह वम वम बन्ध बन्ध घातय घातय हुँ फट्। यह इक्यावन वर्णों का अघोरास्त्रनामक महामन्त्र बनता है॥४८-५०॥

हालाहलं समुद्धृत्य सहस्रार स्वरूपकम् ।
वर्मास्त्रं च महामन्त्र सौदर्शनं प्रकीर्तितम् ॥५१॥
भूतशुद्धिं ततः कुर्यान्न्यासजालं प्रविन्यसेत् ।
जयदुर्गाख्यमंत्रेण सर्षपान् दिक्षु निक्षिपेत् ।
तिलोसीति मन्त्रेण तिलान्दिक्षुविनिक्षिपेत् ॥५२॥

हालाहल कहकर सहस्रार स्वरूप कहे तब वर्म (हुं) अस्त्र (फट्) कहने से बना हालाहल सहस्रार स्वरूप हुं फट् सुदर्शनमन्त्र कहा गया है। तब भूतशुद्धि करने के पश्चात् न्यासादिक करे। तब जयदुर्गा नामक मन्त्र से सरसों को सारे दिशाओं में फेंके तथा तिलोसि.......। इसमन्त्र से सभी दिशाओं में तिलों को फेंके॥५१-५२॥

यष्टिविद्धं शूलविद्धं खड्गविद्धं पयोऽमृतम् ।
रज्जुबद्धं सर्पदंष्टं चाण्डालं चाभिभूतिकम् ।।५३।।
तरुणं सुन्दरं शूरं बालं नष्टं समुज्ज्वलम् ।
पलायनविशून्यं तु सन्मुखे रणवर्तिनम् ।।५४।।
स्वेच्छामृतं द्विवर्षं च वृद्धस्त्री च द्विजं तथा ।
अन्नाभावमृतं क्लिष्टं सप्तवर्षोऽधिकं तथा ।।५५।।
एवं चाष्टविधंत्यक्त्वा पूर्वोक्तान्यतमंशवम् ।
गृहीत्वा मूलमन्त्रेण शवस्य प्रोक्षणं चरेत् ।।५६।।

स्वेच्छया मरे (आत्महत्या किये), दो वर्ष के, वृद्ध, स्त्री, ब्राह्मण, अन्नाभाव से मरेहुए, क्लिष्ट एवं सातवर्षों से अधिक इन आठप्रकार के शवों को छोड़ कर लाठी या भाले से मरे, तलवार से मरे, जल में डूबे, रस्सी से बंधे (फाँसी आदि से), साँप के काटे, चाण्डाल द्वारा अभिभूत कर सम्मोहनादि से मारेगये, तरुण, सुन्दर, शूर, बालक (सहज बुद्धि), मराहुआ किन्तु तेजस्वी शव, बिना भागे रण में डटे हुये मृत शवसाधन हेतु श्रेष्ठ कहे गये हैं। इनमें से किसी भी शव को लेकर, मूलमन्त्र से शव का प्रोक्षण करना चाहिए।।५३-५६।।

प्रणव पूर्वबीजं च मृतकाय नमोस्तु फट् ।
पुष्पांजलि त्रयं दत्वा प्रणमेत्स्पर्शपूर्वकम् ।।५७।।

इसहेतु प्रणवपूर्वक बीजमन्त्र पढ़ते हुए **मृतकाय नमोस्तु फट्** कहते हुए तीन पुष्पांजलि देकर स्पर्शपूर्वक उस शव को प्रणाम करे।।५७।।

रे वीर परमानन्द सानंद कुरुतेश्वर ।
आनन्दभैरवाकार देवीपर्यंक शंकर ।।५८।।
वीरोऽहंत्वां प्रपद्यामि उतिष्ठ चण्डिकार्चने ।
प्रणम्यानेनमंत्रेण क्षालयेत्तदनंतरम् ।।५९।।

मन्त्रार्थ–रे वीर हे ईश्वर! आप परम आनन्द रूप तथा आनन्द युक्त हैं। आप आनन्दभैरव के रूप में देवी के पर्यंक स्वरूप हैं। हे शंकर! मैं वीर हूँ। मेरे चण्डिकार्चन के निमित्त आप उठें। मैं आपकी शरण में हूँ। इसमन्त्र से प्रणाम कर शव का प्रक्षालन करे।।५८-५९।।

तारं शक्तिं मृतकाय नमो तं मंत्रमुच्चरेत् ।
शवस्नपनमंत्रोऽयं सर्वतन्त्रेषु देशिकः ।।६०।।

तब उसशव के प्रति तार (ॐ) शक्ति (सौः) मृतकाय नमः मंत्र का उच्चारण करे। यह विद्वानों द्वारा सभी तन्त्रों में शवस्नपन का मन्त्र कहा गया है॥६०॥

धूपेनधूपितं कृत्वा गन्धादिना प्रलिप्य च ।
रक्त तोयादि देवेश भक्षयेत् कुलसाधकः ।।६१।।
गत्वा शवस्य सान्निध्यं धारयेत्कटि देशतः ।
यद्युपद्रावेदस्य दद्यान्निष्ठीवनं शवे ।।६२।।
पुनःप्रक्षालितं कृत्वा जपस्थानं समानयेत् ।
कुलशय्यां परिष्कृत्य तत्र संस्थापयेच्छवं ।।६३।।

हे देवेश! उसशव को धूप से धूपित करे। उसपर गंधादि का लेपन करे। रक्त, तोय आदि का कुलसाधक भक्षण करे। तब वह शव के समीप जाकर उसे उसकी कमर के पास पकड़े। यदि उससमय कोई उपद्रव हो तो उस शवपर मुख में जल लेकर कुल्ला कर दे। पुनः उसका प्रक्षालन कर उसे जपस्थान पर ले आये तथा कुलशय्या का परिष्कार कर उसपर शव को स्थापित करे॥६१-६३॥

एला लवंग कर्पूर जातिखदिरचार्द्रकैः ।
ताम्बूलं तन्मुखं दत्वा शवं कुर्यादधो मुखम् ।
स्थापयित्वा तस्य पृष्ठं चंदनेन विलेपयेत् ।।६४।।
बाहुमूलादिक चतुरस्त्रं विभाव्य च ।
मध्ये पद्मं चतुर्द्वारदलाष्टकसमन्वितम् ।।६५।।

लाइची, लवंग, कपूर, जाती (जायफल), खैर, आदी, युक्त ताम्बूल उसशव के मुख में देकर उसे उलटा करके रखे और उसके पीठ पर चन्दन का लेप करे। तब उसके बाहुमूल कंधे से कटि तक चौकोर मण्डल बनाये। जो चार द्वारों से युक्त हो, जिसके मध्य में अष्टदलकमल बना हो॥६४-६५॥

ततः श्रैणेयमजिनं कम्बलान्तरितं न्यसेत् ।
द्वादशांगुलमानानि यज्ञकाष्ठानि दिक्षु च ।
संस्थाप्य पूजयेत्तत्र इंद्रादि दश देवता ।।६६।।

तत्पश्चात् उसपर मृगचर्म और कम्बल का आसन बिछाये तथा दशों दिशाओं में बारह अंगुल मान की यज्ञकाष्ठ की बनी खूँटियाँ स्थापित करके उनपर क्रमशः इन्द्रादि दस दिक्पालदेवताओं की स्थापना कर, उनका पूजन करे॥६६॥

विषमिन्द्राय संलिख्य सुराधिपतये ततः ।
इमं बलिगृह्ण द्वंद्वं गृहण पदयुगंततः ।।६७।।
विघ्ननिवारणं कृत्वा सिद्धिं प्रयच्छ ठद्वयं ।
अनेन मनुना पूर्वे बलिं दद्यात्तु सामिषम् ।।६८।।

विषमिंद्राय लिखने के पश्चात् **सुराधिपतये** तब **इमं बलि** दोबार **गृहण गृहण** दो बार **गृहण गृहण** लिखकर **विघ्ननिवारणं कृत्वा सिद्धिं प्रयच्छ** तब **ठ** द्वय (स्वाहा) लिखकर बने **विषमिन्द्राय सुराधिपतये इमं बलिं गृहण गृहण गृहण गृहण विघ्ननिवारणं कृत्वासिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा** इसमन्त्र से पूर्वदिशा में मांसयुक्तबलि इन्द्र को दे॥६७-६८॥

स्वस्वनामादिकं दत्वा पूर्ववद्बलिमाहरेत् ।
सर्वेषां लोकपालानां ततः साधक सत्तमः ।।६९।।

तब श्रेष्ठ साधक! सभी लोकपालों को उनके अपने-अपने नाम के सहित पहले की ही भाँति बलि प्रदान करे॥६९॥

शवाधिष्ठात्तृ देवेभ्यो बलिं दद्यात्सुरा सह ।
चतुःषष्टि योगिनीभ्यो डाकिनीभ्यो विनिर्दिशेत् ।।७०।।

तब शव के अधिष्ठाता देवताओं, चौंसठयोगिनियों, डाकिनियों को सुरा के सहित बलि प्रदान करे॥७०॥

पूजाद्रव्यं सन्निधौच दूरे चोत्तर साधकम् ।
संस्थाप्यासनमभ्यर्च्य स्व मंत्रान्ते तृयांततः ।
फडित्यनेन मंत्रेण तत्र शवारोहणं विशेत् ।।७१।।
कुशान्पादतले कृत्वा शवकेशान् प्रमार्ज्य च ।
दृढं निबध्य जुटिकां कृतसंकल्पसाधकः ।।७२।।
शवोपरि समारुह्य प्राणायामं विधाय च ।
वीरार्दनेन संमत्र्य दिक्षुलोष्ठान् विनिक्षिपेत् ।।७३।।

स्वयं पूजाद्रव्यों के साथ और उत्तर साधक से दूर अपना आसन लगाकर अपने मन्त्र के अन्त में **फट्** लगाने से बने मन्त्र को पढ़ता हुआ शवपर आरूढ़ होवे। अपने पैरों के नीचे कुशा डालकर शव के केशों को झाड़कर दृढ़ जटा बनाकर कृतसंकल्प साधक शव के ऊपर बैठकर प्राणायाम करे। तब वीरार्दनमन्त्र से अभिमन्त्रित कर सभी दिशाओं में लोष्ठ (मांसपिण्ड) फेंके॥७१-७३॥

ततो देवं च सम्पूज्य उपचारैः सुविस्तरैः ।
शवास्ये विधिवद् देवि देवतास्थापनं चरेत् ।।७४।।

तत्पश्चात् विस्तृत उपचारों से इष्टदेवता का पूजन करे। हे देवि! इस दृष्टि से शव के मुख में ही विधिवत् इष्टदेवता की स्थापना करनी चाहिए।।७४।।

उत्थाय सम्मुखे स्थित्वा पठेत् भक्तिपरायणः ।
ॐ वशं भव देवेश ममामुकं पदं ततः ।
सिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रय पदं वर ।।७५।।
मूलं समुच्चरन् मन्त्री शवपादद्वयं ततः ।
पट्टसूत्रेण बध्नीयात्तदोत्थानं न शक्नुयात् ।।७६।।

तब आसन से उठकर उसशव के सम्मुख हो, भक्तिपरायण हो, इस मन्त्र को पढ़े। **ॐ वशं मे भव देवेश मम अमुकं** शब्द कहकर **सिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रय** पद कहने के बाद मूलमन्त्र पढ़ता हुआ साधक शव के दोनों पैरों को रेशमी धागे से बाँधे। तब वह उठ नहीं सकेगा।

***मन्त्र*—वशं मे भव देवेश ममामुकं सिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रय।**

तत्पश्चात् मूलमन्त्र पढ़े।

मन्त्रार्थ—हे इस शव में स्थापित महाभाग देवेश! आप मेरे वश में होइये। तथा मुझे अमुक सिद्धि दीजिये। यहाँ अमुक के स्थान पर सिद्धि का नामोल्लेख करना चाहिए।।७५-७६।।

ॐ भीमभव्यभयाभाव भव्यलोचनभावुक ।
त्राहि मां देवदेवेश शवनामाधिपाधिप ।
इति पादतले तस्य त्रिकोणं चक्रमालिखेत् ।।७७।।

ॐ भीम.....पाधिप। मन्त्र को पढ़कर शव के पादतल में त्रिकोण चक्र लिखे।

मन्त्रार्थ—हे शव नाम अधिपों के स्वामी देवदेवेश! आप भयानक नेत्रों वाले होते हुए उनमें भय के अभाव के कारण भव्य नेत्रों वाले हो गये हैं। आप भावुक हैं। आप मेरी रक्षा करें।।७७।।

तदोत्थानं न शक्नोति शवोऽपि निश्चलो भवेत् ।
उपविश्य पुनस्तस्य बाहुनिस्सार्य पार्श्वयोः ।
कुशमास्तीर्य पादौ तत्र निधापयेत् ।।७८।।

तब वह उठ नहीं सकता और शव निश्चल हो जाता है। ऐसा करके पुनः उसपर बैठ कर उसकी भुजाओं को दोनोंओर फैलाकर उसपर कुश बिछाकर अपने दोनों पैरों को उसपर रखे।।७८।।

ओष्ठौ च संपुटीकृत्वा स्थिरचित्तं स्थिरेन्द्रियः ।
सदा देवीं हृदि ध्यात्वा मौनी जपं समाचरेत् ।।७९।।

तत्पश्चात् साधक अपने ओठों को बन्दकर, चित्त और इन्द्रियाँ दोनों को ही स्थिर रखते हुए देवी का हृदय में ध्यान करके, मौन होकर, सदैव जप करे॥७९॥

श्मशानोक्त संख्याभिर्जपं कुर्यात् कुलेश्वरि ।
अथवारम्भकालात्तु यावत्तु उदयावधि ॥८०॥

हे कुलेश्वरि! श्मशानसाधना हेतु निर्दिष्ट संख्या में अथवा आरम्भ-काल से सूर्योदयपर्यन्त, साधक को पूर्वोक्त रीति से जप करना चाहिए॥८०॥

यद्यर्धरात्रिपर्यन्तं जपेत्किंचिन्नलक्ष्यते ।
तदापूर्ववदभ्यर्चेत्सप्तपाद गतानि च ।
कृत्वोपविश्य तत्रैव जपकुर्यादनन्यधीः ॥८१॥

यदि आधीरात तक जप करने पर भी कुछ न दिखाई दे तो वहाँ से सात कदम दूर जाकर वहीं बैठ कर पहले की भाँति पूजन कर साधक अनन्यधी, एकाग्रबुद्धि से वहीं जप करे॥८१॥

चलासनाद्भयं नास्ति भये जाते वदेत्ततः ।
यत्प्रार्थयसि देवेश दातव्यं कुंजरादिकम् ।
दिनांतरे प्रदास्यामि स्वनाम कथयस्व मे ॥८२॥

इसमें आसन के विचलित होने का भय नहीं रहता। यदि भय उपस्थित हो तो साधक यह मन्त्र कहे—

यत्प्रार्थयासि......कथयस्व मे।

मन्त्रार्थ—हे देवेश! आप अपना नाम मुझे बताइये। आपको जिस कुंजरादि की आवश्यकता है, वह मैं अगले दिन प्रदान करूँगा॥८२॥

इत्युक्ते संस्कृते नैव निर्भयस्तु पुनर्जपेत् ॥८३॥

ऐसा कहकर संस्कारित हो, निर्भय हो पुनः जप आरम्भ करे॥८३॥

पुनश्चेन्न मधुरं वक्ति वक्तव्यं मधुरंततः ।
तदा सत्यवरं कार्यं वरंच प्रार्थयेत्ततः ॥८४॥

पुनः यदि वह मधुर नहीं बोलता तो पुनः उससे निवेदन करे। तब उससे प्रार्थना कीजिये कि वह सत्य वर प्रदान करे॥८४॥

यदि सत्यं न कुर्याच्च वरं वा न प्रयच्छति ।
तदा पुनर्जपेद्धीमानेकाग्र मानसं जपन् ॥८५॥
नररूपं विना तत्र देवोपि नोपसर्पति ।
यत्नस्तेन बोद्धव्यं नरो वा देवयोनयः ॥८६॥

यदि वह सत्य (वादा) न करे और न वर ही प्रदान करे तो बुद्धिमान साधक एकाग्रमन से पुनः जप करे। वहाँ मनुष्यरूप के विना देव भी नहीं आ सकते। इसलिए शवसाधना के समय देवता है या मनुष्य उसे यह प्रयत्नपूर्वक पहचानना चाहिए।।८५-८६।।

मातावातत्सुता वापि मातुलानी तथापि वा ।
आगत्यविघ्नं चरते माययाच्छाद्य विग्रहं ।।८७।।

अपने को माया से छिपाये, माता या उसकी पुत्री, बहन, मामी किसी रूप में आकर वह विघ्न उपस्थित कर सकता है।।८७।।

उत्तिष्ठ वत्स ते कार्यं सर्वंजातं न संशयः ।
प्रभात समयो जातं त्वत्पिता क्रोशते गृहे ।।८८।।

वह उपस्थित हो कहे। हे वत्स! उठो तुम्हारा सब काम पूरा हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं है। अब प्रातःकाल हो गया है। तुम्हारे पिता घर पर क्रोधित हो रहे हैं।।८८।।

प्रायशो मत्सरा लोको राजानो दंडधारिणः ।
कदाचित्केनचिदृष्टस्तदा किं ते करिष्यति ।
इत्यादिर्विविधैः वाक्यै न च जाप्यं परित्यजेत् ।।८९।।

प्रायः संसार में राजा लोग जो दण्ड धारण करने वाले हैं। वे लोगों से ईर्ष्या करने वाले होते हैं। यदि कभी कोई देख लेगा तब तुम क्या करोगे। इत्यादि अनेक प्रकार के वाक्यों के सुनने से भी जप नहीं छोड़ना चाहिए।।८९।।

मृतपितृगणास्तत्र दूरदेशनिवासिनः ।
बांधवाश्च समायांति देवरूपधरास्ततः ।।९०।।

मरे हुए पितर, दूर देश के रहने वाले बन्धु-बान्धव वहाँ देवरूप धारण करके आते हैं।।९०।।

स्त्री पुत्र देवताद्यैश्च गृहीत्वानीयते परैः ।
रुदान्ति पुत्रकाः सर्वे भ्रातरोऽनुज शिष्यकाः ।।९१।।
निजकांतांगसंस्पृश्य वस्त्रमाभरणादिकम् ।
गृहीत्वानीयते यन्निपालकैस्तद्भयंत्यजेत् ।।९२।।

वहाँ पर स्त्री, पुत्र, देवता आदि अन्यों द्वारा पकड़ कर लाये जाते हैं। रोते, विलाप करते सभी पुत्र, भाई, छोटे भाई, शिष्य आदि दिखाई देते हैं। अपनी पत्नी के अंग और वस्त्राभूषणादि को पकड़ कर लाने और

पटकने के दृश्य दिखाई देते हैं। साधक उपर्युक्त दृश्यों को देखकर भी भयभीत न हो॥९१-९२॥

यदि न क्षुभ्यते तत्र तदा किंवा नलभ्यते ।
स्त्रीरूपधारिणी देवी द्विजरूपधरः पुमान् ।।९३।।
वरं गृह्णेति शब्दं वै त्रिवारान्तेफलं लभते् ।।९४।।

उपर्युक्त दृश्यों को देखकर यदि साधक क्षुब्ध न हो तो वह क्या नहीं प्राप्त कर सकता, अर्थात् सब कुछ प्राप्त कर सकता है। देवी स्त्रीरूप धारण करके एवं देवता ब्राह्मण का रूप धारण करके वहाँ उपस्थित हों और यदि तीनबार कहें कि तुम वर ग्रहण करो तो उससे वर प्राप्त करना चाहिए॥९३-९४॥

साधुनासाधुना वापि योषिच्चेद्वरदायिनी ।
तदा वीरपतेस्तस्य किं भूतेन च सिद्धयति ।।९५।।
निष्पापः पुरुषश्चैव कुले चैव सुसंस्कृताः ।
असंस्कृतातरा देवि पापयुक्तेन संशयः ।।९६।।
सन्मुखेऽसन्मुखे वापि संस्कृतं वक्ति चापरं ।
सैव देवी न संदेहः स देवो भैरवं स्वयं ।।९७।।

हे देवि! वर देने वाली स्त्री साधु या असाधु है तथा उसके साथ का पुरुष कैसा है? यह निर्णय कैसे होगा? पापरहित पुरुष, संस्कारित हो क्योंकि असंस्कारित स्त्री तथा पुरुष पापयुक्त होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। संस्कारित पुरुष या स्त्री यदि सन्मुख प्रत्यक्ष या असन्मुख (अप्रत्यक्ष) हो, परस्पर संस्कृत में वार्तालाप करें तो वर देने वाली स्त्री को देवी जानना चाहिए तथा पुरुषवेशधारी स्वयं भैरव हैं, ऐसा मानना चाहिए, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥९५-९७॥

न चेद्देवं भवेच्चैव मायापुटितविग्रहाः ।
न वरयेद्वरं तत्र न किंचित् प्रवदेत् क्वचित् ।।९८।।
संस्कृतं तु समाख्याति वक्ति वक्तव्यमीदृशम् ।
न चेदस्वयं लौकिकोक्त्या वरं ग्राह्यं निराकुलम् ।।९९।।

यदि ऐसा न हो तो उसे भी माया से शरीरधारी कोई विघ्न ही समझे, उससे न तो किसीप्रकार का वर मांगे और कहीं, कुछ भी न बोले। यदि वह ग्राम्यवचनों को बोलते हों और संस्कृत में ही वार्तालाप करते हों तो उनसे निर्भय होकर वरग्रहण करना चाहिए॥९८-९९॥

अथवा उक्तंकिचिल्लभ्यतेप्यात्मनो हितम् ।
शब्दो वा जायते सम्यक्ऽमृतं वापि च लभ्यते ।।१००।।

अथवा अपने हित की बात यदि सामने दिखाई दे अथवा हितकर शब्द सुनाई दे।।१००।।

संविचार्य गृह्णीयादेवं दिव्यपरिकीर्त्तितः ।
देवोक्तं तयो बहुधा भैरवो वक्तातिबुद्धयः ।
अवश्यं तत्रभेतव्यं न तत्र प्रत्ययं क्वचित् ।।१०१।।

इसलिए भलीभाँति विचार करके देवोक्त वचनों को ग्रहण करे। बहुधा देवताओं के नाम पर भैरव ही समझे। उनसे डरकर अवश्य सतर्कता रखनी चाहिए। उनका कभी विश्वास न करे।।१०१।।

भैरवो बटुकाश्चैव कुलशास्त्रपरायणाः ।
एतच्छास्त्र प्रसंगेन हृद्या कुटिलविग्रहाः ।।१०२।।
पुत्रो भूत्वा हरेद्विद्यां नारी भूत्वा विमोहयेत् ।
तस्मात्तत्वपरोवीरो विचारे भयमाचरेत् ।।१०३।।

भैरव, बटुक, कुलशास्त्रवेत्तासाधक, शास्त्र के प्रसंगों से इन के कुटिल विग्रहों (बाधक तत्त्वों) के अन्तर को जाने। कुलशास्त्रपरायण साधकों से साधकपुत्र बनकर विद्याग्रहण तथा नारी बनकर मोहित करते हैं। इसलिए तत्त्ववेत्ता वीरसाधक को विचार में सदैव भय का आचरण (सतर्कतापूर्णव्यवहार) करना चाहिए।।१०२-१०३।।

सत्योक्तं ते वरं लब्ध्वा सत्यजेच्च जपादिकं ।
फलं जातमिति ज्ञात्वा जुटिकां मोचयेत्ततः ।।१०४।।

वचन के बाद वर प्राप्त कर साधक, साधना का फल पूर्ण हो गया ऐसा मानकर जपादिक क्रियाओं को छोड़ दे और शव की जुटिका को खोल दे।।१०४।।

शवं प्रक्षाल्य संस्थाप्य मोचयेद्बन्धनं पदे ।
पदचक्रं मार्जयित्वा पूजाद्रव्यं जले क्षिपेत् ।।१०५।।
एवं जलेऽथगतेर्वा निक्षिप्य स्नानमाचरेत् ।
ततस्तु स्वगृहं गत्वा बलिं दत्त्वा दिनांतरे ।।१०६।।

शव को धोकर उसे पुनः स्थापित करे और उसके दोनों पैरों के बन्धनों को खोल दे तत्पश्चात् पैरों एवं चक्र दोनों का ही मार्जन करे एवं पूजाद्रव्यों को जल में विसर्जित कर दे। इसप्रकार से पूजाद्रव्य को जल

में अथवा गड्ढे में विसर्जित करने के पश्चात् साधक स्नान करे। तब वह अपने घर जाकर दूसरे दिन बलि प्रदान करे॥१०५-१०६॥

अग्रिम रात्रौ—अगली रात्रि में।

येषां यजमानोऽहं ते गृहणंत्तु मयादत्तं बलित्विमं ।
अथयैर्याचितश्वाश्वनरकुंजरशूकरान् ।
दद्यात्पिष्टमपीतेन कर्त्तव्यं समुपोषणं ।।१०७।।

जिनका मैं यजमान (संरक्षक) हूँ वे शक्तियाँ मेरे द्वारा दी गई इस बलि को ग्रहण करें। तब जिन शक्तियों द्वारा कुत्ता, घोड़ा, मनुष्य, हाथी या शूकर की याचना की गई हो उन्हें वे सब (श्वेत) आटे से बनाकर दे और स्वयं साधक उपवास करे॥१०७॥

तत्रांतरेऽपि—अन्य तन्त्रों में भी कहा है।

यवक्षोदमयं वाऽपि शालिक्षोदमयं च वा ।
चन्द्रहासे न विधिवत्ततन्मन्त्रेण घातयेत् ।।१०८।।

जौ के आटे से या चावल के आटे से बने पशु का तत्सम्बन्धी मन्त्रों को पढ़ता हुआ चन्द्रहास नामक खड्ग से वध करे॥१०८॥

परेह्नि नित्यमाचर्य पंचगव्यं पिबेत्ततः ।
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पंचविंशति साग्निकान् ।।१०९।।
पंचपंचविहीनां वा क्रमाच्चैव यथाविधिः ।
ततः स्नात्वा च भुक्त्वाच्च निवसेदुत्तमे स्थले ।।११०।।

दूसरे दिन नित्यकर्म (नित्यार्चन) सम्पन्न कर पंचगव्य का पान करना चाहिए। तदनन्तर पच्चीस की संख्या में साग्निक अर्थात् अग्निहोत्री ब्राह्मणों को भोजन कराये या पंचतत्त्वों से हीन ब्राह्मणों को विधिपूर्वक भोजन कराना चाहिए। तब स्नान करके भोजन करे, तत्पश्चात् उत्तम स्थान में निवास करे॥१०९-११०॥

यदिनस्याद्विप्रभोज्यं तदा निर्धनतां व्रजेत् ।
तेन चेन्निर्धनत्वं स्यात्तदा देवं प्रकुप्यति ।।१११।।

यदि साधक पूर्वोक्त साधना के पश्चात् ब्राह्मण भोजन न कराये तो वह निर्धनता को प्राप्त होता है। इसलिए यदि साधक में निर्धनत्व हो तो उससमय देवता कुपित हो जाते हैं॥१११॥

त्रिरात्रं वाऽथ षट्रात्रं गोपयेत्कुलसाधनम् ।
संध्यायां यदि गच्छेद्वै तदा व्याधिर्विनिर्दिशेत् ।।११२।।

इस कुलसाधना को तीन या छः रात्रि तक गुप्त रखना चाहिए। अर्थात् महानिशा में आचरण करना चाहिए। यदि साधक सन्ध्यावेला में ही प्रारम्भ करे तो व्याधि का निर्देश करे॥११२॥

गीतं श्रुत्वा तु वधिरो निश्चक्षुः नृत्यदर्शनात् ।
यदि वक्ति दिने वाक्यं तदा समूकतां व्रजेत् ।।११३।।

जैसे जब गान सुनाई दे तो बहरे की भाँति, नृत्य देखने के समय चक्षुहीन अन्धे की भाँति, यदि दिन में वाक्य बोलने का अवसर उपस्थित हो तो साधक मूकता का प्रदर्शन करे॥११३॥

पंचदश दिनांता हि देहे देवस्य संस्थितिः ।
गो ब्राह्मणस्य देवानां निंदा कुर्यान्न चक्वचित् ।।११४।।
देवगोब्राह्मणादींश्च प्रत्यहं संस्पृशं शुचिः ।
प्रातः नित्य क्रियांते तु बिल्वपत्रोदकं पिबेत् ।।११५।।

क्योंकि इसप्रकार की साधना पन्द्रह दिनों तक होने के पश्चात् ही साधक के शरीर में देव की स्थिति बनती है। गौ, ब्राह्मण और देवताओं की साधक, कहीं भी निन्दा न करे। वह गौ, ब्राह्मण, देवताओं के प्रतिदिन के स्पर्श से पवित्र हो अर्थात् नित्य इनकी सेवा में तत्पर रहे। वह नित्य प्रात: क्रिया के पश्चात् बिल्वपत्रयुक्त जल अथवा बिल्वपत्र के रस का पान करे॥११४-११५॥

ततस्नायात्तु तीर्थादौ प्राप्ते षोडशवासरे ।
स्वाहान्तं मूल मुच्चार्य तर्पणांतं नमः पदम् ।
एवं शतत्रयादूर्ध्वं देवतां तर्पयेज्जलैः ।।११६।।

पन्द्रह दिनों तक उपर्युक्त रीति से साधना सम्पन्न कर सोलहवें दिन साधक तीर्थादि को प्राप्तकर स्नान करे एवं मूलमन्त्र पढ़कर, **तर्पणं नमः स्वाहा** कहकर देवता का जल से ३०० बार तर्पण करे॥११६॥

स्नानतर्पणशून्यस्य न स्याद्देवस्य तृप्तिरित्यर्थ–तात्पर्य यह कि स्नान और तर्पण से रहित साधक से देवता की तृप्ति (संतुष्टि) भी नहीं होती।

इत्यनेन विधानेन सिद्धिं प्राप्नोति निश्चितम् ।
भुंक्ते इहैव वरान् भोगानंते याति हरेः पदम् ।।११७।।

इस विधि से साधना कर साधक निश्चितरूप से सिद्धि को प्राप्त करता है तथा इसी लोक में श्रेष्ठ भोगों को भोग कर अन्त होने पर वह हरि के लोक (इष्टदेवसम्बन्धी) परमधाम को प्राप्त करता है॥११७॥

असांगं सांगमे वापि निष्फलं सफलं च वा ।
कृत्वा साधनमेवैतत्छक्तेः प्रियतरो भवेत् ।।११८।।
शवाभावे श्मशाने वा कार्या वीरस्य साधना ।।११९।।

अंगहीन या सांगोपांग, निष्फल और सफल पूर्वोक्त साधना करने के पश्चात् ही साधक शक्ति का प्रियतर होता है। अंगहीन साधना निष्फल और सांगोपांग साधना सफल होती है। यदि उपर्युक्त साधना में शव सुलभ न हो तो उसके अभाव में श्मशान में उपस्थित हो, वीरसाधन की क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए।।११८-११९।।

यो भावो यस्य वै प्रोक्तस्तै भावैर्यदि नार्चयेत् ।
दशाहक्रम योगेन भ्रष्टो भवति साधकः ।।१२०।।

जो भाव जिसका बताया गया है यदि उस भाव से उसकी अर्चना न की जाय तो दस दिन में साधक क्रमभ्रष्ट हो जाता है और उसकी साधना निष्फल हो जाती है।।१२०।।

नोपदिशेद्वीरं भावं न पूजां तत्र संदिशेत् ।
कुलान्मंत्रं गृहीत्वातु यावत्शुद्धिः प्रजायते ।।१२१।।

अतः भावरहित साधक को वीरभाव की साधना का उपदेश न करे। उसे पूजा का भी निर्देशन (साधन) नहीं करना चाहिए।

कुलमन्त्र (कौलोपासना के मन्त्र) ग्रहणमात्र से ही सम्पूर्ण शुद्धि हो जाती है।।१२१।।

अथ पद्धतिः—पद्धति प्रारम्भ।

आदौ मूलमन्त्रेण घटीबंधने वस्त्रं परिधाय हृदि देविं, मूर्ध्नि गुरून्नत्वा यथोक्त रक्षकैः सार्धं अभुक्ताभुक्त भोज्यो वा विहित दिने यथासंभवं बलिं पूजोपचारादिकं गृहीत्वा हृदि मंत्रं ध्यायन् निशि प्रहरान्ते यात्रां कृत्वा प्रक्षालित चितास्थानं गत्वा प्रक्षालन प्रक्षेप अस्थिसंचयं कृत्वा।

साधक सर्वप्रथम मूलमंत्र से घटीबन्धन करके वस्त्र धारण कर, हृदय में इष्टदेवता तथा मस्तक पर गुरु को प्रणाम कर, उचित रक्षकों को साथ ले बिना भोजन किया या भोज्य पदार्थों का भोजन कर, निर्धारित दिन, यथासंभव बलि और पूजा आदि की सामग्री लेकर, हृदय में मन्त्र का ध्यान करता हुआ, एक प्रहर रात्रि बीतने पर यात्राकर, पहले से स्वच्छ किये हुए चितास्थल (श्मशान भूमि) पर जाये। वहाँ जाकर वह चितास्थल का प्रक्षालन और इतस्ततः बिखरी अस्थियों का संचय करे।

तद्यथा–जैसा कि कहा है।

अस्त्राय फडिति मूल मन्त्रेण यागस्थानं संशोध्य गुरुगणेश बटुकयोगिनीं नमस्कृत्य वामपाद पुरस्सरं–

ये चात्र संस्थितादेवाराक्षसाश्च भयानकाः ।
पिशाचा यक्ष सिद्धाश्च गन्धर्वाप्सरसांगणः ।।
योगिन्योमातरो भूता सर्वाश्च खेचरस्त्रियः ।
सिद्धिदास्ता भवंत्वत्र तथा च मम रक्षकाः ।।

इति मन्त्रत्रयं पठन्नमस्कृत्य पुष्पांजलित्रयं निक्षिपेत्।

अस्त्राय फट् इस मूलमन्त्र से यागस्थान (साधना भूमि) का संशोधन करे तब वहाँ अपने दीक्षागुरु (गुरु, परमगुरु, परमेष्ठीगुरु आदि), गणेश, बटुक तथा योगिनियों को नमस्कार करे। बायें पैर को आगे बढ़ाते हुए–

ये चात्र..........मम रक्षकाः इन तीनमन्त्रों को पढ़ता हुआ नमस्कार पूर्वक पुष्पांजलि समर्पित करे।

मन्त्रार्थ–जो भी यहाँ पर (इस साधनाभूमि में) पहले से उपस्थित भयानक देवता, राक्षस, पिशाच, यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराओं के समूह, योगिनियाँ या मातृकाओं के रूप में स्थित अन्य आकाशचारी स्त्रियाँ हैं वे सभी तत्त्व मेरे लिए सिद्धि देने वाले हों तथा यहाँ मेरी रक्षा करने वाले हों।

ततः सप्तपात्रे बलिं कृत्वा चतुर्दिक्षुः चतुः पात्राणि चितामध्ये पात्रत्रयं स्थाप्य–तब सातपात्रों में बलि रखकर चारों दिशाओं में चारपात्र और चिता के मध्य में तीनपात्र स्थापित करे।

पूर्वदिशिः ॐ हूँ श्मशानाधिप इमं अत्र सामिषान्नं बलिं गृह्ण गृह्ण, गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहेति मंत्रेण पाद्यादिभिः सम्पूज्य।

तब पूर्वदिशा में **ॐ हूँ श्मशानाधिप......स्वाहा** इसमन्त्र से पाद्यादि द्वारा पूजन करे।

मन्त्रार्थ–ॐ हूँ हे श्मशान के स्वामि! आप स्वयं इस आमिषान्न बलि को ग्रहण करें तथा अन्य उत्सुक दिशा तत्त्वों को ग्रहण करायें, मेरे विघ्नों को दूर करें तथा मुझे साधना में सिद्धि प्रदान करें, यह आपको समर्पित है।

दक्षिणां दिशि भैरवं भयानकं पाद्यादिभिः सम्पूज्य–ॐ ह्रीं भैरव भयानक इमं अत्र सामिषान्नं बलिमित्यादिमन्त्रेणबलिं दत्वा पश्चिमदिशि महाकालं पाद्यादिभिः सम्पूज्य ॐ हूँ कालभैरव श्मशानाधिप इममित्यादि पूर्वं बलि दत्वा उत्तरदिशि महाकाल भैरवं पाद्यादिभिः सम्पूज्य ॐ महाकालभैरव श्मशानाधिप इममित्यादि मंत्रेण बलिं दत्वा।

तब दक्षिणदिशा में भयानक भैरव की पाद्यादि से **ॐ ह्रीं भैरव भयानक** कहते हुए **इमं आमिषान्नबलिं** आदि पूर्वकथित मंत्र से उन्हें बलि प्रदान करे। इसीप्रकार पश्चिमदिशा में महाकाल की पाद्यादि से पूजन कर **ॐ हूँ कालभैरवश्मशानाधिप इमं** आदि पूर्वमन्त्रांश सहित कहे, मन्त्र से बलिप्रदान कर उत्तरदिशा में जाये तथा वहाँ पाद्यादि से महाकाल का पूजन कर **ॐ महाकालभैरव श्मशानाधिप इमं**—आदि मन्त्र से बलिदान करे।

इसप्रकार चारों दिशाओं में पूजनपूर्वक बलिदान प्रदान कर, साधक **चितामध्ये प्रथमं श्मशानकालिकां पाद्यादिना सम्पूज्य।** चितामध्य में पहले बलिपात्र पर श्मशानकालिका का पाद्यादि से पूजन करे।

ॐ कालरात्रि महाकाली कालिके घोर निःस्वने ।
गृहाणेमं बलिंमातर्देहिसिद्धिमनुत्तमाम् ।
ऊँ हूँ कालिकायै स्वाहेतिमन्त्रेण बलिं दत्वा ।।

तब **ॐ कालरात्रि....स्वाहा।** इसमन्त्र से बलि प्रदान करे।

मन्त्रार्थ– हे कालरात्रि! महाकालि, हे कालिके, हे भयानक गर्जन करने वाली माता आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस बलि को ग्रहण करें तथा मुझे उत्तम सिद्धि प्रदान करें। यह कालिका देवी को समर्पित है।

भूतनाथं पाद्यादिभिः सम्पूज्य ॐ भूतनाथाय श्मशानाधिप इमामित्यादिं मंत्रेण बलिं दत्वा सर्वगणनाथं पाद्यादिभि सम्पूज्य। ॐ हूँ सर्वगणनाथं स्थानाधिप इममित्यादि मन्त्रेण बलिं दत्वा चिता पश्चिम भागे कियदास्थि एकत्रं कृत्वा।

तब द्वितीयपात्र पर भूतनाथ का पाद्यादि से पूजन कर **ॐ भूतनाथ स्थानाधिप इमम्..........**आदि चारोंदिशाओं में दिये गये बलि मन्त्रों के अंश को पढ़ता हुआ बलि प्रदान करे।।

इसीप्रकार तीसरे पात्रपर भी सर्वगणनाथ का पाद्यादि से पूजन कर **ॐ हूँ सर्वगणनाथाय स्थानाधिप इमम्........**आदि मन्त्र से उन्हें बलि प्रदान करे।

इसप्रकार पूर्वोक्त सातबलि देने के पश्चात् पश्चिमदिशा में अस्थियों को एकत्र करे।

ॐ ह्रीं आधारशक्तये नमः इति मन्त्रेण पंचगव्यप्रोक्षणं कृत्वा भूर्जपत्रे वटपत्रे वा ह्सौ इति पीठमन्त्रं लिखित्वा तत्र धृत्वा तदुपरि कम्बलाद्यासनमास्तीर्य।

तब **ॐ ह्रीं आधारशक्तये नमः** इसमन्त्र से पंचगव्य द्वारा वहाँ प्रोक्षण करके भोजपत्र या वट के पत्ते पर **हसौ** इस पीठमन्त्र को लिख कर उसे उस प्रोक्षण किये हुए स्थान पर रखकर उसके ऊपर कम्बल आदि का आसन बिछाये।

ॐ आधारशक्तये नमः इति सम्पूज्य तत्र वीराद्यासनेनोपविश्य। तत्पश्चात् **ॐ आधारशक्तये नमः** इसमन्त्र से पूजन कर उसपर वीरासन आदि गुरुपदिष्टआसन में बैठे।

ॐ हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्ड चण्डनायिके दानवान् दारय हन् हन् परवीरं महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हूँ फट् इति वीरार्दन मन्त्रेण लोष्ठानि संमत्र्य चतुर्दिक्षुनिक्षिपेत्।

ॐ हूँ हूँ.......फट् इस वीरार्दनमन्त्र से अभिमन्त्रित कर लोष्ठों (मिट्टी के ढेलों) को चारों दिशाओं में फेंके।

मन्त्रार्थ—हे घोरदाढ़ों वाली कालिके, आप प्रचण्डस्वभाव वाली चण्डनायिका हैं, आप दानवों का दलन करें, उन्हें भगाएँ, शत्रुपक्षीय वीरों तथा महाविघ्नों को काटें।

अर्केन्दुसित वारात् तूलनिर्मित वर्त्तिकां निर्माय अस्त्राय फडिति मंत्रेण लोहाद्यघोरेण निखन्यतदुपरि रक्षार्थ दीपं प्रज्वालय अस्त्राय फडिति मंत्रेण सम्पूज्य स्वकल्पोक्तविधिनाभूतशुद्धिं षोढांतंविधाय यथा संभव देवीं सम्पूज्य यथोक्त संख्यया आरम्भावधि उदयपर्यंतं वा जपेदिति।

रवि, सोम या शुक्रवार को कति रुई से बनी बत्ती बनाकर **अस्त्रायफट्** इसमन्त्र से तीखे लोहे आदि से खोदकर उसके ऊपर रक्षादीप को जलाकर अस्त्रायफट् इसमन्त्र से पूजन करे। तत्पश्चात् अपने कल्प (पूजा विधान) में वर्णित विधि के अनुसार भूतशुद्धि से षोढान्यास तक सम्पन्न करे और देवी का यथासंभव पूजनकर, यथोक्तसंख्या में आरम्भ से नित्यक्रम में या जप आरम्भ की अवधि से लेकर सूर्योदयपर्यन्त जितना हो जाये, उतना जप करे।

संख्यापूर्त्तिपर्यन्तं अर्धरात्रिपर्यन्त जप्ते यदि किंचिन्नोपलभ्यते तदा ॐ दुर्गे दुर्गेरक्षिणि स्वाहेति मंत्रेण जयदुर्गाख्येन देवीमर्घ्यं दत्त्वा।

ॐ तिलोसि सोमदैवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः ।
पितृणां स्वर्गदातात्वं मर्त्यानामभयक्षमः ।
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शांतिकारकः ।।

इति मन्त्रेण चतुर्दिक्षु तिलान् विकीर्य ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहेति मंत्रेण सर्षपान् चतुर्दिक्षु विकीर्य।

संख्यापूर्ति अथवा अर्धरात्रिपर्यन्त जप करने के पश्चात् यदि कोई उपलब्धि न हो तो **ॐ दुर्गे..........स्वाहा**। इस जयदुर्गा नामक मन्त्र से देवी को अर्घ्य प्रदान करे। तब **तिलोसि....शान्तिकारका:** इसमन्त्र से चारों दिशाओं में तिल फेंके और **ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा** इसमन्त्र से चारों दिशाओं में सरसों विकिरित करे।

मन्त्रार्थ–हे तिल! तुम सोमदेवता से मान्य हो, इन्द्रियों को तृप्त करने वाले जल तुम्हीं हो, तुम पितरों को स्वर्ग प्रदान करने वाले हो तथा मरणशील प्राणियों को अभय प्रदान करने वाले हो। तुम भूत-प्रेत-पिशाचादि से उत्पन्न विघ्नों में शान्ति प्रदान करने वाले हो।

सप्तपदान् गत्वा पुनस्तत्रोपविश्य देवीं संपूज्य निर्भयः सन् जपेदिति वीर साधन पद्धतिः समाप्त।

तत्पश्चात् सातकदम आगे जाकर पुनः वहाँ बैठकर देवी का पूजन कर निर्भय होकर जप करे।

इसप्रकार से वीरसाधन की पद्धति पूर्ण हुई।

अथ शवसाधन पद्धति रुच्यते–शवसाधन की विधि कही जाती है।

घटीत्यादि पूर्वोक्त रेखात्र्यं विधाय क्रमेण बल्यर्थं छागादिकं-पूजोपकरणादिकं चादाय आत्मरक्षकैः सार्धं प्रहराद्यन्तरे स्थानतत्वोक्तस्थानेषु अन्यतम स्थानं गत्वा किंचित् स्थानं परिष्कृत्य सामान्यार्घ्यं विधाय पूर्वोक्त मुखोभूत्वा मूलमंत्रं फडिति चोच्चार्य तत्स्थानं सम्प्रोक्ष्य गुरुगणेश-बटुकयोगिनीन्नमस्कृत्य पूर्वोक्त वीरार्दनमन्त्रं भूमौ लिखित्वा।

कर्त्ता तीन आदि पूर्वोक्त घटी रेखाओं को खींचकर क्रम से बलि हेतु छाग आदि सब पूजा उपकरणों को लेकर अपने रक्षकों सहित रात्रि के प्रथम प्रहर में पूजास्थान या तत्वोक्तशास्त्रों में वर्णित साधनास्थानों में श्मशान जैसे श्रेष्ठ स्थान पर जाकर वहाँ कुछ भूमि का प्रोक्षण करे। सामान्यअर्घ्य देकर

पहले कही दिशा में मुँहकर मूलमन्त्र और **फट्** का उच्चारण कर उसका सम्प्रोक्षण करे, तत्पश्चात् गुरु, गणेश, बटुक योगिनियों आदि को नमस्कार कर, पूर्वोक्त वीरार्दनमन्त्र वहाँ साधक लिखे।

ये चात्रेत्यादिमन्त्रेण पुष्पांजलिंत्रयं भूमौक्षिप्त्वा नमस्कृत्य सप्तपात्रे बलिं कृत्वा चतुःपात्रे चतुर्दिक्षो पात्रत्रयं मध्ये संस्थाप्य पूर्वोक्तक्रमेण पाद्यादिभिः सम्पूज्य पूर्वोक्त मन्त्रैः श्मशानाधिपतिभ्यो बलिं निवेद्य।

तब **ये चात्र.........**आदि मन्त्रों से तीन पुष्पांजलियाँ पृथ्वी पर देकर वह नमस्कार करे तथा सप्तपात्रों में बलि रखकर, उसमें से चार-पात्रों को चार-दिशाओं में तथा तीन को मध्य में रखकर, पहले बताये गये क्रम से पाद्य आदि का पूजन करे, तत्पश्चात् पूर्वकथित मन्त्रों से श्मशानाधिपतियों को क्रमशः बलि प्रदान करे।

अघोरमंत्रेण शिखांबध्वा सुदर्शनमन्त्रेण आत्मानं रक्षेति सहितेन स्व स्व कल्पोक्तेन भूतशुध्यादि निष्पाद्य।

पुनः अघोरमन्त्र से शिखाबंधन कर सुदर्शनमन्त्र से अपनी रक्षा के सहित अपने-अपने कल्प (पद्धति) के अनुरूप भूतशुद्धि आदि कार्य सम्पन्न करे।

ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहेति मन्त्रेण सर्षपान् तत्र विकीर्य तिलोसीत्यादि मन्त्रेग तिलान्निक्षिप्य विहित शवसमीपे गत्वा।

ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणी स्वाहा इसमन्त्र से वहाँ सरसों के दाने बिखेर कर तिलोसि आदि मन्त्रों से तिल छींटकर शवसाधन हेतु निश्चित किये शव के समीप जाना चाहिए।

ॐ अस्त्राय फडिति मन्त्रेण शवं प्रोक्षय ॐ हूँ मृतकाय नमः इति मन्त्रेण शवोपरि पुष्पांजलित्रयं दत्वा।

ॐ अस्त्राय फट् इसमन्त्र से शव का प्रोक्षणकर, **ॐ हूँ मृतकाय नमः** इसमन्त्र से शव के ऊपर तीन पुष्पांजलियाँ अर्पित करे।

रे वीर परमानंद शवानंद कुलेश्वर ।
आनन्दभैरवाकार देवीपर्यंक शंकर ।
वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने।।

इत्यनेन मन्त्रेण स्पर्शपूर्वकं नमस्कृत्यम्।

रे वीर..........अर्चने। इसमन्त्र से शव को स्पर्श करता हुआ नमस्कार करे।

मन्त्रार्थ– हे वीरों को परमानंद देने वाले, हे शवरूप आनंद! आप कुलेश्वर हैं। आनंदभैरव के स्वरूप हैं, देवी के पर्यंक हैं, शंकर (साधकों का कल्याण करने वाले) हैं। मैं वीर साधक हूँ, आपकी शरण में चण्डिका के अर्चन हेतु आया हूँ। आप उठें।

ॐ मृतकाय नमः इति मन्त्रेण सुगन्धिजलेन स्नाप्य अस्त्रेण संप्रोक्ष्य धूपेन धूपयित्वा कटिदेशं धृत्वा अन्तिम कुशशय्यां परिष्कृत्य तदुपरि संस्थाप्य एलालवंगादियुक्तं तांबूले तन्मुखे दत्वा शवमधोमुखं कृत्वा तत्पृष्ठे चंदनं विलिप्य।

तब साधक **ॐ मृतकाय नमः** इसमन्त्र को पढ़ता हुआ सुगन्धित जल से उस शव को स्नान कराये, अस्त्र-मन्त्र से प्रोक्षण करे। धूप से उसे धूपित करे, धूप दिखाये, तत्पश्चात् उसे कटिप्रदेश कमर से पकड़ कर पूजास्थान तक ले आये। तदनन्तर कुशशय्या (कुशासन) बिछाकर उसे उस शय्या पर स्थापित करे। तब लौंग, इलायची से युक्त पान उसके मुख में देकर शव को नीचे मुँह उलट कर उसकी पीठ पर साधक चन्दन का लेप करे।

बाहुमूलादि कन्धांतं चतुरस्त्रं विलिख्य तन्मध्ये चतुर्द्वारात्मकं भूपुर सहितमष्टदलात्मकं पद्मं विलिख्य तत्र कम्बलाद्यासनमास्तीर्य द्वादशां-गुलमानाद्यज्ञकाष्ठकीलकान् चतुर्दिक्षु निखन्यदिक्पालान् तत्र पूजयेत्।

तब बाहुमूल से कन्धे तक चौकोर बनाकर उसके मध्यभाग में चारद्वारों से युक्त, भूपुरसहित अष्टदलकमल अंकित कर, उसपर कंबल का आसन बिछाये तथा बारहअंगुल लम्बाई की यज्ञकाष्ठनिर्मित कीलों को चारों दिशाओं में गाड़कर उनपर दिक्पालों की पूजा करे।

यथा–इन्द्राय सुराधिपतये ऐरावतवाहनाय वज्रहस्ताय शक्तिपरिघदाय इदं पाद्यं नमः इत्यादिभिः संपूज्य। ॐ इन्द्रायसुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृहणापय गृहणापय विघ्ननिवारणं कुरु सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहेति पूर्वदिशि इत्यादिभिः।

जैसे–**इन्द्राय....नमः** से पूजन कर **ॐ इन्द्राय....स्वाहा।** इस मन्त्र से पूर्वदिशा में बलि प्रदान करे।

मन्त्रार्थ–(पूजनमन्त्रं) ऐरावत पर सवार, हाथ में वज्र धारण किये, शक्ति-परिघ के अधिकारी, देवाधिपति इन्द्र को नमस्कारपूर्वक यह पाद्य अर्पित है।

बलिमन्त्र–हे सुराधिपति इन्द्र! आप इस बलि को ग्रहण करें, उत्सुक गणों को ग्रहण करायें, विघ्नों को दूर करें तथा मुझे सिद्धि प्रदान करें।

ॐ वह्नये तेजोधिपतये इमं मित्यादि मंत्रेण अग्निदिशि बलिं दत्वा ॐ यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय महिषवाहनाय इति पूर्ववत् सम्पूज्य यमदिशि। ॐ क्षं नैर्ऋत्ये रक्षोऽधिपतये अश्ववाहनाय पाशहस्तेत्यादि पूर्ववत् संपूज्य पूर्ववत् नैर्ऋति बलिंदत्वा। ॐ वरुणाय जलाधिपतये मकरवाहनाय पाशहस्तेत्यादि पूर्ववत् सम्पूज्य पूर्ववत् पश्चिमदिशि बलिंदत्वा। ॐ यं वायवे वायव्याधिपतये अंकुशहस्ताय मृगवाहनायेत्यादि पूर्ववत् संपूज्य वायुदिशि बलिंदत्वा। ॐ कुँ कुबेराय यक्षाधिपतये अश्वारूढाय इममित्यादि पूर्ववदुत्तरदिशि बलिंदत्वा। ॐ ईशानाय भूताधिपतिं शूलहस्ताय वृषवाहनायेति पूर्ववत् सम्पूज्य पूर्ववदीशान्यांदिशि बलिं दद्यात्।

ॐ वहन्ये.......इमं तत्पश्चात् पूर्वदिशा के पूजन और बलिदान हेतु प्रयुक्त मन्त्रांशयुक्त मन्त्र से अग्निदिशा (अग्निकोण) में, **ॐ यमाय महिषवाहनाय....** इत्यादि से पूर्ववत् मन्त्रोच्चार पूर्वक यमदिशा (दक्षिणदिशा) में पूजन एवं बलिदान सम्पन्न करे।

ॐ क्षं नैर्ऋत्ये.........आदि मन्त्रों से पूर्वदिशा की भाँति ही नैर्ऋत्य में पूजन, बलिदान, **ॐ वं वरुणायेत्यादि** मन्त्र से पूर्व की ही भाँति पश्चिमदिशा में, **ॐ यं वायवे....**आदि से वायुदिशा (वायव्य कोण) में **ॐ कुँ कुबेराय....**आदि से उत्तरदिशा में, **ॐ ईशानाय..** आदि से ईशानदिशा में पूर्वदिशा की ही भाँति पूजन एवं बलिदान सम्पन्न करना चाहिए।

ॐ ब्रह्मणे लोकाधिपतये हंसवाहनाय पद्महस्तायेति इन्द्रईशानयोर्मध्ये पूर्ववत् सम्पूज्या। ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये गरुडरथवाहनाय चक्रहस्ताय सांगाय सपरिवारायेति पूर्ववद्बलिं निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये दत्वा।

ॐ ब्रह्मणे....आदि मन्त्रों से इन्द्र और ईशान के मध्य में ब्रह्मा को तथा **ॐ अनंताय....**आदि से पूर्वदिशा की ही भाँति नैर्ऋति और वरुण के मध्य में अनन्त को पूजनपूर्वक बलि प्रदान करनी चाहिए।

कुलद्रव्येण शवाधिष्ठातृ देवताभ्यो बलिं दत्वा निवेद्य चतुःषष्टि योगिनीभ्यो नमः इति बलिं दत्वा ॐ डां डाकिनीभ्यो नमः इति बलिं दत्वा।

कुलद्रव्य से शवाधिष्ठातृ देवताओं को बलि निवेदित कर,

चतुषष्टियोगिनीभ्यो नमः से योगिनियों को तथा **ॐ डाँ डाकिनीभ्यो नमः** से डाकिनियों को बलि प्रदान करे।

पूजोपचरान् समीपे निधाय दूरे चोत्तर साधकं निधाय मूलमंत्रेण ह्रीं फट् शवासनाय नमः इत्यनेन आसनमभ्युक्ष्य मन्त्रं स्मरन् अश्वारोहण क्रमेणोपविश्य स्वपादतले कुशान् दत्वा केशान् प्रमार्ज्यय जुटिकां बध्वास्ववामे अर्घपात्रादिकं संस्थाप्य शव जुटिकायां पीठादि गुरुपंक्त्यांत देवीं सम्पूज्य।

पूर्वोक्त वीरार्दनमन्त्रेण लोष्ठान्यभिमन्त्र्य चतुर्दिशि निक्षिप्य शवास्ये कुलद्रव्येण त्रिः सकृद्वा सपरिवारान् देवीं संतर्प्य।

तब समीप में पूजा उपचारों को तथा कुछ दूरीपर उत्तरसाधक को रखकर, मूलमन्त्र **ह्रीं फट् शवासनाय नमः** इससे आसन का अभिप्रोक्षण कर, मन्त्र का स्मरण करता हुआ घोड़े पर सवारी के क्रम में बैठकर, अपने पैर के नीचे कुशाओं को रखे और शव के केशों का भलीभाँति मार्जन कर जुटिका बनाये, तब अपने वामभाग में अर्घपात्रादि की स्थापना कर शव की जुटिका में पीठादि से गुरुपंक्ति तक देवी का पूजन करे।

तत्पश्चात् पहले कहे गये वीरार्दनमन्त्र से मिट्टी के टुकड़ों को अभिमन्त्रित कर चारों दिशाओं में फेंकने के पश्चात् कुलद्रव्य से शव के मुँह में तीनबार अथवा एकबार परिवार के सहित देवी का साधक को तर्पण करना चाहिए।

ॐ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुक दिवसीयामावस्यायां रात्रावमुक गोत्रोऽहं अमुक शर्माऽहं अमुक मन्त्रस्य सिद्धिकामाश्वारोहणपूर्वकं पुरश्चरणमहं करिष्ये इति संकल्प्य।

तत्पश्चात् ॐ अमुकमासे............करिष्ये पढ़ता हुआ साधक संकल्प करे।

शवादुत्थाय तत्सन्मुखेगत्वा–

ॐ वशे मे भव देवेश मम मंत्रार्थकाम्यया ।
सिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रय पदांवर ।।

इति मन्त्रं पठित्वा मूलमन्त्रमुच्चरन् पट्टसूत्रेण तस्य पदद्वयं बध्वा।

ॐ वशे मे.....पदांवर। इस मन्त्र को पढ़ता हुआ मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए साधक रेशमीधागे से शव के दोनों पैरों को बाँधे।

मन्त्रार्थ–हे देवदेवेश! आप मेरे मन्त्र के अर्थ की कामना की

पूर्तिहेतु मेरे वश में होइये और हे महाभाग! अपने श्रेष्ठ चरणों का आश्रय लिये हुए मुझे सिद्धि प्रदान कीजिये।

ॐ भीमभव्यभयाभाव भव्यलोचन भावुक ।
त्राहिमां देवदेवेश शवानामधिपाधिप ।।

इति शवपादतले सिंदूरादिना त्रिकोणं विलिख्य पुनः शवोपरि उपविश्य पार्श्वयोस्तु हस्तौ निस्सार्य तयोरुपरि कुशान्दत्वा।

तब **ॐ भीम..........शवानामधिपाधिप**। मन्त्र से शव के पैरों में सिन्दूर आदि से त्रिकोण लिखे।

मन्त्रार्थ—हे भयानकस्वरूप किन्तु भय के भाव से रहित स्वयं सुन्दरनेत्रोंवाले, भावुक, शवों के स्वामी, हे देवताओं के भी देवेश! आप मेरी रक्षा कीजिये।

तदुपरान्त पुनः शव के ऊपर बैठकर दोनोंओर उसके हाथों को फैला कर उसपर कुशा रखे।

तत्र स्वपादौ निधाय ओष्ठौ संपुटौ कृत्वा रहसिमालामादाय पूर्वोक्तं संख्यया आरंभाअवध्युदय पर्यन्तं वा जपेदिति संख्यापूर्त्तौ।

वहाँ पैरों को रखकर ओंठ बन्दकर, गुप्त-माला लेकर निर्धारित संख्या में या आरम्भ से उदयअवधि पर्यन्त संकल्पकृत संख्या की पूर्त्तिहेतु, साधक जप करे।

अर्धरात्रिपर्यन्ते जप्ते यदि किंचिन्न लभ्यते तदापूर्वोक्त दुर्गामन्त्रेण देवतायै अर्घ्यं दत्वा तेनैव सर्षपान् विकीर्य तिलोसीत्यादिना तिलाश्चतुर्दिक्षु विकीर्य सप्तपदानिगत्वा पुनस्तत्रैवोपविश्य देवतां संपूज्य सिद्धिपर्यंतं जपेदिति।

उपर्युक्त रीति से आधीरात-तक जप करने के पश्चात् भी यदि कोई उपलब्धि न हो तो साधक, पूर्वोक्त दुर्गामन्त्र **दुर्गे दुर्गेत्यादि** से इष्टदेवता को अर्घ्यप्रदान करता हुआ उसी से पीले सरसों को छींटकर **तिलोसि** इत्यादि से तिलों को चारों दिशाओं में बिखेरकर वहाँ से सात कदम जाये एवं वहीं बैठकर अपने इष्टदेव के पूजनपूर्वक सिद्धिपर्यन्त मूलमन्त्र का जप करता रहे।

शवस्य चलाचले न भेतव्यं न वक्तव्यं च ।
यत्प्रार्थयसि देवेश दातव्यं कुंजरादिकम् ।
दिनांतरे प्रदास्यामि स्वनामकथयस्व मे ।।

इत्युक्त्वा निर्भयो जपेत्।

उससमय शव के हिलने डुलने से भयभीत न हो और न बोले। हे देवेश! जो कुंजर आदि आपको वांछित हैं वह मैं दूसरे दिन प्रदान करूँगा। आप अपना नाम मुझे बतायें। ऐसा कहकर निर्भय हो जप करे।

पुनश्चेन्मधुरं वाक्ति तदान्यै प्रकारैरस्तत्वेन देवतां निश्चित्य सत्यं वरं कारयित्वा वरं प्रार्थयित्वा जपं त्यजेत्।

तब यदि मधुरवाणी बोले तो अन्य प्रकारों से तात्त्विकरूप से देवता का निश्चय कर, सत्यं वद आदि शपथ कराकर, वर मांगकर, जप का परित्याग करे।

सत्यं यदि न करोति वरं च न प्रयच्छति नानाविधिमायया प्रतारयाति तदा पुनरपि जपेत्।

यदि उपस्थित तत्त्व सत्य (शपथ) न करे, वर न दे और अनेक प्रकार की माया करे तो पुनः जप करे।

प्रत्ययं न कुर्यादेवं बहुविधप्रकारैर्भूयो निश्चित्य सत्यं करोति वरं च प्रयच्छति तदावरं गृहीत्वा जपं त्यक्त्वा जपजुटिकां मोचयित्वा शवादुत्थाय पादबंधनं विमोच्य पादतलवर्तिचक्रं निर्माज्य शवं जलेन प्रक्षाल्य।

विश्वास न करे। इसप्रकार अनेक प्रकारों से बारम्बार निश्चय करने के पश्चात् यदि वह सत्य करे, शपथ करे, वर प्रदान करे तो उससे वर-ग्रहणकर जप का त्याग करना चाहिए। जप छोड़ने के पश्चात् जपहेतु पहले बाँधी गई जुटिका को खोलकर, शव से उठकर, उसके पैरों के बन्धन को खोल दे। तब उसके पैर के तलवों में बनाये गये चक्रों को मिटाकर, साधक शव को जल से धोवे।

पूजोपकरणसहितं जले गत्तै वा निक्षिप्य गृहं गत्वा यथा संभवं बलिं दत्वा अग्रिमदिने उपोष्य पिष्टकतमा नरकुंजरादि वराहादीन् बलिं दत्वा रात्रौ वहिर्नीत्वा यैरस्मभ्यो बलिर्याचितो येषां चाहं ग्रजमान इत्युत्वा स्वस्वोक्त बलिमंत्रेण बलिमुत्सृज्य अर्धचन्द्रांकित खड्गेन घातयेदिति।

तत्पश्चात् पूजोपकरणों के सहित उसशव को जल में या गड्ढे में डालकर अपने घर जाकर यथासंभव बलिदान कर अगले दिन उपवास करे। तब आटे का हाथी, मनुष्य, वराह आदि बलिपशु निर्माणकर, रात्रि में बाहर लाकर, जिनके द्वारा मुझसे बलि माँगी गयी है या जिनका मैं रक्षक हूँ, वचनबद्ध हूँ, उन्हें तत्सम्बन्धी बलिमन्त्र से बलि देकर उस बलिपशु को चंद्रांकित षड्ग से घातित करे।

तदाग्रिमदिने प्रातः कृत्यादिकं विधाय पंचगव्यं भुक्त्वा पंचदश विंशति ब्राह्मणान् भोजयित्वा गुरुं संतोष्य स्वयं हविष्यं भुक्त्वा पवित्रस्थानं समाश्रयेदिति एवं त्रिः चतुः पंचबहुल साधनं संगोप्य दशदिनपर्यन्तं स्त्रीवाद्यनृत्यादिकं वर्जयित्वा सत्यवचनपरोभूत्वा गोब्राह्मणदेवानां भक्तिं कुर्वन् षोडशदिने शतत्रय देवान् संतर्प्य यथा सुखं विहरेदिति—इति शवसाधनम्।

उसके अगले दिन प्रातः कृत्यादि सम्पन्न करे, पंचगव्य ग्रहण कर साधक पन्द्रह, बीस, ब्राह्मणों को भोजन कराकर, दान-मान से गुरु को संतुष्ट कर, स्वयं हविष्य भोजन करे तथा पवित्र स्थान में निवास करे। इसप्रकार तीन, चार, पाँच या बहुत सी साधनाएँ करके अपने को गुप्त रखे। दस दिन तक स्त्री, वाद्य, नृत्यादि से अपने को दूर रखता हुआ, सत्यवचनपरायण होकर, गो, ब्राह्मण और देवताओं की भक्ति करता हुआ, सोलहवें दिन तीन सौ देवताओं को विधिवत् भली-भाँति तर्पण कर यथासुखविहार करे।

इसप्रकार शवसाधन सम्पूर्ण हुआ।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमीष्यते—अथवा अन्यप्रकार से पुरश्चरण कहा जाता है।

शनौ वा कुजवारे वा नरमुंडं समाहृतम् ।
पंचगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः ।।१२२।।
निक्षिप्य भूमौ हस्तार्धमानतः काननांतरे ।
तत्रतद्दिवसेरात्रौ सहस्त्रं यदि मानवः ।।१२३।।
एकाकी प्रजपेन्मंत्रं संभवेत्कल्पपादपः ।

साधक शनि या मंगलवार को नर-मुण्ड लेकर जंगल में जाकर जमीन में उसे चन्दन मिले विशेष पञ्चगव्य सहित भूमि में आधे हाथ का गहरागड्ढा खोदकर गाड़ दे। उसदिन, रात्रि में यदि साधक मनुष्य अकेले में उसपर बैठकर एकहजार जप करे तो वह कल्पवृक्ष के समान सिद्धिप्रद हो जाता है॥१२२-१२३॥

शवमानीय तद्द्वारेतेनैव परिखन्यते ।।१२४।।
तद्दिनात्तद्दिनं यावत्तावदष्टोत्तरं शतम् ।
स भवेत् सर्वसिद्धिशो नात्र कार्या विचारणा ।।१२५।।

अथवा यदि साधक, शव को उन्हीं दिनों ले आने के पश्चात् उसी प्रकार खनकर उसदिन से उसदिन तक अर्थात् जिस शनि या मंगलवार को लाया हो उससे अगले उन्हीं दिनों तक १०८ मन्त्र प्रतिदिन के क्रम से जप करे तो वह सभीप्रकार की सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। इसमें किसीप्रकार की विचारणा (शंका) नहीं करनी चाहिए।।१२४-१२५।।

अथवान्येत्यादि–अथवा पुरश्चरण की अन्य पद्धति कही जाती है।

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव ग्रासावधि विमुक्तितः ।
यावत्संख्यं मनुं जप्त्वा तावद्धोमादिकं चरेत् ।।१२६।।
सूर्यग्रहणकालाद्दिनान्यत्कालः प्रशस्यते ।
तत्रयद्यत्कृतं सर्वं तदनंतगुणं भवेत् ।
तावदिति जप दशांश होमादित्यर्थः ।।१२७।।

चन्द्र और सूर्य के ग्रहण के समय, ग्रास की अवधि (ग्रहण के आरम्भ से मुक्ति) समय तक जितनी संख्या में मन्त्र जप किया जाय उसी समय उसकी दशांश संख्या में हवनादि यदि साधक करे। विशेषतः सूर्यग्रहणकाल की अपेक्षा अन्यकाल (चन्द्रग्रहणकाल) विशेष कहा गया है। ऐसे अवसर पर जो-जो जपादिक कर्म किया जाता है वह अनन्त गुणा हो जाता है। यहाँ तावद्होमादि से जप के दशांश होम का तात्पर्य है।।१२६-१२७।।

तंत्रान्तरे च–अन्य तन्त्रों में भी कहा है।

ग्रहणे सूर्यचन्द्रस्य शुचिःपूर्वमुपोषितः ।
स्पर्शाद्विमुक्तिपर्यंतं जपं कुर्यादनन्यधीः ।।१२८।।
अनंतरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकं चरेत् ।
तदंते महतीं पूजां कुर्यात् ब्राह्मणभोजनं ।।१२९।।
ततो मंत्रस्य सिद्ध्यर्थं गुरुं सम्पूज्यतोषयेत् ।।१३०।।

सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण के समय उपवासपूर्वक पवित्र हो, ग्रहण के स्पर्श से लेकर मोक्षकाल तक एकाग्रमन से साधक जप करे। तत्पश्चात् दशांश के क्रम में होम, तर्पण, मार्जन आदि करे। उसके अन्त में महतीपूजा, बलिदानादि सहित पूजा कर, ब्राह्मणभोजन कराये तब मन्त्र की सिद्धि हेतु गुरु का पूजनकर, उन्हें दान-मान से भली प्रकार तृप्त करे।।१२८-१३०।।

अथ कालीतन्त्रे–कालीतन्त्र में कहा है।

शरत्काले चतुर्थ्यादि नवम्यांतं विशेषतः ।
भक्तितः पूजयित्वातु शत्रौ तावत्सहस्रकम् ।।१३१।।

जपेद्विजन एकाकी केवलं तिमिरालये ।
अष्टम्यादि नवम्यन्तमुपवासपरोभवेत् ।।
सम्भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्रकार्याविचारणा ।।१३२।।

तावदिष्ट् सहस्रमित्यर्थः।

शरत्काल (आश्विननवरात्र) में चतुर्थी से नवमीपर्यन्त छः दिनों में भक्तिपूर्वक विशेष पूजन करके यदि साधक रात्रि में उतनी ही संख्या में निर्जन में अंधेरे स्थान में अकेले रहकर जप करे और नवमी को उपवासपरायण हो उपवास रखे तो वह सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। इसमें किसीप्रकार की विचारणा नहीं करनी चाहिए। यहाँ तावद् से तात्पर्य दिन संख्या ६ से होने से छः हजार है।।१३१-१३२।।

तदुक्तं मुण्डमालातन्त्रे—वही मुण्डमालातन्त्र में कहा है।

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्मिन् पक्षे विशेषेण पुरश्चरणतत्परः ।।१३३।।
अष्टम्यादि नवम्यंतमुपवासपरो भवेत् ।
पूजयेद् भक्तितो रात्रौ षट्सहस्रमनुं जपेत् ।।१३४।।

शरत्काल में जो वार्षिक महापूजा (नवरात्र-पूजा) की जाती है उस पक्ष (अवधि) में विशेषरूप से साधक को पुरश्चरणतत्पर हो, अष्टमी नवमी को उपवासपूर्वक, भक्तिसहित रात्रि में छः हजार मन्त्रजप करना चाहिए।।१३३-१३४।।

अथवेत्यादि—अथवा अन्य पुरश्चरण विधि कही जाती है।

अन्यत्र गुरुमार्गस्य लंघणं नैव कारयेत् ।
अष्टमी संधिवेलायं अष्टोत्तरलतागृहे ।।१३५।।
प्रविष्यमंत्री विधिवत्तां समभ्यर्च्य यत्नतः ।
पूर्वोक्त कल्पमासाद्य पूजादिकं समाचरेत् ।।१३६।।

गुरूपदिष्टमार्ग का अन्यत्र लंघन न कराये। अष्टमी और नवमी की संधिवेला में आठ वर्ष से अधिक वय की लता (नायिका) के गृह में प्रवेशकर मन्त्रसाधक विधिवत् प्रयत्नपूर्वक भली-भाँति अर्चना करे और पूर्वोक्तपद्धति का आश्रय ले पूजादि सम्पन्न करे।।१३५-१३६।।

केवल कामदेवौसौ जपेदष्टोत्तरं शत् ।
तासां च पत्रमूलेन उक्तां संगृह्य मस्तके ।
महासिद्धि भवेत्सद्यो लतादर्शन पूजनात् ।।१३७।।

केवल **कामदेवौसौ** मन्त्र को एकसौ आठबार जपे और उसके पत्रमूल से उक्त का मस्तक पर संग्रह करे। इसप्रकार से लता के दर्शन और पूजन से शीघ्र ही महासिद्धि प्राप्त होती है॥१३७॥

अथवेत्यादि–अथवा अन्यप्रकार से पुरश्चरण कहते हैं।

कुलाकृष्टि लता गात्रे लिखित्वा यन्त्रमेव च ।
संपूज्य तत्र संस्कारं कृत्वा तस्यै निवेद्य च ।।१३८।।
किंचिज्जप्तमनुं नीत्वा देवता भावतत्परः ।
तां विसृज्य नमस्कृत्य स्वयं जप्त्वा सुसंयुतः ।
प्रातस्त्रीभ्यो बलिं दत्वा मन्त्रसिद्धिर्न संशयः ।।१३९।।

कुलाकृष्ट लता के शरीर पर यन्त्र को लिखे, वहाँ पूजन करे, तब उसका संस्कार करके उसे निवेदित कर देवता की भावना से तत्पर हो कुछ मन्त्र जप करके उसे ले आये, स्वयं सुन्दर प्रकार से संयुत होकर जप करे। तत्पश्चात् उसका विसर्जन करके प्रातःकाल तीन बलिदान करे, ऐसा करने से मन्त्र की सिद्धि होती है। इसमें कोई संशय नहीं हैं॥१३८-१३९॥

अथवेत्यादि–अथवा अन्य पुरश्चरण कहते हैं।

वस्त्रालंकारभूषाद्यैः संतोष्य गुरुमात्मनः ।
तत्सुतं तत्सुतां वापि तत्पत्नीं च विशेषतः ।
पूजयित्वा मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीत् वरो भवेत् ।।१४०।।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे रहस्यपुरश्चर्याप्रतिपादनं नाम नवमतत्त्वम्॥९॥

वस्त्र, अलंकार, आदि से अपने गुरु, उनके पुत्र या पुत्री और उनकी पत्नी (अपनी गुरुमाता) की विशेषरूप से पूजा कर मन्त्रजप करके साधक, सबप्रकार की सिद्धियों का स्वामी हो जाता है॥१३९॥

श्रीराघवभट्ट विरचित कालीतत्त्व में पुरश्चर्याप्रतिपादन नामक
नौवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई॥९॥



दशमतत्त्वम्

*** नैमित्तिकविधिः ***

अथ नैमित्तिक विधिरुच्यते—अब नैमित्तिकविधि कही जाती है।

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे—जो स्वतन्त्रतन्त्र में कही गया है।

नित्यंनैमित्तिकं काम्यं सापेक्षं पूर्व पूर्वतः ।
अन्यथा च भवेदित्थं कुर्यादापत्परंपरा ।।१।।

नित्य, नैमित्तिक, काम्य और सापेक्ष कर्मों को पहले, पहले के क्रम से सम्पन्न करना चाहिए। इससे अन्यथा आचरण करने से आपत्तिशृंखला उपस्थित हो जाती है अर्थात् साधक पहले नित्यकर्म तब नैमित्तिककर्म तत्पश्चात् काम्यकर्म तदनन्तर सापेक्षकर्मों को सम्पन्न करे॥१॥

नीलतन्त्रे—नीलतन्त्र में भी कहा है।

नित्याचारपरो मन्त्री कुर्यान्नैमित्तिकार्चनम् ।
नैमित्तिकार्चने सिद्धः कुर्यात्काम्यमखंडितम् ।।२।।

मन्त्री (मन्त्रसाधक) नित्याचार में रत होकर नैमित्तिकअर्चन करे एवं नैमित्तिकअर्चन में सिद्ध होने के पश्चात् निर्बाधरूप से काम्यकर्म करे॥२॥

मत्स्यसूक्ते—मत्स्यसूक्त में भी कहा है।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पूजयेच्च प्रयत्नतः ।
यद्यत्प्रार्थयते मन्त्री तत्तदाप्नोति निश्चितम् ।।३।।
लभते मंजुलांवाणीं तथाष्टम्यां सदा यजेत् ।
अष्टम्यां पूजनं देव्याः सर्वकामफलप्रदम् ।।४।।
रंभापुष्पं बीजपूरं सुगंधिपरिमिश्रितम् ।
मिश्रीकृत्य बलिदद्याष्टम्यां च विशेषतः ।।५।।

अष्टमी और चतुर्दशी तिथियों को प्रयत्नपूर्वक देवी की पूजा करके मन्त्रसाधक जो-जो प्रार्थना करता है, मांगता है, वह-वह उसे निश्चितरूप से प्राप्त होता है। उसे सुन्दर वाणी प्राप्त होती है अतः अष्टमी को सदा यजन करना चाहिए। देवी का अष्टमीतिथि को किया जाने वाला पूजन, सभी कामनाओं का फल, प्रदान करने वाला होता है। रम्भापुष्प, बीजपूरफल, सुगन्धि से एकाकार हुए मिश्रण से अष्टमी के दिन विशेषरूप से देवी को बलि प्रदान करे॥३-५॥

ऊर्णामांसं विशेषेण दद्याद्देव्यै समाहितः ।
फलं क्षीरं तथा दध्याद्यधिकं शर्करान्वितं ।।६।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्पाद्य पूजयेच्छिवाम् ।
दानं चाक्षयसिद्ध्यर्थं दद्याद्देव्यै प्रयत्नतः ।।७।।

इसदिन समाहितचित्त से विशेषरूप से देवी को ऊर्णा (मेढ़े) का मांस समर्पित करे। फल, दूध, दही आदि अधिक शर्करान्वित भेंट करे। इसप्रकार शिवा, भगवती, काली का सभीप्रकार से प्रयत्नपूर्वक पूजन सम्पन्न करे एवं अक्षयसिद्धिप्राप्तिहेतु प्रयत्नपूर्वक विविध दान दे॥६-७॥

तथा नीलतन्त्रे—जैसा नीलतन्त्र में कहा है।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पूजयेच्च यथाविधिम् ।
आज्ञासिद्धिमवाप्नोति जपां पुष्पं च बर्बराम् ।।८।।
चन्दनं चार्घ्यकुसुमं दद्याच्छ्वेतापराजिताम् ।
अर्घ्यं दद्याद्विशेषेण नित्यपूजासु सर्वदा ।।९।।
अष्टोत्तरशतं जाप्यं यावज्जीवितसंख्यया ।
यस्तु सम्पूजयेद्दुर्गां महाष्टम्यां विशेषतः ।।१०।।
त्रिजन्मनार्जितं पापं तत्क्षणादेवनाशयेत् ।।११।।

अष्टमी एवं चतुर्दशी को यथाविधि देवी का पूजन करना चाहिए। ऐसा करने से आज्ञासिद्धि प्राप्त होती है। उस दिन गुड़हल के पुष्प, बर्बर (वृक्षविशेष) की लकड़ी जो चन्दन के काम आती है, चन्दन, अर्घ्य एवं श्वेतअपराजिता के पुष्प से पूजन करना चाहिए। नित्यपूजा में भी देवी को विशेषार्घ्य अवश्य प्रदान करे। पूजन सम्पन्न कर जीवनपर्यन्त अष्टोत्तरशत जप करना चाहिए। जो साधक महाष्टमी (आश्विनशुक्लअष्टमी) के पर्व पर दुर्गा (देवी) का विशेषरूप से पूजन करता है। उसके तीन जन्मों के अर्जित पाप-पूजन करते ही नष्ट हो जाते हैं॥८-११॥

कुलाचूडामणौ च—कुलचूड़ामणि में भी कहा है।

कुलवारे कुलाष्टम्यां चतुर्दश्यां प्रयत्नतः ।
योगिनीपूजनं तत्र प्रधानं कुलपूजनम् ।।१२।।
यथाविष्णुतिथौ विष्णुः पूजितो वांछितप्रदः ।
तथाकुलतिथौ दुर्गा पूजिता वरदायिनी ।।१३।।

कुलवार, कुल-अष्टमी, चतुर्दशी को विशेषरूप से योगिनी-पूजन (देवीपूजन) करे। उनदिनों प्रधान कुलदेवी का पूजन करना चाहिए। जिसप्रकार भगवान् विष्णु से सम्बन्धित एकादश्यादि तिथियों में पूजे

जाने पर भगवान्‌विष्णु वांछितफल प्रदान करते हैं। उसीप्रकार कुलतिथियों में पूजी जाने पर दुर्गा भी वर देने वाली होती हैं॥१२-१३॥

कुलवाराः यथा रुद्रयामले—कुलवार जैसा रुद्रयामल में कहा गया है।

रविश्चन्द्रो गुरुः सौरिश्चत्वारश्चाकुलामता ।
भौमशुक्रौ कुलाख्यौ तु बुधवारो कुलाकुलम् ।।१४।।

रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इन सात वारों में रवि, चन्द्र, गुरु एवं शनि ये चार वार अकुल, मंगल और शुक्र कुल तथा बुध कुलाकुल माना गया है॥१४॥

*** कुलतिथि ***

द्वितीया दशमी षष्ठी कुलाकुलमुदाहृतम् ।
कुलानि समधिष्ठानि निशेषमन्यत्कुलानि तु ।।१५।।

द्वितीया, दशमी व षष्ठी तिथियाँ कुलाकुल, अकुल समधिष्ठ तिथियाँ शेष अन्य तिथियाँ कुलतिथियाँ कही गई हैं॥१५॥

तिथिवारे च नक्षत्रे अकुले स्थायिनो जनाः ।
कुलाख्ये याजिनो नित्यं साम्यं चैव कुलाकुलं ।।१६।।

अकुल तिथि, वार, नक्षत्रों में स्थायीजन (पशुभावसाधक) कुलतिथियों में विशेषपूजन करने वाले (वीरभाव-साधक) तथा कुलाकुल तिथियों में सामान्यजन साधना करें॥१६॥

इत्यादि बहुल........ऐसी बहुत बातें हैं।

द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं चतुर्दश्यामुमापतिम् ।
अष्टम्यां पूजयेच्छक्तिं सर्वसिद्धिमभीप्सुभिः ।।१७।।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे नैमित्तिकविधिर्नाम दशमंतत्त्वम्॥१०॥

सबप्रकार की सिद्धियों को चाहनेवाले साधक को द्वादशी को भगवान् विष्णु, चतुर्दशी को उमापति शिव का तथा अष्टमी को शक्ति का पूजन करना चाहिए॥१७॥

श्रीराघवभट्ट विरचित कालीतत्त्व में नैमित्तिकविधि नामक
दसवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई॥१०॥



एकादशतत्त्वम्

* काम्यविधिः *

अथ काम्यविधिरुच्यते—अब काम्यविधि कही जाती है।

तदुक्तं कालीतन्त्रे—जो कालीतन्त्र में कही है।

अथ काम्यविधिं वक्ष्ये येन सर्वत्र सर्वगः ।
साधकः साधयेत् सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम् ।।१।।

अब मैं काम्यानुष्ठानों की विधि कहता हूँ जिससे साधक को सभी स्थानों पर सबओर गमन की सिद्धि प्राप्त होती है जो देवताओं को भी दुर्लभ है।।१।।

कुलागारं पुष्पितायाः दृष्ट्वा योजयते नरः ।
अयुतैक प्रमाणेन साधकः स्थिरमानसः ।।२।।
केवलं गुप्तभावेन सतु विद्यानिधिर्भवेत् ।
संस्कृताः प्राकृताः शब्दाः लौकिका वैदिकास्तथा ।
वशमायांति ते सर्वे साधकस्य न चान्यथा ।।३।।

अब साधना की विधि बतलाते हैं—

मासिकधर्मास्त्री के कुलागार (मदनमंदिर) को देखता हुआ जो मनुष्य (साधक) केवल स्थिरमन होकर दसहजार की संख्या में यदि मन्त्रजप, गुप्तभाव से करता है। वह विद्या का खजाना हो जाता है एवं सभी संस्कृत, प्राकृत, लौकिक तथा वैदिक तथा शब्द (विषय) साधक के वशीभूत हो जाते हैं, अन्यथा नहीं होता।।२-३।।

* अन्यविधि *

अथवा मुक्तकेशश्च हविर्भुक्त्वा सुसंयतः ।
प्रजप्यादयुतं प्राज्ञ एवदेवफलं लभेत् ।।४।।

अथवा केश खोले हुए, हविष्यभोजी होकर सुसंयतचित्त से दस हजार की संख्या में मन्त्रजप करके बुद्धिमान् साधक वही फल प्राप्त करता है।।४।।

नग्नां परलतां पश्यन् अयुतं यस्तु साधकः ।
प्रजपेत्स भवेत्सद्यो विद्यायाः वल्लभः स्वयं ।।५।।

नग्नपरलता (परशक्ति) को देखते हुए जो साधक दसहजार जप करता है, वह शीघ्र ही स्वयं विद्या का प्रिय (पति) हो जाता है॥५॥

तस्य दर्शनमात्रेण वादिनः कुंठितां गताः ।
गद्यपद्यमयीवाणी सभायां तस्य जायते ।।६।।
तन्नाम्ना सुधियस्सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः ।
तस्य काव्यपरिचयाज्जडाः भवन्ति वाग्मिनः ।।७।।

उस साधक के दर्शनमात्र से ही वादी (प्रतिवादी) कुण्ठित अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। सभा में उसकी वाणी गद्य-पद्य युक्त हो जाती है। उसके नाम से सभी बुद्धिमान् प्रसन्नतापूर्वक उसे प्रणाम करते हैं। उसके काव्य से परिचय होते ही श्रेष्ठ वक्ता भी जड़ हो जाते हैं॥६-७॥

अथवा

मुक्त केशश्च हविष्यं भक्षयेन्नरः ।
प्रजप्यादयुतं तस्य एष प्रतिनिधि स्मृतः ।।८।।

मनुष्य (साधक) खुले केश में रहे, हविष्य का भोजन करे तथा दसहजार मन्त्र का जप करे तो ऐसा साधक उस पराशक्ति का प्रतिनिधि कहा जाता है॥८॥

धनकामस्तु यो विद्वान् महदैश्वर्य कामुकः ।
बृहस्पति समो यस्तु भवितुं कामयेन्नरः ।।९।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा कुलमामंत्र्य तत्त्ववित् ।
मैथुनं यत्प्रयत्नेन सर्वकामफलं लभेत् ।।१०।।

जो विद्वान् धन की कामना रखने वाला और महान् ऐश्वर्य का लोलुप हो या जो साधक बृहस्पति के समान होने की कामना रखता हो तो कुल (अंगना) को आमन्त्रित कर वह तत्त्ववेत्तासाधक अष्टोतरशत संख्या में मन्त्र का जप करे, प्रयत्नपूर्वक उसके साथ मैथुन करे तो वह अपनी समस्त कामनाओं का फल प्राप्त कर लेता है॥९-१०॥

लतावनेषु जप्तव्यं महापातक मुक्तये ।।११।।
लता यदि न संसर्गस्तदा रेतः प्रयत्नतः ।
समुत्सार्य जपेन्मन्त्रं धर्मकामार्थ सिद्धये ।।१२।।

महापातकों से मुक्ति के लिए साधक को लताओं (नायिकाओं) के समूह में स्थित हो मूलमंत्र का जप करना चाहिए। यदि लता का संसर्ग

संभव न हो तो साधक धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि हेतु, प्रयत्नपूर्वक अपने रेतस् को निकालने के पश्चात् अभीष्टमन्त्र का पूर्वनिर्दिष्ट संख्या में जप करे॥११-१२॥

कुलचूडामणावपि—कुलचूड़ामणि नामक ग्रन्थ में भी उल्लिखित है।

जरोवस्थां समालोक्य तन्मूले स्वेष्टदेवताम् ।
पूजयित्वा महारात्रौ त्रिदिनं प्रजपेन्मनुम् ।।१३।।

जब शक्ति की रजोवस्था दिखे तो साधक महानिशा में उस लता के मूल में अपने इष्ट देवता का तीन दिनों तक पूजन करे और तत्पश्चात् मन्त्रजप करे॥१३॥

लक्षपीठफलं देवि लभते नात्र संशयः ।
वेतालपादुकां सिद्धिं खड्गसिद्धिं च भैरवं ।।
अञ्जनंतिलकंसिद्धिं साधयेत्साधकोत्तमः ।।१४।।

हे देवि! इसप्रकार के जप से साधक लाखपीठों पर जप करने का फल प्राप्त करता है। इसमें कोई संशय नहीं है। ऐसा करके वह उत्तम साधक वेतालसिद्धि, पादुकासिद्धि, खड्गसिद्धि, अंजनसिद्धि, तिलक सिद्धि आदि को सिद्ध कर लेता है।

प्रजपेदिति प्रति दिनमष्टोत्तरसहस्रमिति शेषः—यहाँ प्रजपेत् आदि में प्रतिदिन एक हजार आठ जपना यह निहित है॥१४॥

अतएव मन्त्रराजमणिप्याह—इसीलिए मन्त्रराजमणि में भी कहा है।

यत्र जापे च होमे च संख्यानोक्ता मनीषिभिः ।
तत्रोयं गणना प्रोक्ता गजांतकसहस्रकमिति ।।१५।।

जहाँ विद्वानों द्वारा जप एवं होम के प्रसंग में संख्या न कही गई हो वहाँ ८ अधिक एक हजार अर्थात् एक हजार आठ की गणना कही गई है, ऐसा जानना चाहिए॥१५॥

प्रयोगान्तरमपि—अन्य प्रयोगों में भी कहा गया है।

गन्धर्वाख्ये—गन्धर्वतन्त्र में कहा गया है।

पृथ्वीमृतुमतीं वीक्ष्य सहस्रं यदि नित्यशः ।
तदावादी सुसिद्धान्त हतक्षितितलं विशेत् ।।१६।।
पर्वतेहस्तमारोप्य निर्भयः शतमानतः ।
कवितां लभते सोऽपि अमृतत्त्वं च गच्छति ।।१७।।

पद्मं दृष्ट्वा तथा बिम्बं खंजनं शिखरं तथा ।
चामरं रविबिम्बं च तिलपुष्पं सरोवरम् ।।१८।।

जो साधक ऋतुमती पृथिवी को देखते हुए सुसिद्धान्तहत क्षितितल में प्रवेश करने के पश्चात् साधक पर्वत पर हाथ रखे हुए नित्य, निर्भय होकर शत अर्थात् एक सौ आठ की संख्या में जप करे तो ऐसा साधक कविता (कवित्व शक्ति) को प्राप्त करता है और अमृतत्त्व को जाता है।।१६-१८।।

त्रिशूलं विक्ष्यजप्त्वातु शतशः शुद्धमानसः ।
मुखं प्रसादं सुवचः सुलोचनसुहास्यकम् ।।१९।।
सुकेशं सुभगं गंधं सुजनं सुखमेव च ।
लभते च यथा संख्यं शृणु पार्वति नित्यशः ।।२०।।

हे पार्वती! पद्म, खंजन, बिम्ब, शिखर, चामर एवं रविबिम्ब, तिलपुष्प, सरोवर, त्रिशूल आदि को देखता हुआ शुद्ध मन से सौ-सौ के क्रम में प्रत्येक अवस्था में जप करने वाला साधक सुन्दर केश, सौभाग्य, गन्ध, सुजनों का सम्पर्क और यथेच्छसुख, सादर प्राप्त करता है।

नित्यशः? इति जरोवस्था इत्यादि वाक्यैकवाक्यतया तद्ववदितरदेवतं पूजयित्वा द्वयपर्यन्तं सहस्रं जपेदित्यर्थ इदमुपलक्ष्यं पर्वत इत्यादपि बोद्धव्यं।

यहाँ प्रयुक्त नित्यशः आदि कथन पूर्ववर्त्ती **जरोवस्था** से एकवाक्यता स्थापित करता है, दोहजार जप से तात्पर्य है कि पर्वत आदि शब्दों के लाक्षणिकअर्थ साधक को स्वगुरु से समझने चाहिए। यहाँ ऋतुमती पृथ्वी और जरोऽवस्था दोनों का एक ही अर्थ है। मूल और क्षितितल एक ही अर्थ के बोधक हैं। पर्वत स्तनों के सूचक हैं। इसीप्रकार पद्ममुखमण्डल, खंजनबिम्ब-नेत्र, शिखर कपोल, चामर चिबुक, रविबिम्ब ललाट, तिलपुष्प सरोवर, त्रिशूल, संकेतक हैं।।१९-२०।।

महाचीनक्रमाद्देवीं ध्यातां तत्र प्रपूज्य च ।
तत्तद्द्रुमोत्थपुष्पेण पूजयेद्भक्तिभावतः ।।२१।।
समवेत्कुलदेवश्च कुलद्रुमगतः शुचिः ।
ब्रह्मतरो महापद्मे देवीं ध्यात्वा यथाविधिः ।।२२।।
तत्सुधारससारेण तर्पयेन्मात्रिकानने ।
महाचीनद्रुमलता वेष्टितः साधकोत्तमः ।।२३।।

महाचीनक्रम से देवी का ध्यान करने वाला जो साधक है, वह ऐसी परिस्थिति में वहाँ पूजन कर, उस वृक्ष से उत्पन्न पुष्प से जो साधक

भाव से कुलद्रुम के समीप पहुँच कर पवित्रचित्त से पूजन करता है। वह स्वयं कुलदेवतास्वरूप हो जाता है। ब्रह्मवृक्ष के महापद्म में देवी का विधिपूर्वक ध्यान करता हुआ उसके सुधारससार से महाचीनद्रुमलताओं से वेष्टित, श्रेष्ठसाधक को मात्रिवन में तर्पण करना चाहिए। (यहाँ कुलद्रुम, ब्रह्मवृक्ष, महापद्म, सुधारससार, मात्रिकाशब्द अपने लाक्षणिकरूप में प्रयुक्त हैं)॥२१-२३॥

रात्रौ यदिजपेन्मन्त्रं सैव कल्पलता भवेत् ।
तिथिक्रमेण संख्याभिर्लताभिर्वेष्टितो यदि ।
तदामासेन सिद्धिंस्यात्सहस्रं जपमानतः ।।२४।।

यदि साधक पूर्वोक्तरीति से रात्रि में मन्त्र-जप करे तो वह स्वयं कल्पलता के समान अन्यों की इच्छापूर्ति में समर्थ हो जाता है। तिथिक्रम के अनुसार संख्या में उपलब्ध लताओं से युक्त हो साधक यदि एक सहस्र प्रतिदिन के अनुपात से एक मास तक जप करे तो वह अपेक्षित सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। यहाँ तिथिक्रम का तात्पर्य है, शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को एक, द्वितीया को दो, तृतीया को तीन होता हुआ अमावस्या को (३०) तीस लताओं का सेवन करे॥२४॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां द्विगुणे यदि दृश्यते ।
तदेव महती सिद्धिर्देवानामपि दुर्लभम् ।।२५।।

अष्टमी और चतुर्दशी को यदि दोगुना अर्थात् १६ एवं २८ की संख्या में दिखाई दे तो साधक को वह महान् सिद्धि प्राप्त होती है जो देवताओं को भी दुर्लभ है॥२५॥

कुलचूडामणौ च—कुलचूड़ामणि में भी कहा गया है।

आनीय देवीं तद्गात्रे व्यापकं विन्यसेत्ततः ।।२६।।

देवी को लाकर उसके शरीर पर व्यापकन्यास करे॥२६॥

प्रथमं साधकश्रेष्ठो देवीकूटस्य मस्तके ।
विलिख्य मन्त्रं पूर्वोक्तं पूजयेत्कुलवर्त्मना ।।२७।।

सर्वप्रथम उत्तम साधक देवीकूट का पूर्वोक्तमन्त्र उसके मस्तक पर लिखकर कुलमार्ग से पूजन करे॥२७॥

पीठदेवीं प्रथमतः पूजयेद्गंधपुष्पकैः ।
महाभागां ततो मूलदेवीमावरणैः सह ।।२८।।

मन्त्रं विलिख्य। तन्मध्ये कुमार्याः शक्तिबीजं विलिख्य पुरतः संस्थाप्य तत्र पीठपूजां विधाय द्वादश प्राणायामं कृत्वा आवाह्य विधिवत् पूजयेत्।

साधक प्रदोष (सायंकाल) के समय शून्यगृह में जाकर, उत्तर मुँह बैठकर भूतशुद्धि से प्रारम्भ कर न्यास तक की प्रक्रिया सम्पन्न करे। तदुपरान्त सिन्दूर से नवकोण, वृत्त, अष्टदलकमल पुनः वृत्त तत्पश्चात् चार द्वारों से युक्त चतुरस्त्र (चौकोर) सहित यन्त्र लिखे।

उसके मध्य में शक्तिबीज लिखकर, कुमारी के सम्मुख उसकी स्थापना कर, वहीं पूर्वोक्तपीठ-पूजन करके द्वादश (१२) प्राणायाम करे। तत्पश्चात् देवी का आवाहन कर विधिवत् पूजन करे।

तदुक्तं यथा—जैसा कि कहा गया है।

नृकपालसमारूढां नरमालाविराजिताम् ।
कृष्णाभ्रसन्निभां देवीं रक्तवासोपवीतिनीम् ।।३९।।
प्रदीपितचतुर्बाहुनानालंकारभूषिताम् ।
निशार्धकं समारुह्य यावद्यामद्वयं भवेत् ।
तावत् कालं जपेन्मन्त्रं कालिका दर्शनोत्सुकः ।।४०।।

कालिका के दर्शन को उत्सुक साधक, नरमुण्ड पर विराजमान, नरमाला से सुशोभित, काले बादल के समान आभा वाली, रक्तवस्त्र-धारण की हुई, अनेकप्रकार के आभूषणों से सुशोभित, चारभुजाओं से युक्त देवी का ध्यान करते हुए आधीरात को आरोहण कर दोप्रहर का काल व्यतीत होने तक मन्त्र जप करे॥३९-४०॥

चंदनांचित नृशिरः शिरोपरिविराजिताम् ।
घृतप्रदीपमालाभिस्तथैव परिवेष्टिताः ।।४१।।
मुण्डोपरिभवेन्मुंडो भयमोहविवर्जितः ।
ऊर्ध्वास्यं प्रजपेन्मन्त्रं दीपालोकन तत्परः ।।४२।।

उससमय चन्दन विभूषित सिर के ऊपर सिर विराजित हो तथा उसीप्रकार की अन्य प्रदीप्त मालाओं से वह घिरी हुई हो। मुण्ड के ऊपर मुण्ड हो। भय और मोह से रहित हो, ऊपर की ओर मुँह कर दीप का अवलोकन करता हुआ मन्त्र जप सम्पन्न करे। (प्रदीपमाला और दीप दोनों विशिष्टार्थ को समाहित किये हैं जो क्रमशः शक्ति और मुखारविन्द के सूचक हैं)॥४१-४२॥

मुंडोपरिभवेन्मुण्डमुद्दीपं सन्निधापयेत् ।
पूजयेन्मूलमंत्रेण कुमार्यपि विलक्षणाम् ।।४३।।

जब मुण्ड के ऊपर मुण्ड हो उससमय ऊपर की दीप का सन्निधान करते हुए मूलमन्त्र से पूजन करे। उससमय विशेष लक्षणों से युक्त कुमारी का भी पूजन करे।।४३।।

सिन्दूरं मण्डलं कृत्वा नवकोण समन्वितम् ।
शक्तिबीजं तु तन्मध्ये लिखित्वन्यैवसमावृतम् ।
बहिरष्टदलं पद्मं तेनैव कारयेद्बुधः ।।४४।।
अत्रावाह्य जगद्धात्रीं कालिकां कृष्णविग्रहाम् ।
पूजयेद्विधिवद् भक्त्या नवरात्रं समाहितः ।।४५।।

इस हेतु नवकोणों से युक्त सिन्दूर का मण्डल बनाये। उसके मध्य में उन्हीं से घिरा हुआ शक्तिबीज लिखे। बाहर की ओर सिन्दूर से ही विद्वान् साधक अष्टदल कमल बनाये। उसीपर काले शरीर वाली, जगत् का पालन करने वाली, कालिका देवी का भक्तिसहित समाहितचित्त से नवरात्रिपर्यन्त विधिवत् पूजन करे।।४४-४५।।

ततस्तुष्टा जगद्धात्री कालिका परमेश्वरी ।
सर्वसंपत्प्रदा साक्षात् साधकस्यानुकंपया ।।४६।।

ऐसाकरने से जगद्धात्री, परमेश्वरी कालिका देवी कृपापूर्वक साधक को सबप्रकार की सम्पत्ति प्रदान करने के लिए साक्षात् उपस्थित होती हैं।।४६।।

नेदं प्रकाशयेद्धीमान् प्राणैः कंठगतैरपि ।
नवदेद्भक्तिहीनाय भैरवेणेति भाषितम् ।।४७।।

इसरहस्य को बुद्धिमान् पुरुष द्वारा प्राणसंकट उपस्थित हो जाने पर भी प्रकाशित नहीं करना चाहिए। इसे कभी भी भक्तिहीन से नहीं कहना चाहिए। ऐसा भैरव के द्वारा कहा गया है।।४७।।

* वेतालसिद्धि *

अथ वेतालसिद्धिः—अब वेतालसिद्धि कहते हैं।

तदुक्तं कुलचूडामणावादौ—जो कुलचूडामणि आदि ग्रन्थों में कहा है।

भैरवउवाच—

वेतालादि महासिद्धिः कथं भवति चण्डिके ।
तन्मे कथय देवेशि यदि स्नेहोस्तिमां प्रति ।।४८।।

भैरव बोले–हे देवेशि! हे चण्डिके! यदि आपका मेरे प्रति स्नेह है तो वेतालसिद्धि आदि महासिद्धि कैसे होती है, इस रहस्य को आप मुझसे कहें।।४८।।

देव्युवाच–

निम्बवृक्षोद्भवं काष्ठं श्मशाने साधकोत्तमः ।
भौमवारे मध्यरात्रौ गत्वा कुलयुगान्वितः ।
खनित्वाचाष्टलक्षं वै जपेन्महिषमर्दिनीम् ।।४९।।

देवी बोलीं– साधकों में श्रेष्ठ साधक, मंगलवार की मध्यरात्रि में कुलयुगान्वित हो (दो शक्तियों सहित) श्मशानभूमि में जाये और नीम के वृक्ष के काष्ठ को गड्ढे में खोद कर गाड़ कर वहाँ आठ लाख की संख्या में महिषमर्दिनी दुर्गा का जप करे।।४९।।

तत् सहस्रे जपेद्वत्सं तत्रैव पितृकानने ।
काष्ठमुद्धत्य तस्मिन् वै दंडपादुकचिह्नितम् ।।५०।।
कृत्वा दुर्गाष्टमी रात्रौ श्मशाने निक्षिपेत्ततः ।
तस्योपरि शवं कृत्वा पूजयित्वा यथाविधिः ।।५१।।

उतनी ही हजार संख्या में वहीं, पितृकानन (श्मशान) में ही जप करे। तत्पश्चात् उस नीम-काष्ठ को निकाल कर उसी में दण्ड-पादुका आदि चिह्नित (निर्मित) कर पुनः दुर्गाष्टमी (आश्विनशुक्लपक्ष की अष्टमी) को रात्रि में श्मशानभूमि में स्थापित करे। तब उसके ऊपर शव को स्थापित कर विधिपूर्वक पूजन सम्पन्न करे।।५०-५१।।

शवासन गतोवीरो जपेदष्टसहस्रकम् ।
ततो मातृबलिं दत्त्वा काष्ठमांमंत्रयेत्ततः ।।५२।।

उस शव के आसन पर वीरसाधक विराजमान हो आठहजार मन्त्र जप करे। तत्पश्चांत् मातृबलि (देवी-बलि) प्रदान करके भूमि में गाड़े हुए काष्ठ को मन्त्र से अभिमंत्रित करे।।५२।।

स्फ्रें स्फ्रें दंड महाभाग योगीशहृदयप्रिय ।
ममहस्तस्थितोनाथ ममाज्ञां परिपालय ।।५३।।

अभिमन्त्रण का मन्त्र–स्फ्रें स्फ्रें.......परिपालय।

मन्त्रार्थ–स्फ्रें स्फ्रें हे दंड! हे महाभाग ! आप योगीश (शिव) को हृदय से प्रिय हैं। हे नाथ! आप मेरे हृदय में स्थित हो, मेरी आज्ञा का पालन कीजिये।।५३।।

एवं आमन्त्र्य वैतालं यत्र यत्र प्रमुच्यते ।
तं तं चूर्णं विधायाथ पुनरायाति कौलिकम् ।।५४।।

इसप्रकार से उस दण्डरूपी वैताल को आमन्त्रित कर जहाँ-जहाँ वह कौलिक साधक चलाता है, उसे चूर्ण कर वह पुनः उसी के पास लौट कर, वापस आ जाता है।।५४।।

पादुकाप्रेषणमन्त्र

गच्छ गच्छ महाभागे पादुके वरवर्णिनि ।
मत्पादस्पर्शमात्रेण गच्छत्वं शतयोजनम् ।।५५।।

हे श्रेष्ठवर्णवाली! महाभागे पादुके! जाओ, जाओ, मेरे पैर के स्पर्शमात्र से ही तुम सौ योजन तक जाओ।।५५।।

अष्टलोहं समासाद्य पंचाशदंगुलाकृतिम् ।
शृंगं कृत्वा तत्र यन्त्रं लिखित्वा पूजयेन्मनुम् ।।५६।।
तत् सहस्रं ततो हुत्वा महाशवकलेवरे ।
खनित्वा जीववृक्षाग्रे बध्वाशुद्धं न भावयेत् ।।५७।।

अष्टलोह (अष्टधातु—सोना, चाँदी, तामा, रांगा, टिन, जस्ता, पारा, लोहा) लाकर उससे पचासअंगुल का शृंग (वेदी) बना करके वहीं यंत्र लिखकर पूजन करे तथा एक सहस्र जप करके तब महाशव के कलेवर पर होम करे। खोद कर गाड़ कर जीववृक्ष के आगे बाँधे। अशुद्ध न समझे।।५६-५७।।

कुलाष्टम्यामर्धरात्रौ चितामध्यं समाहितः ।
इतिपूर्वसमामंत्र्य हुणेत् प्रेतवने ततः ।।५८।।
मधुरत्रयसंयुक्तं निम्बपत्रेण संयुतम् ।
पादादिमूर्ध्निपर्यन्तं होमांते बलिमाहरेत् ।।५९।।

आश्विनशुक्लअष्टमी को आधीरात के समय चितामध्य में समाहितचित्त से पूजन और हवन सम्पन्न करना चाहिए। पहले मन्त्र से अभिमन्त्रित करे तब प्रेतवन (श्मशानभूमि) में मधुरत्रय (घी, शहद, शक्कर) सहित नीम के पत्ते से पैर से सिर तक हवन करे। होम के अन्त में बलि प्रदान करे।।५८-५९।।

बल्यन्ते परमामायं देवी महिषमर्दिनी ।
आयाति बलि पूर्णास्या वरहस्ता महोन्मुखी ।।६०।।

इसप्रकार बलिप्रदान के पश्चात् श्रेष्ठ माया, महिषमर्दिनी देवी

दुर्गामंत्र विना वत्स कालीमंत्रं विना तथा ।
सिद्धयः कुलनाथेश समयं तेन कंचन ।।७४।।

हे वत्स! काली या दुर्गा मन्त्र के अभाव में कुलनाथेश के साथ उपर्युक्त किसीप्रकार की सिद्धियाँ उपलब्ध नहीं हो सकतीं।।७४।।

कालीतंत्रे—कालीतंत्र में भी कहा है।

अथोच्यते दक्षिणाया सामान्यसाधनं प्रिये ।
कृतेन येन विधिवत् पलायंते महापदः ।।७५।।

हे प्रिये! अब दक्षिणाकाली के सामान्यपूजन का विधान कहा जाता है। जिसके विधिवत् आचरण से महान् आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं।।७५।।

शिवाबलिश्च दातव्या सर्वसिद्धिमभिप्सुभिः ।
महोत्पाते महारोगे महादोषे महाग्रहे ।।७६।।
महापदि महांयुद्धे महानिगृहसंकुले ।
महादारिद्रशमने महादुःस्वप्रदर्शने ।।७७।।
महाशांतौ महारण्ये महास्वस्त्ययने तथा ।
घोराभिचारशमने घोरोपद्रवनाशने ।।७८।।
कूटयुद्धादिशमने कूटशत्रुविनाशने ।
बाधादिभयशान्त्यर्थं राजक्रोधोपशांतये ।।७९।।

सबप्रकार की सिद्धि चाहने वाले साधक को शिवाबलि प्रदान करनी चाहिए। महान् उत्पात, रोग, दोष, ग्रहपीड़ा, आपत्ति, युद्ध, बन्धन, दारिद्रय, दुःस्वप्रदर्शन, अशांति, अमङ्गल, घोरअभिचार एवं कूटयुद्ध के शमन, कूटशत्रुओं एवं घोरउपद्रवों के नाश हेतु, बाधादिभयशान्ति तथा अधिकारियों के क्रोध की निवृत्ति के लिए उपर्युक्तपूजन (शिवाबलि) करना चाहिए।।७६-७९।।

न ददाति बलिंयस्तु शिवायाः शिवत्वाप्तये ।
सपापिष्टो न लज्जेत् कुलदेवास्तु पूजने ।।८०।।

शिवत्व (कल्याण) की प्राप्ति के लिये जो शिवाबलि नहीं करता, वह पापी कुलदेवी के पूजन में लज्जित क्यों नहीं होता?।।८०।।

कुलीनान्नावमन्येत कुलज्ञं परिपूजयेत् ।
कुलज्ञेषु प्रसन्नेषु कालिका सन्निधिर्भवेत् ।।८१।।

कुलीनों की कुलसाधकों को अवमानना नहीं करनी चाहिए।

कुलज्ञों (कुलमार्ग के ज्ञाताओं) का सबप्रकार से पूजन करना चाहिए। कुलज्ञों के प्रसन्न होने से कालिका की सन्निधि प्राप्त होती है॥८१॥

अहोधन्यवतां लोके जानाति कुलदर्शनम् ।
तेषां मध्यमेतु यः कोऽपि कुलदेवीं समर्चयेत् ।।८२।।

जो कुलदर्शन को जानता है, वह लोक में धन्य है। उन कुलज्ञों में भी कोई-कोई ऐसा होता है जो कुलदेवी की अर्चना करता है॥८२॥

कुलाचारविहीनो यः पूजयेत्कालिकान्नरः ।
सस्वर्गमोक्षभागी च नस्यात्सत्यं न संशयः ।।८३।।

कुलाचारविहीन होकर भी जो मनुष्य कालिकापूजन करता है, वह मोक्षमार्ग से स्वर्ग को प्राप्त नहीं करता, यह सत्य है। इसमें कोई संशय नहीं है॥८३॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं बलं पुष्टिर्महद्यशः ।
कवितां भुक्तिमुक्तिं च कालिकापदपूजनात् ।।८४।।

कालिका के चरणकमल की पूजा से साधक, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, बल, पुष्टि, महान् यश, कविता, भोग और मोक्ष प्राप्त करता है॥८४॥

इति अन्ये प्रयोगाः कालीतंत्रे द्रष्टव्याः शिवाबलिप्रयोगस्त्वाचार-स्त्वनेन न संदेह इति।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे काम्यविधिःप्रतिपादनं नाम एकादशतत्त्वम्॥११॥

अन्य प्रयोग कालीतन्त्र में देखना चाहिये, शिवाबलिप्रयोग तो आचार ही है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

श्रीराघवभट्ट विरचित कालीतत्त्व में काम्यविधिप्रतिपादन नामक
ग्यारहवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई॥११॥



द्वादशतत्त्वम्

* आचारविधिः *

अथाचारः विधिरुच्यते—आचारविधि कही जाती है।

तदुक्तं यामलादौ—जो यामल आदि में कहा गया है।

अथाचारं प्रवक्ष्यामि यत्कृतेऽमृतमश्नुते ।।१।।

आचारविधि कहूँगा, जिसके आचरण से साधक अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।।१।।

सर्वभूतहितेयुक्तः समयाचारपालकः ।
अनित्यकर्मसंत्यागी नित्यानुष्ठानतत्परः ।।२।।
मन्त्राराधनमात्रेण शिवभावनतत्परः ।
परस्यां देवतायां च सर्वकर्मनिवेदकः ।।३।।

साधक को सभी प्राणियों के हित में युक्त हो, समयाचार का पालन करने वाला, अनित्यकर्मों का त्याग करने वाला, नित्य-अनुष्ठान को तत्परतापूर्वक सम्पन्न करने वाला तथा मन्त्र की आराधना करते हुए शिवभावना (शिवत्वबोध) में तत्पर होना चाहिए। उसे परदेवता, परा-भगवती को ही अपने सभी कर्मों का निवेदन करना चाहिए।।२-३।।

अन्यमंत्रार्चने श्रद्धा अन्यमंत्रस्य पूजनम् ।
कुलस्त्री वीर निन्दां च तद्रव्यमपहारकम् ।
स्त्रीषु रोषं प्रहारं च वर्जयेन्मतिमान् सदा ।।४।।

बुद्धिमान् साधक को सदैव दीक्षा में प्राप्त या अपने इष्ट देवता के मन्त्र के अतिरिक्त अन्य मन्त्र के अर्चन में श्रद्धा, अन्य में मन्त्र का पूजन, कुलस्त्री, कुलनायिकाओं व वीरों, (वीर साधकों) की निन्दा, उनके धन का अपहरण, स्त्रियों के प्रति क्रोध, उनपर प्रहार आदि से अलग रहना चाहिए।।४।।

स्त्रीमयं जगत्सर्वं स्वयं तावत्तथा भवेत् ।
पेयं चर्व्यं तथा चोष्यं भक्ष्यं लेह्यं गृहं सुखम् ।।५।।
सर्वं च युवती रूपम् भावयेद्यतमानसः ।
कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात् समाहितः ।।६।।

उसे नियतमन (स्थिरचित्त) से सम्पूर्ण जगत् को स्त्रीमय तथा स्वयं को भी उसीप्रकार का समझना चाहिए। उसे पीनेयोग्य, चबा कर

खानेयोग्य, चूसनेयोग्य, भक्ष्य, लेह्य (चाटनेयोग्य) पदार्थों किंवा गृह, सुख आदि सब में युवती रूप की ही भावना करनी चाहिए।

कुलजा, कुलमार्गीयुवती दीख जाय तो वह उसे समाहितचित्त से नमस्कार करे।।५-६।।

यदि भाग्यवशे नैव कुलदृष्टिस्तुजायते ।
तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्प्यते ।।७।।

यदि भाग्यवश उनके प्रति कुलदृष्टि उत्पन्न न हो तो उससमय उनकी मानसीपूजा सम्पन्न करे।।७।।

बालां यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा सुन्दरीं तथा ।
कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्यम् विभावयेत् ।।८।।

बाला, यौवन से उन्मत्त (युवा), वृद्धा, सुन्दरी, कुत्सित या महान्दुष्टा, किसी प्रकार की भी नारी हो, उसके लिए नमस्कार की भावना करनी चाहिए।।८।।

तासां प्रहारं निंदां च कौटिल्यामप्रियं वचः ।
सर्वथा न च कर्त्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत् ।।९।।

साधकों को उनके ऊपर प्रहार, उनकी निंदा, उनके प्रति कुटिलता या अप्रियवाणी का प्रयोग, किसी भी प्रकार से नहीं करना चाहिए। इससे अन्यथा करने पर सिद्धिप्राप्ति में बाधा आती है।।९।।

स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव हि भूषणम् ।
स्त्री संगिना सदा भाव्यमन्यथास्वस्त्रियामपि ।।१०।।
विपरीतरतायास्तु भाविता हृदयोपरि ।
तद्धस्तावचितं पुष्पं तद्धस्तावचितं जलम् ।
तद्धस्तावचितं भोज्यं देवताभ्यो निवेदयेत् ।।११।।

स्त्रियाँ देवता हैं, स्त्रियाँ प्राण हैं, स्त्रियाँ ही भूषण हैं। साधक को सदैव स्त्री के संग होना चाहिए। अन्य उपलब्ध न हो तो अपनी स्त्री का ही संग करे। उससमय शक्ति विपरीतरतावस्था में हृदय पर विराजमान हो। उन (स्त्रियों) के हाथ से ही लाये गये पुष्प, जल, भोज्य पदार्थों को देवी को निवेदित करे।।१०-११।।

स्त्री द्वेषो नैव कर्त्तव्यो विशिष्टपूजनं महत् ।।१२।।

स्त्री से कभी द्वेष नहीं करना चाहिए अपितु उनकी विशेष पूजा करनी चाहिए।।१२।।

जपस्थाने महाशंखं निवेश्योर्ध्वं जपं चरेत् ।
स्त्रियं गच्छन्स्पृशन्पश्यन् विशेषां कुलजां शुभाम् ।।१३।।
भक्ष्यताम्बूलमन्याश्च भक्ष्यद्रव्यान् यथारुचीन् ।
भुक्त्वाअशेष भक्ष्यं च भुक्ता भक्ष्यं चरेज्जपम् ।।१४।।

जपस्थान पर महाशंख (कपाल) को स्थापित कर उसके ऊपर स्त्रियों, विशेष कर कुलजा (कुलमार्ग निर्दिष्ट) स्त्रियों को चलते, घूमते, देखते हुए भक्ष्य (नैवेद्य), ताम्बूलादि तथा अपनी रुचि के अनुसार भक्ष्य द्रव्यों का स्वयं भोजन कर तथा कुलजा द्वारा भोजन कर लिये जाने पर साधक जप करे।।१३-१४।।

दिक्कालनियमो नात्र स्थित्यादि नियमो न च ।
जपे न कालनियमो नार्चादिषु बलिष्वापि ।।१५।।

इसमें दिशा और काल सम्बन्धी कोई नियम या प्रतिबन्ध नहीं है, एवं न स्थिति आदि के सम्बन्ध में ही कोई नियम है। जप में, अर्चा में तथा बलि आदि में समय का कोई नियम नहीं है (संभवत: यह साधना की दृग्ि से है अन्यथा काम्यकर्मों की दृष्टि से तो दिक्काल स्थिति का विचार अपेक्षित ही है)।।१५।।

स्वेच्छा नियममुक्तोऽत्र महामंत्रस्यसाधने ।।१६।।

महामन्त्रों के साधन में स्वेच्छा अर्थात् विधिनिषेधरहित नियमबन्ध-मुक्तसाधना ही श्रेष्ठ मानी गयी है।।१६।।

वस्त्रासनस्थानगेहदेहस्पर्शादिवारिणा ।
शुद्धिं न चर्चयेदत्र निर्विकल्पमनश्चरेत् ।।१७।।

उससमय वस्त्र, आसन, असन (भोजन), स्थान, गेह (निवास), देह (शरीर) आदि की जल से स्पर्श (मार्जन) आदि शुद्धि न करे, अपितु निर्विकल्पमन (समाहितचित्त) से जपार्चनादि सम्पन्न करना चाहिए।।१७।।

सुगन्धिश्वेत लोहित्य कुसुमैरर्चयेद्दलैः ।
बिल्वैर्मरुवकाद्यैस्तु तुलसीवर्जितैः शुभैः ।।१८।।

अर्चन के समय लाल या सफेद रङ्ग के सुगन्धित पुष्पों, पत्रों, बेल, मरुवक आदि सुन्दर पत्रों से जिनमें तुलसीपत्र न हो, पूजन करना चाहिए।।१८।।

नाधर्मो विद्यते सुभ्रू किं चिद्धर्मोमहद्भवेत् ।
स्वेच्छा चारोऽत्र गदितः प्रचरेद्धृष्टमानसः ।।१९।।

हे सुन्दर भौहों वाली! ऐसा करने में कुछ भी अधर्म नहीं है, अपितु महान् धर्म होता है। इस पद्धति में स्वेच्छाचार ही आचार कहा गया है, अतः साधक को प्रसन्नमन से उसका आचरण करना चाहिए।।१९।।

इत्याचारपरः श्रीमान् जपपूजापरायणाः ।
पालकः परतत्त्वानां परतत्त्वे प्रलीयते ।।२०।।

इसप्रकार के पूर्वोक्त आचार में तत्पर हो, जप, पूजा बलिदानादि में परायण, श्रीमान्, साधक, परतत्त्व का पालन अर्थात् परतत्त्वों की सेवा-अर्चा करता हुआ परतत्त्व में ही लीन हो जाता है।।२०।।

कौलतन्त्रेऽपि—कौलतन्त्र में भी कहा गया है।

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि कौलिकाचरणं यथा ।
पाने भ्रान्तिर्भवेद्यस्य घृणास्याद्रक्तरेतसोः ।।२१।।
शुद्धौ चाशुद्धताभ्रांतिः पापशंका च मैथुने ।
सभ्रष्टं पूजयेद्देवीं चंडीमंत्रं कथं जपेत् ।।२२।।

हे देवि! सुनो, कौलिकों का जैसा आचरण होना चाहिए, उसे मैं कहूँगा—

जिसके मन में पानकर्म (तीर्थादि सेवन) के प्रति भ्रान्ति (सन्देहपूर्ण अश्रद्धा), रक्त और वीर्य के प्रति घृणा, शुद्धि (मांस) के प्रति अशुद्धि, तथा मैथुन के प्रति पाप की शंका होती है, वह साधक भ्रष्ट होता है। ऐसा भ्रष्टसाधक देवी की पूजा और चंडीमंत्र कैसे जप सकता है? अर्थात् वह चंडीदेवी के पूजन एवं जप का अधिकारी नहीं हो सकता।।२१-२२।।

रोगी दुःखी भवेद्देवि रौरवं नरकं व्रजेत् ।
पंचमाच्चापरं नास्ति शाक्तानां सुखमोक्षयोः ।।२३।।
भगरूपा च सा देवी रेतः प्रीता सदानघे ।
रेतसा तर्पणं तस्य मद्यै मांसैः सदानघे ।।२४।।

उपर्युक्त भ्रष्टसाधक रोगी व दुःखी होता है तथा मृत्यु के उपरान्त रौरवनरक में जाता है। शाक्तों को सुख और मोक्ष देने के लिए पाँचवें तत्त्व से श्रेष्ठ कुछ नहीं है। क्योंकि देवी स्वयं भगस्वरूपिणी हैं। हे अनघे! रेतस् से सदा प्रसन्न होती हैं। हे अनघे! रेतस् से और मांस से उनकी सदैव तृप्ति होती है।।२३-२४।।

केवलैः पंचमैर्देवि सिद्धो भवति साधकः ।
ध्यात्वा कुंडलिनीं शक्तिं रमन् रेतोविमुंचयन् ।।२५।।

अमंत्रा च यदा नारी बलाद्यत्नात्तु लभ्यते ।
आत्मदेहस्वरूपेण तत्कर्णे मंत्रमुच्चरेत् ।।२६।।
ततः साशक्तिरूपास्याद्भुक्तिमुक्ति प्रदायिनी ।।२७।।

हे देवि! केवल पाँचवें के प्रयोग से ही साधक सिद्ध हो जाता है। कुण्डलिनीशक्ति का ध्यान करते हुए रमणपूर्वक रेतस् करना चाहिए। इस कार्य हेतु शक्ति यदि अमन्त्रा, दीक्षा विहीना है तो वह या तो बलपूर्वक उपलब्ध होती है या यत्न से उपलब्ध होती है। उसे आत्मदेहस्वरूप अर्थात् एकाकारावस्था में ही उसके कानों में मन्त्रोपदेश करे तब वह नारी शक्तिस्वरूप हो भोग और मोक्ष दोनों ही प्रदान करने वाली हो जाती है।।२५-२७।।

रम्भाशच्युर्वशी मुख्या या नारी गगने भुवि ।
पाताले या स्थिता या च तासां नाथस्तु कौलिकः ।।२८।।

रम्भा, शची, उर्वशी आदि जो भी श्रेष्ठ नारियाँ आकाश में, पृथ्वी पर, या पाताल में कहीं भी स्थित हैं, उन सबका स्वामी वह कौलिक (कुलमार्गीसाधक) हो जाता है।।२८।।

तस्या विपर्यया नार्यस्तस्य शृणु प्रिये विधिम् ।।२९।।
गुरुरेव शिवः साक्षात् तत्पत्नी तत्स्वरूपिणी ।
मनसा कर्मणा वाचा रमणं तत्र वर्जयेत् ।
तस्यां एव पदे भक्तो मुक्तिं प्राप्य परं व्रजेत् ।।३०।।

हे प्रिये! उसके विपरीत जो नारियाँ हैं, उनसे सम्बन्धित विधि (आचार) सुनो। गुरु साक्षात् शिव ही होता है। उसकी पत्नी उसी का स्वरूप होती है। अत: मन से, वाणी से, कर्म से, किसी भी प्रकार, उससे रमण न करे। उसके चरणों में स्थान ग्रहण कर भक्त (साधक), मुक्तिप्राप्त कर परमसत्ता को प्राप्त कर लेता है।।२९-३०।।

गुरुस्नुषा च तत्पत्नी तथा च मंत्रपुत्रिका ।
एतस्या रमणं वर्ज्यं ब्रह्मघ्नं मानसेन तु ।।३१।।

गुरु की पुत्री, गुरु की पत्नी, मन्त्र ग्रहण करने वाली कन्या (शिष्या) , इनके साथ भी रमण न करे। इनसे मानसिक रमण करने वाला भी ब्रह्महत्या का दोषी होता है।।३१।।

कौलिकानां च पत्नी या सा साक्षादीश्वरी भवेत् ।
तस्या रमणमात्रेण कौलिको नारकी भवेत् ।।३२।।

जो कौलिकों की पत्नी होती है, वह साक्षात् ईश्वरीस्वरूपिणी होती है। इससे उनसे रमणमात्र से ही साधक नरक का भागी होता है। (यहाँ प्रथम कौलिक शब्द गुरु व द्वितीय कौलिक शब्द साधक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है)।।३२।।

मातापि गौरवाद्वर्ज्या अन्या या विहितास्त्रियः ।
दूतीयागे च कर्त्तव्या विचार्यमनुवित्तमैः ।।३३।।

माता को उनके गौरव को ध्यान में रखकर वर्जित करना चाहिए। इनके अतिरिक्त जो विहित स्त्रियाँ हैं, उनका उपयोग, उत्तम मन्त्रवेत्ताओं से विचारपुरस्सर दूतीयाग हेतु करना चाहिए।।३३।।

अन्यस्थाने विचारे च देव्याः शापः प्रजायते ।
शिवहीना च या शक्तिः दूरतः परिवर्जयेत् ।।३४।।

अन्य स्थानों पर विचार करने से देवी का शाप मिलता है। यदि कोई शिव से हीन शक्ति (विधवा स्त्री) हो तो उसे दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए।।३४।।

अभिषेकाद्भवेत्छुद्धिर्मंत्रस्योच्चारणाद्रुतौ ।
मपंचमेन देवेशि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।३५।।

हे देवेशि! कानों में मन्त्रोच्चारपूर्वक अभिषेक से शीघ्र शुद्धि होती है तथा पाँचवें मकार के प्रयोग से सभीप्रकार के पापों से साधक मुक्त हो जाता है।।३५।।

केवलेनाद्य योगेन साधको भैरवो भवेत् ।
द्वितीयेन महेशानि पूजको ब्रह्मरूपभाक् ।।३६।।

हे महेशानि! पहले मकार के योग से साधक भैरव स्वरूप हो जाता है। द्वितीय मकार के उपयोग से पूजक (साधक) ब्रह्मरूप का भागी हो जाता है।।३६।।

केवलेन तृतीयेन महाभैरवतां व्रजेत् ।
चतुर्थेन च तत्त्वेन भुविपूज्यैकनायकः ।।३७।।
परात्परतरं यांति मम तुल्यः परेश्वरि ।
पंचमेन भवेद्देवि सर्वसिद्धिपरायणः ।।३८।।

हे परमेश्वरी! केवल तृतीय मकार के सेवन से साधक महाभैरवत्व को प्राप्त करता है। चतुर्थतत्त्व के उपयोग से वह पृथिवी में एकमात्र

नायक, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ होता हुआ मेरे समान हो जाता है। पंचम मकार के उपयोग से वह सभी सिद्धियों का परायण हो जाता है॥३७-३८॥

इत्येदं कथितं देवि सुगोप्यमपि यत्नतः ।
न देयं पशवे देवि कुलनिन्दापरायणः ।।३९।।

हे देवि! यह मैंने तुमसे जो कहा है वह यत्नपूर्वक अत्यन्त गोपनीय है। हे देवि! इस रहस्य को कुलनिंदा में रत, पशुप्रवृत्ति (पश्वाचारी) साधक को नहीं देना चाहिए॥३९॥

कुलान्तरे च—कुलान्तर में भी कहा है।

कुलाचारगृहं गत्वा भक्त्या पापविशुद्धये ।
याचयेदमृतं चान्नं तदभावे जलं पिबेत् ।।४०।।

कुलाचारगृह (कुलाचारी साधक के घर) जाकर अपने पाप से शुद्धिहेतु भक्तिपूर्वक याचना करनी चाहिए। उससे अमृत, अन्न आदि की याचना करे। यदि वह न उपलब्ध हो तो वहाँ जल ही पी ले॥४०॥

कुलाचारेण मद्भक्त्या दत्तं तदमृतम् भवेत् ।
नमस्कृत्वा तु गृहणीयादन्यथा नरकं व्रजेत् ।।४१।।

कुलाचारी के द्वारा मेरी भक्ति से सन्तुष्ट हो जो कुछ भी दिया जाता है, वही अमृत हो जाता है। उसे नमस्कार करके सादर ग्रहण करे अन्यथा प्राणी नरक में जाता है॥४१॥

अन्यत्रापि—अन्यत्र भी कहा है।

वृथा न गमयेद् कालं द्यूतक्रीडादिना सुधीः ।
गमयेदनिशं कालं जपयागस्तवादिषु ।।४२।।

बुद्धिमान् साधक अपना समय जुआ आदि व्यसनों में व्यर्थ न गँवाये। उसे अपने दिन-रात का समय जप, यज्ञ, स्तुति आदि में व्यतीत करना चाहिए॥४२॥

प्रत्यक्षे वा परोक्षे वा प्रत्यहं प्रणमेद्गुरुम् ।
गुरोरग्रे पृथक् पूजामद्वैतं च विवर्जयेत् ।।४३।।

प्रत्यक्ष (गुरु की उपस्थिति) या परोक्ष (गुरु की अनुपस्थिति में) गुरु को प्रतिदिन आदरपूर्वक प्रणाम करना चाहिए। गुरु, इष्ट का स्वरूप होता है, अतः अद्वैतबोध के कारण उसके सुलभ रहते हुये, उनकी उपेक्षा कर, अन्य कोई पूजा न करे॥४३॥

दीक्षां व्याख्यां प्रभुत्वं च गुरोरग्रे विवर्जयेत्।
गुरुशय्यासनं पीठं पादुकोपानहौ तथा।।४४।।
स्नानोदकं तथा छायां लंघनं नैव कारयेत्।
गुरु नाम्ना न भाषेत जपकालादृते प्रिये।।४५।।

उनके आगे बिना उनकी अनुमति के किसी अन्य को दीक्षादान, व्याख्या या निज प्रभुत्व का प्रदर्शन न करे। गुरु की शय्या, आसन, पीढ़ा, पादुका, जूता, स्नान किये हुए जल या छाया को न लाँघे। हे प्रिये! जप के अतिरिक्त समय में गुरु का नाम न ले।।४४-४५।।

श्रीनाथ देवता स्वामी विवादे साधने वदेत्।
उत्पादक ब्रह्मदात्रोर्गरीयान् मन्त्रदः पिता।।४६।।
तस्मान्मन्येत्तथा जातं पितुरप्यधिकं गुरुम्।
कुलाचारं गुरुं देवं मनसापि न निंदयेत्।।४७।।

श्रीनाथ (श्रीनाथादि गुरुजन, भगवान् विष्णु), देवता, राजा या स्वामी इनका नामोच्चारण किसी विवाद में या साधना के समय ही होना चाहिए, अन्यथा नहीं। उत्पादक पिता की अपेक्षा ब्रह्मज्ञान देने के कारण मन्त्रदाता गुरु गरिमामय होता है, इसीलिए जन्मदाता पिता से भी गुरु को अधिक मानना चाहिए। कुलाचारीगुरु की प्रत्यक्ष कौन कहे, मन से भी निन्दा न करे।।४६-४७।।

कुलस्त्रीवीरनिन्दा च वर्जयेन्मतिमान्सदा।।४८।।
अन्तः शाक्ताः बहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः।
नानारूपधराः कौलाः विचरंति महीतले।।४९।।

बुद्धिमान् साधक सदैव कुलस्त्री व वीरनिंदा से भी अपने को अलग रखे। कौल (कुलमार्गी) साधक अन्तःकरण से शाक्त, बाहरी वेश, भस्मादि द्वारा शैव तथा सभा (समाज) में अपने को वैष्णव मानते हुए अनेक रूप धारण कर पृथिवी पर विचरण किया करते हैं।।४८-४९।।

लिंगागमे च—लिंगागम में भी कहा है।

गुरुणालोकितः शिष्यः उत्तिष्ठेदासनं त्यजेत्।
गुरुणा सदसद्वापि यदुक्तं तन्न लंघयेत्।।५०।।

गुरुद्वारा देखे जाने पर शिष्य शीघ्र ही अपना आसन छोड़ कर उठ जाये। गुरु के द्वारा जो भी उचित-अनुचित आदेश किया जाये, शिष्य उसका उल्लंघन न करे।।५०।।

रभसं मैथुनं मिथ्यां यो वदेद्गुरुमन्दिरे ।
स याति नरकं घोरं भैरवेणेति भाषितम् ।।५१।।

गुरु के मंदिर (गृह) में जो क्रोध या मैथुन करता है या झूठ बोलता है वह व्यक्ति घोर नरक में जाता है। ऐसा भैरव के द्वारा कहा गया है।।५१।।

संक्रांति नवमी पूर्णा चाष्टमी च चतुर्दशी ।
एकादशी व्यतिपाते कर्मलोपं न कारयेत् ।।५२।।

संक्रांति, नवमी, पूर्णा (पूर्णिमा या अमावस्या), अष्टमी, चतुर्दशी, एकादशी एवं व्यतिपात में कर्मलोप न करे।।५२।।

तत्त्वहीनं कृतं कर्म जपकर्म च निष्फलम् ।
शांभवी कुप्यते तेभ्यो ब्रह्महत्या दिने दिने ।।५३।।

जो साधक तत्त्वों के अभाव में, पंचमकारों के बिना जो अर्चनकर्म या जपकर्म करता है, वह सब निष्फल हो जाता है। शाम्भवी, शम्भुपत्नी, देवी उनसे क्रोधित हो जाती हैं तथा उन्हें प्रतिदिन ब्रह्महत्या का पाप लगता है।।५३।।

भावचूडामणौ–भावचूड़ामणि में कहा है।

एकाकी निर्जने देशे श्मशाने निर्जने वने ।
शून्यागारे नदीतीरे निःसंगो विहरेन्मुदा ।।५४।।

निर्जनदेश में, श्मशानभूमि में, निर्जनवन में, शून्यगृह में, नदी के तट पर, बिना किसी के संग लिए, एकाकीभाव से साधक प्रसन्नतापूर्वक विचरण करे।।५४।।

वीराणां जपकालस्तु सर्वदैव प्रशस्यते ।
सर्वदेशे सर्वपीठे कर्त्तव्यं नात्र संशयः ।।५५।।

वीरसाधकों के लिए सभी समय जपहेतु उचित कहा गया है। उन्हें सदैव, सभी स्थानों, सभी क्षेत्रों में साधना करनी चाहिए। अर्थात् वे सर्वत्र, सर्वदा साधना के अधिकारी हैं। इसमें कोई संशय नहीं है।।५५।।

तदुक्तं–वही कहा है।

स्वकुलांते पुरश्चर्या कार्यारात्रौ न चान्यथा ।
वेदहीनो द्विजे देव यथा न श्रुति संस्क्रिया ।।५६।।
विष्णुभक्तिं विना देवभक्तिर्नैव भवेद्यथा ।
शाक्तं ज्ञानं विना मुक्तिर्यथा हास्याय कल्प्यते ।।५७।।

गुरुं विना यथा मंत्रे नाधिकारं कथंचन।
पतिहीना च या नारी सर्वकर्मविवर्जिता ।।५८।।
कुलं विना तथा दिव्यो वीरो वाम साधकः ।
तस्माद्यत्नात्तथा कार्यं यथा स्याद्विनयान्वितम् ।।५९।।

अपने कुलान्त: में रात्रि में पुरश्चर्या सम्पन्न कर लेनी चाहिए। इसके विपरीत आचरण न करे। जिसप्रकार वेद से हीन द्विज, देवता का वेदोक्त संस्कार नहीं कर सकता। जैसे विष्णु की भक्ति के बिना किसी देवता की भक्ति नहीं होती। शाक्ततत्त्व के ज्ञान के बिना मुक्ति की कल्पना हंसी के योग्य मानी जाती है। जैसे गुरु के बिना मन्त्र (साधना) में किसीप्रकार का अधिकार नहीं मिलता। जैसे जो नारी पति से हीन होती है उसे सभी कामों से वर्जित कर दिया जाता है। उसीप्रकार कुलपूजा के बिना दिव्य या वामाचारी साधक, व्यर्थ हो जाता है। इसीलिए प्रयत्नपूर्वक ऐसा करना चाहिए जिससे साधक विनयान्वित (कुलाचार-युत) हो।।५६-५९।।

तन्त्रचूडामणौ च–और **तन्त्रचूड़ामणि** में भी कहा है।

विष्णुभक्तो यथा देवि कुलदीक्षापरो भवेत् ।
पुत्रदाराधनं तस्य नाशयामि न संशयः ।।६०।।

हे देवि! यदि कुलदीक्षापरायणसाधक विष्णुभक्त की तरह आचरण करने लगे तो मैं उसके पुत्र, स्त्री, धन को नष्ट कर देता हूँ, इसमें कोई संशय नहीं है।।६०।।

कुलदेवं द्विजं हित्वा वैष्णवं देशिकं यदि ।
करोति कुलशिष्योऽसौ भ्रष्टो भवति निश्चितम् ।।६१।।

कुलदेव और कुलीनद्विज अर्थात् गुरु को छोड़कर जो साधक वैष्णव देशिक (गुरु) करता है, ऐसा कुलशिष्य (कौलिकशिष्य) निश्चित रूप से भ्रष्ट हो जाता है।।६१।।

हविरारोपमात्रेण वह्निर्दीप्तो यथा भवेत् ।
कुलदेवमुखं तथा दीप्तो भवाम्यहम् ।।६२।।

हविष्य के आरोपण मात्र से जैसे अग्नि प्रदीप्त होती है, वैसे ही कुलदेव के मुखदर्शन से मैं प्रदीप्त होता हूँ।।६२।।

वीक्षणात्पूजनात्होमात्तथादृष्ट्यावलोकनात् ।
यत्किंचित् ज्ञानमात्रेण पशुना निर्जितायतः ।
साधकस्य महाशाप दत्त्वा तस्य हराम्यहम् ।।६३।।

दर्शन से, पूजन से, होम से तथा दृष्ट्यावलोकन से, ज्ञानमात्र से ही पशु (साधक) द्वारा जो कुछ अर्जित किया जाता है, उसका वह सब मैं साधक को महाशाप देकर हरण कर लेता हूँ॥६३॥

पशोर्विद्या समासाद्य यदि पूजापरो भवेत् ।
तस्य वक्त्रं समालोक्य कुलवक्त्रं विलोकयेत् ।।६४।।

पशु से विद्याग्रहण करके यदि साधक पूजापरायण होता है तो उसका मुख देखने के पश्चात् किसी कुलमार्गी का मुँह देखना चाहिए॥६४॥

पशूपदिष्टं यत्किंचित् क्रियते कुलसाधकैः ।
तत्तत्कर्म महादेव अभिचाराय कल्पते ।।६५।।

हे महादेव! पश्वाचारीगुरु के उपदेश से जो कुछकर्म कुलसाधकों द्वारा किये जाते हैं, वे सब अभिचार के निमित्त कृत माने जाते हैं॥६५॥

यदि दैवात् पशोर्विद्यां लभ्यते कुलजैर्नरैः ।
द्विजस्य कौलिकीं प्रार्थ्य पुनर्विद्यामुपालभेत् ।।६६।।

यदि दैववश कुलमार्गी मनुष्य द्वारा पश्वाचारीगुरु से विद्या (दीक्षा) ग्रहण कर ली गई हो तो भी कुलाचारीद्विजगुरु से प्रार्थनापूर्वक पुनः कौलिकीदीक्षा ग्रहण करे॥६६॥

अज्ञानाद्यत् कृतं कर्म नालोच्य कुलकौलिकीम् ।
क्षमस्व मातस्तत्पापं हर देवि कृपां कुरु ।
एवं प्रार्थ्य पुनर्दीक्षां कुर्यात् साधक सत्तमः ।।६७।।

श्रेष्ठसाधक, अज्ञानाद्यत्......कृपां कुरु ऐसी प्रार्थना कर पुनः दीक्षाग्रहण करे।

मन्त्रार्थ–मैंने कौलिकी (कुलकौलमार्ग) का बिना विचार किये जो कुछ अज्ञानवश कर्म किया है। हे माता! आप उन्हें क्षमा करें। तथा कृपा करके उससे हुए पाप को दूर करें। ।६७॥

अन्यदुक्तं तत्रैव–वहीं अन्यत्र कहा गया है।

मनसा वचसादेव कुलाकुलगुरुं यदि ।
निंदां करोति शापो मे तस्योपरि विजायते ।।६८।।

चाहे कोई कुलमार्गी हो या अकुलमार्गी, यदि कोई साधक अपने मार्गानुयायी गुरु की निन्दा करता है तो मेरा शाप उसपर लगता है॥६८॥

एतच्छास्त्रप्रसंगेऽपि एतत् पुस्तकवाचनम् ।
पशोरग्रे न कर्त्तव्यं प्राणांतेऽपि कदाचन ।।६९।।

कदाचित् प्राणांत की भी स्थिति आ जाय तो भी इस शास्त्रप्रसंग का या इस पुस्तक का वाचन पशु (पश्वाचारी) के सम्मुख न करे॥६९॥

कृत्वा सूर्यमुखं दृष्ट्वा स्मर्तव्यः कुलनायकः ।
पशूणां च सहालापात्सहशय्या समासनम् ।।७०।।

पशुओं के साथ वार्तालाप, एक शय्या पर साथ-साथ शयन या एक आसन पर बैठने का अवसर आ ही जाय तो प्रायश्चित्त हेतु, सूर्यदेव के मुख को देखते हुए अपने कुलनायक कुलगुरु का ध्यान करे॥७०॥

संसर्गश्चैक मे देव कुलीनस्य महात्मनः ।
पातकं न तु वै तेषां संक्षयेत्पुण्यराशयः ।
प्रभवन्ति न तीर्थानि न गंगा न च काशिका ।।७१।।

क्योंकि ऐसे लोगों का एक ही संसर्ग कुलीन महात्माओं के पातक को दूर नहीं करता अपितु उनकी पुण्यराशि को ही नष्ट करता है। गंगा, काशी आदि तीर्थ भी उसके लिए प्रभावशाली नहीं होते॥७१॥

महाविद्याजपादेव चत्वारि पातकानि च ।
नश्यन्ति न च संसर्गः क्षयं याति कदाचन ।।७२।।

महाविद्या के जप से चारप्रकार के पाप तो नष्ट हो सकते हैं किन्तु संसर्गदोष का क्षय नहीं होता॥७२॥

अज्ञानात्पशुसंसर्गो यदि दैवात्प्रजायते ।
तदा द्वादशवर्षाख्यं व्रतार्थं यत्नमाचरेत् ।।७३।।

अज्ञानवश या दुर्दैववश यदि पशु का संसर्ग हो जाये तो उस समय बारहवर्षीय व्रत के लिए प्रयत्न करे॥७३॥

*** प्रायश्चित्तकथन ***

कुलीनानां समीपस्थः कुलसेवापरायणः ।
उच्छिष्टभोजिनस्तस्मै प्रयच्छेन्निजमंत्रकम् ।।७४।।

बारहवर्षपर्यन्त कुलीनकौल गुरुओं के समीप रहकर कुलसेवा में निरन्तर रहता हुआ, उनके उच्छिष्टभोजन का सेवन कर अपने मंत्रको गुरु को समर्पित करे॥७४॥

तदंते तं समभ्यर्च्य रत्नाद्यैः परितोष्य च ।
शुचिर्भूत्वा पुनर्विद्यां गृहीत्वा सिद्धिमाप्नुयात् ।।७५।।

इसप्रकार प्रायश्चित्त के द्वादशवर्ष पूर्ण होने पर अन्त में उस कौलिकसाधक

का पूजन करे तथा रत्नादि की दक्षिणा दे। उन्हें सन्तुष्ट करने के पश्चात् पवित्र होकर पुनः दीक्षा प्राप्तकर साधक सिद्धि प्राप्त करता है॥७५॥

व्रतासक्तो यदि भवेत्सुवर्णं परितोषकृत् ।
दद्यात्कुलाय पापानां क्षयाय कुलसाधकः ।।७६।।

यदि व्रत में सफल हो जाय तो पाप के नाशहेतु कुलसाधक अपने गुरु को परितोषप्रद (प्रचुरमात्रा में) स्वर्णदान करे॥७६॥

ज्ञानात् संसर्गमासाद्य शुचिमाप्नोति नैव च ।
परत्र भाषकाकादि योनिमालिख्य साधकः ।
नानाक्लेशसमायुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ।।७७।।

जो साधक जानबूझ कर ऐसा संसर्ग करता है, वह किसीप्रकार से भी पवित्र (पापरहित) नहीं होता। इसे अन्यत्र करने वाला साधक भाषकाक आदियोनि (अधोमुख त्रिकोण) का लेखन (सेवन) कर अनेक कष्टों को भोगता हुआ नरक में जाता है॥७७॥

न चैवं दीक्षामेत्तस्मै न चास्य दर्शनं चरेत् ।
ममशास्त्रकथंचात्र प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।।७८।।
कर्मणा मनसा वाचा पशुशास्त्रस्य पूजनम् ।
प्रकुर्वंति महापापास्त्याज्यास्ते कुलपांशुलाः ।।७९।।

न तो उसे दीक्षा दे और न उसका दर्शन ही करे। ऐसे लोगों से मेरे सम्बन्धी (शाक्त) शास्त्रों का कथन प्रयत्नपूर्वक नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति मन, वाणी या कर्म से पशु (पश्वाचारी) शास्त्रों का पूजन करते हैं वे कुलघ्न हैं, महापापी हैं तथा सर्वथा, त्याग देने योग्य हैं॥७८-७९॥

निर्जीव काष्ठलोष्ठे वा शर्करायां तृणेऽपि वा ।
सर्वत्रर्चिता चाहं न पशोर्मन्त्रविग्रहे ।।८०।।

निर्जीव लकड़ी, मिट्टी, कंकण या घास सभी जगह अर्थात् कहीं भी मेरी अर्चा की जा सकती है, किन्तु पश्वाचारी पूजित मूर्त्ति से नहीं॥८०॥

चेतनाधिष्ठितं सर्वं सुखं दुःखं प्रकल्पितम् ।
तत्रैव चेतनाभावो नियमो नास्ति तादृशः ।।८१।।

सुख-दुःख सभी चेतना अधिष्ठित माने गये हैं, जहाँ उत्कट् चेतना का भाव होता है वहाँ नियम नहीं मिलता॥८१॥

प्रसन्ना तेन गोप्तव्याः कुलीनैःसिद्धिहेतवो ।।८२।।

प्रसन्नता ही मुख्य है, इसलिए कुलीन (कौलिक) साधकों को सिद्धिप्राप्ति हेतु गोपनीयता, अवश्य रखनी चाहिए।।८२।।

अन्यदुक्तं तत्रैव—वहीं अन्यत्र भी कहा गया है।

दीक्षायां कुलपूजायां शिष्यवे यदि वा गुरौ ।
लज्जापरं कुलं तत्र नित्यापि तत्र निर्वृता ।।८३।।
अधस्तादृष्टिपातेन तस्य विद्याह्यधोमुखी ।
निमीलनान्मृताविद्या रोदनान्मारये ध्रुवम् ।।८४।।
पार्श्वावलोकनेनैवव्याधिदारिद्र्यपीडिता ।
चतुर्दिगावलोकेन उच्चाटनगतो भवेत् ।।८५।।

दीक्षा में या कुलपूजा के अवसर पर शिष्यत्व में गुरु में, कुलादि लज्जा का अनुभव करे तो उससमय नित्या भी निवृत्त हो जाती है। यदि उससमय नीचे की ओर दृष्टि हो तो उसकी विद्या (साधना) अधोमुखी हो जाती है। नेत्र मूंद लेने से विद्या, मृत हो जाती है। रोने से निश्चित रूप से मृत्यु का कारण होती है। बगल में देखने से रोग एवं दरिद्रता से पीड़ित होती है। चारोंदिशाओं में देखने से उच्चाटन की स्थिति बनती है (यह कुल नायिका के अर्थ में आता है)।।८३-८५।।

एतादृशं कुलंवत्स यदि कुर्यात्कथंचन ।
तदा कुलगुरुं प्रार्थ्यकारयेद्दीक्षणं ततः ।।८६।।
उपदिष्टो यदा देव तदा पुत्रांश्च कन्यकाम् ।
पूजार्हा च यदा देवि तदा माता न संशयः ।।८७।।

हे वत्स! इसप्रकार का यदि कुल किसीप्रकार उपलब्ध हो जाय तो सर्वप्रथम कुलगुरु की प्रार्थना कर दीक्षण का कार्य सम्पन्न करे। जब उसे उपदेश दिया जाय तो वह पुत्र या पुत्री भाव से देखी जानी चाहिए। यदि कुल पूजनीय हो तो माता के रूप में इसमें कोई संशय नहीं है।।८६-८७।।

सर्वथा पितृपुत्राभ्यां मूलयोगो न दृश्यते ।
तत्कृते पापबुध्या वै उभौनरकगामिनौ ।।८८।।

पिता-पुत्र में कभी भी मूलयोग (संगम) नहीं देखा जाता। ऐसे सम्बन्धों में पापबुद्धि रखने वाले गुरु-शिष्य दोनों ही नरकगामी होते हैं।।८८।।

चुम्बके चान्यशास्त्रज्ञे पशुश्चमेव भैरव ।
नवक्तव्यं नवक्तव्यं न वाच्यं वा कथंचन ।।८९।।
एवं कृते गुरो शिष्ये मम शापो भविष्यति ।।९०।।

हे भैरव! चुम्बक से, अन्य शास्त्र के जाननेवाले पशु से इसे न कहे, यह शास्त्र ऐसे लोगों से नहीं कहे जाने योग्य है। किसीप्रकार भी नहीं कहे जाने योग्य है। ऐसा करने वाले गुरु एवं शिष्य दोनों को ही मेरा शाप होगा।

चुम्बके नाना मंत्राग्रहिणे साधकाभिमानिन इत्यर्थः–यहाँ चुम्बक शब्द का अर्थ अनेक मन्त्रों की कतिपय गुरुओं से दीक्षा ले अपने को साधक मानने वाले उपासकों से है (यहाँ एक ही भाव बोधक शब्द तीनबार आग्रह का बोधक है। यह सबकुछ कौलिक की श्रेष्ठतासूचन हेतु ही है)।।८९-९०।।

तदुक्तं आगमान्तरे–जैसा कि अन्य आगम में कहा है।

पूर्वमन्त्रपरित्यागादन्यमन्त्र परिग्रहात् ।
यः करोति च कौलज्ञो सकथं ममसाधकः ।।९१।।

जो कौलमार्ग का जाननेवाला पहले गुरु द्वारा दिये गये मन्त्र को छोड़, अन्य को ग्रहण करता है, वह मेरा साधक कैसे हो सकता है? अर्थात नहीं हो सकता।।९१।।

नाना मंत्रं न द्रष्टव्यं चित्त भ्रान्तिर्भवेद्यतः ।
गुरोपदिष्टमादाय तत्त्वेन परिपालयेत् ।।९२।।इति।

अनेक मन्त्रों को न देखे क्योंकि इससे चित्त में भ्रान्ति उत्पन्न होती है, गुरु ने जिस मन्त्र की दीक्षा दी है, उसे ही ग्रहण कर तत्त्व मानते हुए पालन करे, आचरण करे।।९२।।

एवं कृते सुदीक्षितः कुलगामिनी इत्यर्थः–इसप्रकार के सुदीक्षित कुलगामी ऐसा अर्थ समझना।

शैवागमे च–शैवागम में भी कहा है।

शक्त्युच्छिष्टमविचार्य पिवेच्चक्रेश्वरो यदि ।
घोरं च नरकं याति कुलमार्गात्पतंति च ।।९३।।

यदि चक्रेश्वर होकर भी कोई शक्ति के उच्छिष्ट का विचार करे तो वह घोर नरक में जाता है तथा कुलमार्ग से पतित होता है।।९३।।

तस्माद्विचार्य यत्नेन शक्त्युच्छिष्टं पिबेत् द्विजः ।
आनन्दकारयेद्धीरःस्तवं निर्भांतितः पठेत् ।।९४।।

इसे विचारकर द्विज (साधक), प्रयत्नपूर्वक शक्ति का उच्छिष्ट पान करे। इसप्रकार से आनन्दावस्था में आकर साधक धैर्यपूर्वक स्पष्टतः स्तवपाठ करे।।९४।।

शक्तिः शिवः शिवः शक्तिः शक्तिर्ब्रह्माजनार्दनः ।
शक्तिरिन्द्रो रविः शक्तिः शक्तिश्चन्द्रो ग्रहाध्रुवं ।
शक्तिरूपं जगत्सर्वं यो न जानाति नारकी ।।९५।।

शक्ति शिव है, शिव ही शक्ति है। शक्ति ही ब्रह्मा और विष्णु भी है। शक्ति इन्द्र है, शक्ति सूर्य है, शक्ति चन्द्रमादि ग्रह है। यह निश्चत है। यह समस्त जगत् ही शक्ति का स्वरूप है। जो इसे नहीं जानता (मानता) वह नरकगामी है। (शक्ति को भोग्यादृष्टि से देखने वाला अवश्य नरकगामी होता है)।।९५।।

वीरतन्त्रेऽपि–वीरतन्त्र में भी कहा है।

स्नानादिमानसं शौचं मानसं प्रवरोजपः ।
पूजनं मानसं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् ।
सर्व एव शुभः कालोनाशुभो विद्यते क्वचित् ।।९६।।

मानसिक स्नानादि शौच क्रियाएँ, मानसिकजप श्रेष्ठ होता है। मानसिकपूजन एवं तर्पणादि दिव्य होते हैं। इनके लिए सभी समय शुभ है, कुछ भी अशुभ नहीं होता।।९६।।

रुद्रयामलेऽपि–रुद्रयामल में भी कहा है।

पशोः संभाषणाद्देवि मन्त्रसिद्धिर्न जायते ।।९७।।

हे देवि! पशु से सम्भाषणमात्र से ही सिद्धि नहीं होती, नष्ट हो जाती है।।९७।।

पशुः द्विविधः अदीक्षितो भवेत्पशुः दीक्षिता कुलजाचार निन्दकौ द्विविधः पशुः।

ये पशु दोप्रकार के कहे गये हैं। दीक्षाहीन व्यक्ति भी पशु है। जो दीक्षित हो, किन्तु कुलसम्बन्धी आचार, कुलाचार की निन्दा करता हो, वह भी पशु है। इसप्रकार से ये दो प्रकार के पशु कहे गये हैं।

गोलकेन सहालापात् पशुभावेन संगतान् ।
न सिद्ध्यन्ति महेशानि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।९८।।

हे महेशानि! गोलक के साथ वार्तालाप एवं पशुभाव से संग करने वाले कभी भी सिद्धि नहीं प्राप्त करते। यह सत्य है। मैं सत्य ही कह रहा हूँ।।९८।।

विकल्पतो न सिद्ध्यन्ति नो कदाचिच्च सर्वथा ।
तस्मादेतत्परित्यज्य सिद्धिस्यात्केवलाज्जपात् ।।९९।।

विकल्पों (तर्क-वितर्क) के रहते कभी भी किसी प्रकार की सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए उपर्युक्त दोषों को छोड़ देना चाहिए तथा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि केवल मन्त्रजप से ही सिद्धि संभव है॥९९॥

वीरहत्या वृथापानं वीरजाया निषेवणम् ।
महापातकमित्याहुः कौलिकानां कुलेश्वरी ॥१००॥

हे कुलेश्वरी! वीर की हत्या, चक्रार्चनातिरिक्त केवल पीने के लिए ही व्यर्थ में तीर्थ (मद्य) सेवन, वीरसाधक (गुरु आदि) की पत्नी का भोग, कौलिकों के लिए महापाप कहे गये हैं॥१००॥

अर्थाद्वा कामुकाद्वापि लौल्यादपि च यो नरः ।
लिंगयोनिरतो मंत्री रौरवं नरकं व्रजेत् ॥१०१॥

अर्थप्राप्ति हेतु या कामुकतावश अथवा मात्र चञ्चलतावश जो मन्त्रसाधकव्यक्ति, (लिंगयोनिआसक्त) पंचम मकार सेवी होता है, वह रौरवनरक में जाता है॥१०१॥

*** शिवा बलि विधान ***

कुलचूडामणौ च—कुलचूड़ामणि में भी कहा है।

बिल्वमूले प्रान्तरेवा श्मशाने वापि साधकः ।
मांसप्रधान नैवेद्यं संध्याकाले निवेदयेत् ॥१०२॥
काली कालीतिवक्तव्यं तत्रोमा पशुरूपिणी ।
पशुरूपा समायाति परिवारगणैः सह ॥१०३॥
भुक्तारौति यदीशान्यां मुखमुत्तोल्य सुस्वरम् ।
तदैव सफलं तस्य नान्यथा कुलभूषणम् ॥१०४॥

साधक बेल के वृक्ष के नीचे, जंगल में, या श्मशान में, जहाँ भी संभव हो, जाकर संध्यावेला में मांसप्रधान भोजन, नैवेद्यरूप में स्थापित करे। तत्पश्चात् वह काली-काली ऐसा कहे। इसप्रकार से पुकारने पर उमा, काली, स्वयं शिवा (सिरिन) पशुरूप में अपने परिवार के साथ वहाँ आती है। आकर दिये नैवेद्य का भोजन कर यदि वह ईशानकोण की ओर मुँह उठा कर सुन्दरस्वर में रोती है तो उस कुलभूषण की साधना सफल समझनी चाहिए, अन्यथा नहीं॥१०२-१०४॥

अवश्यमन्नदानेन नियतं तोषयेच्छिवाम् ॥१०५॥

नियत (मांसयुक्त) अन्नदान से शिवा को अवश्य सन्तुष्ट किया जाना चाहिए (कौलोपासना में शिवा का ही महत्त्व प्रतिपादित है)॥१०५॥

नित्यश्राद्धं यथा सन्ध्यावंदनं पितृतर्पणम् ।
तथैव कुलसेव्यानां नित्यता कुलपूजने ।।१०६।।

जिसप्रकार श्राद्ध, सन्ध्यावन्दन तथा पितरों का तर्पण गृहस्थ द्वारा नित्य किया जाना चाहिए, उसीप्रकार कुलसेवियों, कौलिकों द्वारा कुलपूजा नित्य की जानी चाहिए।।१०६।।

पशुरूपां शिवां देवीं योनार्चयति निर्जने ।
एकया भुंज्यते तत्र शिवाया एव भैरव ।।१०७।।

हे भैरव! जो साधक पशुरूपिणी शिवा देवी का निर्जन में पूजन नहीं करता, वह वहाँ अर्थात् मरणोत्तर जीवन में केवल एक शिवा द्वारा ही खाया जाता है।।१०७।।

पूजनाद्विगुणं कर्मसगुणं साधनेन च ।
तेन सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं साधनं ततः ।।१०८।।

पूजन से दूना कर्मफल सगुण शक्तिसाधना का होता है। अतः सबप्रकार के प्रयत्न से सावधानीपूर्वक उक्त साधना करनी चाहिए।।१०८।।

राजादिभयमापन्ने देशान्तरभयादिके ।
शुभाशुभानि कर्माणि विचिंत्य बलिमाहरेत् ।।१०९।।

राजा आदि का भय उपस्थित होनेपर, देशान्तर-प्रवास का भय उपस्थित होनेपर, शुभ-अशुभ कर्मों में विचार पूर्वक बलिप्रदान करना चांहिए।।१०९।।

गृहण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि ।
शुभाशुभफलंव्यक्ति ब्रूहि गृहण बलिं तव ।
एवमुच्चार्य दातव्यो बलिः कुलजनप्रिये ।।११०।।

गृहण....बलिं तव। इसमन्त्र का उच्चारण करते हुए कुलजन-प्रिय कुलाचारी साधक को उपर्युक्त शिवाबलि प्रदान करनी चाहिए।

मन्त्रार्थ– हे देवि! हे महाभागे! हे शिवे! हे काल और अग्निस्व-रूपिणी! यह आपके लिए बलि है, इसे ग्रहण करें। बलि ग्रहण करके शुभ या अशुभ जो भी फल हो उसे प्रकट करें। आप बोलें।।११०।।

यदि न गृह्यते वत्स तदानैव शुभं भवेत् ।
शुभं तदा भवेत्तस्य भुज्यते तदशेषतः ।।१११।।

यदि शिवा न आवे या आने के पश्चात् भी दी गई बलि को

ग्रहण न करे तो हे वत्स! उस समय अशुभ होता है। शुभ तब होता है जब वह आकर सम्पूर्ण भोजन कर जाये॥१११॥

एवं ज्ञात्वा महादेवि शांतिं स्वस्त्ययनं चरेत् ।।११२।।

हे महादेवि! इसप्रकार से शिवाबलि द्वारा आगतभय के शुभाशुभत्व का विचार कर साधक शान्ति या स्वस्तिवाचन आदि के कर्म सम्पन्न करे॥११२॥

कुलाचारं दक्षिणाख्यं कथितं तव सुव्रते ।
न कस्यचित्प्रवक्तव्यं यदिच्छेत् सिद्धिमात्मनः ।।११३।।

हे सुन्दरव्रतवाली ! यह मेरे द्वारा दक्षिणा नामक देवी का कुलाचार तुमसे कहा गया है। यदि साधक अपनी सिद्धि चाहे तो इसे किसी से भी प्रकट न करे॥११३॥

निर्जने चैव कर्त्तव्यं न चैव जनसन्निधौ ।
किंवा पक्षि पतंगादि दर्शनेनैव कारयेत् ।।११४।।

इसका पालन साधक द्वारा निर्जनस्थान एवं समय में ही किया जाना चाहिए, किंवा पक्षी और पतंगा आदि छुद्रजीव भी देखते हों तो नहीं करना चाहिए। साधना की गुप्तता आवश्यक है॥११४॥

पातालमंडले वापि गह्वरे वा सुयंत्रिते ।
निछिद्रमंडपे वापि कर्त्तव्यं न च सन्निधौ ।।११५।।

पाताल मंडल में, भलीभाँति यंत्रित, ढकी हुई गुफा में, बिना छिद्र वाले मंडप (पूजागृह) में भी कुलाचार का आचरण कर ले किन्तु अन्यों (पश्वाचारियों की) सन्निधि में न करे॥११५॥

कुलपुष्पं कुलद्रव्यं कुलपूजां कुलं जपम् ।
गुरुं कुलपतिं वापि कुलमालां कुलाकुलम् ।
कुलचक्रं कुलध्यानं सर्वथा न प्रकाशयेत् ।।११६।।

कुलपुष्प, कुलद्रव्य, कुलपूजा, कुलजप, कुलगुरु या कुलपति, कुलमाला, कुलाकुल, कुलचक्र, कुलध्यान कभी भी प्रकाशित न करे॥११६॥

प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात् प्रकाशान्निधनं भवेत् ।
प्रकाशात्मृत्युलाभः स्यान्न प्रकाश्यं कदाचन ।।११७।।

क्योंकि इनके प्रकटीकरण से सिद्धिहानि होती है। प्रकाशन से निधन होने की संभावना रहती है। प्रकाशित करने से मृत्युप्राप्ति की संभावना होती है। इसलिए इन्हें कभी भी प्रकाशित न करे॥११७॥

पूजाकाले च देवेशि यदि कोप्यत्र आगतम् ।
दर्शयेद्वैष्णवीं मुद्रां विष्णुन्यासं समाचरेत् ।।११८।।

हे देवेशि! पूजाकाल के समय यदि कोई अनधिकारी आ जाये तो विष्णुमुद्रा का प्रदर्शन करे और विष्णुन्यास का ही आचरण करे।।११८।।

प्रकाशाद्यदि गुप्तिं स्यात्तत्प्रकाशनं न दूषणम् ।
गोपनाद्यदि गुप्तिं स्याद्गुप्तिस्सा न विधीयते ।
कदाचिदंगहानि स्यान्न च व्यक्तिः कदाचन ।।११९।।

प्रकाशन से यदि गोपनीयता बनी रहे तो ऐसे प्रकाशन में कोई दोष नहीं होता, गोपन के बाद भी यदि गोपनीयता अपेक्षित हो तो वह गोपनीयता, गोपनीयता नहीं होती। कहीं-कहीं गोपनीयता के लिए यदि अंग हानि दिखाई गई हो तो उसे व्यक्त करने का प्रयत्न कभी न करे।।११९।।

अथ समयाचारेप्युक्तं—समयाचार में भी कहा है।

श्रृणु पुत्र रहस्यं मे समयाचारमुत्तमम् ।
यद्विनानैव सिद्ध्यन्तिं जन्मकोटि सहस्रसः ।।१२०।।

हे पुत्र! तुम मुझसे उस उत्तम समयाचार नामक रहस्य को सुनो जिसके बिना हजारों करोड़, जन्म होने के बाद भी साधक, सिद्धि को प्राप्त नहीं करता।।१२०।।

मानवः कुलशास्त्राणां कुलचर्यानुचारिणाम् ।
उदार चित्त सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः ।
परनिंदा सहिष्णुःस्यादुपकाररतः सदा ।।१२१।।

साधक को कुलशास्त्रों में वर्णित, कुलचर्या का अनुगामी, गुरुओं के प्रति उदारचित्त और बाह्यरूप से वैष्णवाचार मे तत्पर, दूसरे की निन्दा में सहिष्णु (अनासक्त) किन्तु सदैव पर-उपकारी होना चाहिए।।१२१।।

पर्वते निर्जने वापि एकांते शून्यमंडपे ।
चतुष्पथैकांत शून्ये यदि दैवाद्गतिर्भवेत् ।
क्षणं ध्यात्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद्यथा सुखम् ।।१२२।।

दैव के कारण यदि साधक की पर्वत पर, निर्जनक्षेत्र में, एकान्त में, शून्यमण्डप में, चौराहे पर, पूर्णतः शून्यस्थान में गति हो, साधना की प्रवृत्ति हो तो साधक, क्षणभर ध्यान करे, तब मन्त्रजप करे, नमस्कार करे तत्पश्चात् जहाँ उसको सुख मिले वहाँ जाय।।१२२।।

गृधान् वीक्ष्य महाकालीं नमस्कुर्यादलक्षितः।
क्षेमकरीं तथा वीक्ष्य जम्बुकीं यमदूतिकाम्।
कुरंगश्येनभूकाकौ कृष्णमार्जारमेव च ।।१२३।।
कृशोदरी महाचण्डे मुक्तकेशी बलिप्रिये।
कुलाचार प्रसन्नास्ये नमस्ते शंकरप्रिये ।।१२४।।

गीध, क्षेमकरी, जम्बुकी (सियारिन), यमदूतिका (कौवी) हिरन, बाज, भूकाक (वनमुर्गी) और काली बिल्ली को देखने के बाद अलक्षित (गुप्त) रूप से **कृशोदरी......शंकरप्रिये।** मन्त्र पढ़ता हुआ महाकाली को नमस्कार करे।

मन्त्रार्थ—हे पतलीकमर वाली, हे महाचण्डे! आपके बाल खुले हुए हैं। आपको बलि प्रिय है। आप कुलाचार से पूजे जाने से प्रसन्न-मुख हो जाती हैं। आप शंकर की प्रियपत्नी हैं। ऐसी आपको नमस्कार है॥१२३-१२४॥

श्मशानं च शिवं दृष्ट्वा प्रदक्षिणामनुव्रजेत्।
प्रणम्यानेनमंत्रेण मंत्री सुखमवाप्नुयात् ।।१२५।।
घोरदंष्ट्रे कोटराक्षि किटिशब्द प्रसारिणी।
घुरुघोररवास्फाले नमस्ते चिति वासिनी ।।१२६।।

श्मशान या शव को देख कर मंत्री (साधक) पहले प्रदक्षिणां करे, तदनन्तर **घोरदंष्ट्रे.........वासिनी।** इसमन्त्र से प्रणाम करे, ऐसा करने से वह मन्त्रसाधक सुख प्राप्त करता है।

मन्त्रार्थ—हे भयानक दाँतों वाली, कोटर के समान नेत्रों वाली, किटि शब्द का प्रसारण करने वाली, भयानक घुरघुराहट की आवाज (ध्वनि) से कँपा देने वाली, चितिशक्ति के रूप में सर्वत्र निवास करने वाली (महाकाली) आपको नमस्कार है॥१२५-१२६॥

रक्तपुष्पं तथा वस्त्रं विलोक्य त्रिपुराम्बिकाम्।
प्रणम्यदण्डवद्भूमाविति मन्त्रं पठेन्नरः ।।१२७।।
बन्धूकपुष्प संकाशे त्रिपुरे भयनाशिनि।
भाग्योदयसमुत्पन्ने नमस्ते वरवर्णिनि ।।१२८।।

लालपुष्पों एवं लालवस्त्र को देखकर साधक त्रिपुराम्बिका को भूमि पर दण्ड की भाँति प्रणाम करता हुआ, **बन्धूक.........वरवर्णिनी।** मन्त्र को पढ़े।

मन्त्रार्थ—हे गुड़हल के पुष्प के समान दिखाई देने वाली, भय का नाश करने वाली, श्रेष्ठ रंगवाली, मेरे भाग्योदय के कारण उत्पन्न (सम्मुख उपस्थित) हुई त्रिपुरादेवि आपको नमस्कार है॥१२७-१२८॥

कृष्णपुष्पं तथा वस्त्रं राजानं राजपुत्रकम् ।
ह्रस्त्यश्व रथशस्त्राणि फलकान् वीरपूरुषान् ।।१२९।।
माहिषं कुलदेवं च दृष्ट्वा महिषमर्दिनीम् ।
प्रणम्य जयदुर्गां वा स च विघ्नैर्नलिप्यते ।।१३०।।
जय देवि जगद्धात्रि त्रिपुराद्ये त्रिदैवते ।
भक्तेभ्यो वरदे देवि महिषघ्नि नमोस्तुते ।।१३१।।

कालेपुष्प एवं कालेवस्त्र, राजा, राजकुमार, हाथी, घोड़े, रथ, शस्त्रों, फलकों, वीर पुरुषों, भैंसे और कुलदेवता को देखकर जो साधक **जयदेवि.......नमोस्तुते।** मन्त्र जपता हुआ दुर्गा माता को प्रणाम करता है, वह विघ्नों से लिप्त नहीं होता।

मन्त्रार्थ—हे देवि, आप जगत् का पालन करने वाली, त्रिपुरा, आद्या, स्वर्ग में स्थित, भक्तों को वर देनेवाली है, आपकी जय हो। हे महिषासुर को मारने वाली देवि! आपको नमस्कार है॥१२९-१३१॥

मद्यभांडं समालोक्य मांसं मत्स्यं वरस्त्रियम् ।
दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणम्यामर्षयेन्मनुम् ।।१३२।।
घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये ।
नमामि वरदे देवि मुंडमालाविभूषिते ।।१३३।।
रक्तधारासमाकीर्णवदने त्वां नमाम्यहम् ।
सर्वविघ्नहरेदेवि नमस्ते हरवल्लभे ।।१३४।।

मद्य के भाण्ड, मांस, मत्स्य एवं श्रेष्ठ स्त्री को देखकर **घोर...नमाम्यहम्।** इसमंत्र को पढ़ता हुआ साधक, भैरवी देवी को प्रणाम करे।

मन्त्रार्थ—हे मुण्डमाला से विभूषित, वर देने वाली देवि! भयंकर विघ्नों को नाश करने तथा कुलाचार की समृद्धि के लिए आपको नमस्कार करता हूँ। हे रक्त की धारा से समाकीर्ण मुँह वाली! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। सबप्रकार के विघ्नों को दूर करने वाली भगवान् शंकर की प्रिये, हे देवि! आपको नमस्कार है॥१३२-१३४॥

एतेषां दर्शनेनैव यदि नैवं प्रकुर्वते ।
शक्तिमंत्रे पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्नजायते ।।१३५।।

उपर्युक्त के दर्शन के बाद भी यदि बताये अनुसार साधक न करे तो शक्तिमंत्र के पुरश्चरण करने के पश्चात् भी उसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती है।।१३५।।

एतेषां मारणोच्चाटनहिंसनं वागुरादिभिः ।
करोति यदि पापात्मा मद्भक्तः सकथं भवेत् ।।१३६।।

यदि वाणी या मन से भी इनके मारण, उच्चाटन, हिंसा या चोट पहुँचाने का कार्य वह करता है तो वह पापात्मा है। वह मेरा भक्त कैसे हो सकता है? अर्थात् वह किसी प्रकार मेराभक्त नहीं हो सकता।।१३६।।

प्रधान मम सम्पूज्या एतेन कुलजापिनः ।
डाकिन्यश्च तथा सिद्धामदंशा कुलभैरव ।।१३७।।

इनके माध्यम से कुलमार्गियों द्वारा प्रधान के रूप में मेरी पूजा होती है। हे कुलभैरव! इसके कुलमंत्र से उपासित डाकिनियाँ एवं सिद्ध भी मेरे अंश हैं।।१३७।।

लघ्वा सिद्धि समायोगा डाकिनीं हिंसनं यदि ।
अथवा दानवानां च मद्भक्तानां विशेषतः ।
बटुकानां भैरवानां च तस्य सिद्धिर्नजायते ।।१३८।।

जो साधक छोटी सिद्धियुक्त डाकिनियों अथवा मेरे भक्त दानवों विशेषकर बटुकों एवं भैरवों का हिंसन (उत्पीड़न) करता है। उसे सिद्धि नहीं होती। (यहाँ साधना के बलपर ओझैती करने वालों का निषेध किया गया है। साधना देवीपूजा के लिए है न कि चेटक प्रदर्शन के लिए)।।१३८।।

नित्य नैमित्तिक काम्यादि न रात्र्युभयक्रमात् ।
कर्तव्या कुलशास्त्रज्ञैः पूजा विभवविस्तरैः ।।१३९।।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते आचारविधिर्नाम द्वादशतत्त्वम्।।१२।।

कुलशास्त्रों के जानने वाले साधकों द्वारा वीर और दिव्य दोनों ही क्रम से नित्य-नैमित्तिक एवं काम्यकर्मों का सम्पादन रात्रि में नहीं किया जाना चाहिए। उन्हें अपने वैभव के विस्तार के अनुसार पूजा करनी चाहिये।।१३९।।

श्रीराघवभट्ट विरचित आचारविधि नामक
बारहवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई।।१२।।



त्रयोदशतत्त्वम्

*** स्थाननिर्णयः ***

अथ स्थाननिर्णयो लिख्यते—स्थानों के सम्बन्ध में निर्णय लिखा जाता है।

तदुक्तं फेत्कारिणी तन्त्रे—जो **फेत्कारिणीतंत्र** में कहा गया है।

एकलिंगे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे ।
तत्रस्थः साधयेद्देवीं विद्यां त्रिभुवितारिणीम् ।।१।।

एकलिंगक्षेत्र में, श्मशान में, शून्यकक्ष में, चौरस्ते में से जो स्थान सुलभ और सुरक्षित हो, वहाँ स्थित हो, साधक को तीनों लोकों कों तारने वाली, विद्यास्वरूपा देवी की साधना करनी चाहिए।।१।।

एकलिंग इति—पंचक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमिष्यता इत्यर्थः—यहाँ एकलिंग क्षेत्र से तात्पर्य उस शिवालय से है जिससे पाँच कोश के अन्तर में चारों ओर कोई अन्य लिङ्ग न हो।

तदेकलिंगमाख्यातं तत्रसिद्धिरनुत्तमा ।।२।।

जो एकलिंग कहा जाता है और वहाँ साधना करने से अत्यन्त उत्तमसिद्धि प्राप्त होती है।।२।।

अन्यत्र च—अन्यत्र भी कहा है।

उज्जरे पर्वते वापि निर्जने वा चतुष्पथे ।
देवागारे देवशून्ये निर्जनैकांत वेश्मनि ।।३।।

उज्जर (वन) या पर्वत पर, निर्जन में, चौराहे पर, देवमंदिर में, देवरहित स्थान में या निर्जनएकान्त में स्थितघर में साधना करनी चाहिए।।३।।

वीरतन्त्रेऽपि—वीरतन्त्र में भी कहा है।

शून्यागारे श्मशाने यदि जपति जनोप्येकलिंगे ।
तडागे गंगागर्भे गिरौ वा शुचि विमलमतिः सर्वदा मंत्रराजम् ।।४।।
विद्या श्रीनीलबाण वा भवन जनपतिः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता ।
देहान्ते योगिमुख्यः परमसुखपदं वृत्ति निर्वाणमेत्ति ।।५।।

शून्यागार में, श्मशान में, एकलिंगक्षेत्र में, तालाब के किनारे, गङ्गा के गर्भ में या पर्वत पर यदि कोई पवित्र, निर्मलमतिवाला साधक सर्वदा मन्त्रराज का जप करता है तो वह विद्या, श्रीसम्पन्न, नीलबाण

भवनों में रहने वाले लोगों का स्वामी होता है। वह सभी शास्त्रों का जानने वाला होता है। वह योगियों में मुख्य होकर परमसुखपद को प्राप्त कर निर्वाणवृत्ति को प्राप्त करता है।।४-५।।

अथासन विधिः (आसनविधि)

तदुक्तं मत्स्यसूक्ते—जो **मत्स्यसूक्त** में कहा है।

मृद्वाचूडकमासीनश्चान्येषु कोमलेषु च ।
विष्टरे तु समाश्रित्य साधयेत्सिद्धिमुत्तमाम् ।।६।।

मृदु, आचूडक एवं कोमल बाल शव पर आसीन हो या अन्य किसी विष्टर, आसन पर विराजमान हो, साधक उत्तमसिद्धि प्राप्त करता है।।६।।

मृदुमिति षण्मासाभ्यंतर गर्भच्युतमित्यर्थः ।

मृदु से तात्पर्य छः माह से पहले च्युतगर्भ से है।

तदुक्तं—जैसा कि कहा है।

आर्वाक् षण्मासतो गर्भच्युतमाहुर्मृदुं बुधाः ।
आचूडकमिति चूडाकरणाभ्यंतरे मृतमित्यर्थः ।।७।।

छः माह के अन्तर्गत च्युत, गर्भ को विद्वानों ने मृदु कहा है। आचूडक, चूडाकरण के पूर्व मृतव्यक्ति के सन्दर्भ में प्रयुक्त है।।७।।

तदुक्तं—वहीं कहा है।

चूडोपनयनैर्हीनं मृतमाचूडकम् विदुः ।
निवृत्त चूडको बालो हीनोपनयनः पुमान् ।
यो मृतः पंचमे वा तमेव कोमलं विदुः ।।८।।

चूडाकरण और उपनयनसंस्कार से हीन मृतव्यक्ति को आचूडक जाना जाता है किन्तु जिस बच्चे का चूडाकरण तो हो गया हो किन्तु उपनयन न हुआ हो ऐसी अवस्था में जो पुरुष पाँचवें वर्ष में मर जाता है, उसे कोमल जाना जाता है। (यहाँ **मृदु, आचूडक** एवं **कोमल** तीनों परिभाषिक शब्द हैं)।।८।।

स्वतन्त्रतन्त्रेऽपि—**स्वतन्त्रतन्त्र** में भी कहा है।

कंबले लोहिते वापि कृष्णे वा व्याघ्रचर्मणि ।
सन्यासी ब्रह्मचारी तु विशेत् कृष्णस्य चर्मणि ।।९।।

लाल कम्बल या काले कम्बल या व्याघ्रचर्म से बने आसन पर सन्यासी बैठे तथा ब्रह्मचारी कृष्णमृग के चर्म से बने आसन पर बैठे।।९।।

मत्स्यसूक्तेऽपि—**मत्स्यसूक्त** में भी कहा है।

कृष्णसारद्विपिचर्माचूडकं कम्बलं तथा।
पीतवस्त्रं च शुक्लं वा आसनाय प्रकल्पयेत्।।१०।।

कृष्णसारमृग के चर्म या हाथी के चर्म, आचूडक (चूडाकर्म के पूर्व अवस्था का शव), कम्बल, पीला या श्वेतवस्त्र आसनहेतु प्रयोग करना चाहिए।।१०।।

वीराणां तु वीरासनमवश्यमेव–वीरों के लिए वीरासन अवश्य ही लगाना चाहिए।

तदुक्तं कालीतन्त्रे–जैसा कि **कालीतन्त्र** में कहा है।

मृतासनं विना देवि योजपेत्कालिकां नरः।
तावत्स नारकी ज्ञेयो यावदारुत संप्लवम्।।११।।

हे देवि! बिना मृत-आसन के जो साधक, कालिका के मन्त्र का जप करता है उसे तब तक नारकी जानना चाहिए, जब तक संप्लव (प्रलय) न हो।।११।।

स्वंत्रादौ–स्वतन्त्रादि में भी कहा है।

कंबलाद्यासनाभिधानं न स्वतंत्रेण किं न वीरासनवगुंठनेनेति।

कम्बलादि आसनों का उल्लेख स्वतंत्ररूप में नहीं, अपितु वीरासन के अवगुंठन के रूप में हुआ है।

तदुक्तं–जैसा कि कहा है।

मृताभावे शवरूपं विष्टरं वा प्रकल्पयेदिति।।१२।।

मृतक शव आसन के अभाव में शवरूप विष्टर (कुश के बने) आसन का उपयोग करना चाहिए।।१२।।

तथा च शवाकारेण कुशासनामासनं परिकल्प्य कंबलासनेनावगुंठ्य उपविशेदित्यर्थः।

जैसा शव के आकार में कुशाओं का आसन बनाकर कम्बल आदि आसन से उसे ढंक कर उस पर बैठे।

अथ पुष्पविधि (पुष्पविधि)

तदुक्तं मत्स्यसूक्ते–जैसा मत्स्यसूक्त में कहा है।

सुगंधिश्वेतलोहित्यकुसुमैर्चयेद्दलैः।
बिल्वैर्मरुवकाश्चैव तुलसीवर्जितैः शुभैः।।१३।।
कौलपुष्पैर्विशेषेण वज्रपुष्पेण मिश्रितम्।
सर्वपुष्पं प्रदद्याच्च भक्तियुक्तेनचेतसा।।१४।।

सुगन्धित, श्वेत या लाल रंग के पुष्पों तथा तुलसी के अतिरिक्त

बिल्व, मरुवक आदि शुभ पत्रों से, विशेषरूप से वज्रपुष्प मिश्रित कौलपुष्प आदि सभी पुष्प, भक्तियुक्त चित्त से देवी को प्रदान करने चाहिए। (यहाँ वज्रपुष्प एवं कौलपुष्प लाक्षणिक रूप से प्रयुक्त हैं जिसका रहस्य गुरुमुख से समझना चाहिये)॥१३-१४॥

शारदाटीकायां च—शारदाटीका में भी कहा है।

सर्वपुष्पैः सदापूजा विहिता विहितैरपि ।
कर्त्तव्या सर्वदेवानां भक्तियोगेऽत्र कारणम् ।।१५।।

सदैव विहित सभी पुष्पों से सभी देवताओं की पूजा करने योग्य है। इसमें भक्ति का योग ही विशेष महत्त्वपूर्ण कारण है॥१५॥

तन्त्रान्तरेऽपि—अन्य तन्त्रों में भी वर्णित है।

देवीपूजा सदाकार्या जलजैः स्थलजैरपि ।
विहितैर्वा निषिद्धैर्वा भक्तियुक्तेन चेतसा ।।१६।।

देवीपूजा, सदैव जल में या स्थल में उत्पन्न होने वाले पत्र और पुष्पों से की जानी चाहिए। चाहे वे विहित हों या निषिद्ध, किन्तु भक्तियुक्तचित्त से ही पूजन किया जाना चाहिए॥१६॥

कालीतन्त्रेऽपि—कालीतन्त्र में भी कहा है।

नानोपचारबलिभिर्नानापुष्पैर्मनोरमैः ।
अपामार्गदलैर्भगैस्तुलसी वर्जितैः शुभैः ।।१७।।

तुलसी को छोड़कर अपामार्ग आदि अनेक शुभ दलों, बलि आदि उपचारों, सुन्दर पुष्पों, भगादि से देवी का पूजन करना चाहिए।

पूजनीया सदा भक्त्या नृणां शीघ्रफलप्रदा—देवी सदा भक्तिपूर्वक पूजनीया हैं, ऐसा करने पर वे साधकों को शीघ्र फल प्रदान करती हैं॥१७॥

बलात्कारेण मूढाया मध्यमा भोगवर्धिनी ।
रजोयोग वशादन्याउत्तमा सुखदायिनी ।
स्वयंभुकुसुमं देवि त्रिविधं भुवि जायते ।।१८।।

हे देवि! स्वयंभूकुसुम भी बलात्कारपूर्वक, मूढ़ा से या भोगवर्धिनी मध्यमा से या अन्य सुख देने वाली उत्तमा के रज के योग के कारण पृथ्वी पर तीनप्रकार के बताये गये हैं॥१८॥

अन्यत्राऽपि—अन्यत्र भी कहा हैं।

स्वेच्छात्रृतुमतीशक्तिः साक्षाद्देवी कुलेश्वरी ।
तस्याः पुष्पं स्वयंयत्तद्रक्षणीयं प्रयत्नतः ।।१९।।
वस्त्रालंकारपुष्पैश्च पंक्तिं च पूजयेत् सदा ।।२०।।

स्वेच्छा से ऋतुकाल उपस्थित होनेपर जो ऋतुमती शक्ति होती है वह साक्षात् देवीस्वरूपा है। वह कुलेश्वरी है। उसका जो स्वयं का पुष्प है, उसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए और उस पंक्ति (शक्ति) की वस्त्रालंकार, यथोचित पुष्पादि से सदैव पूजा करनी चाहिए॥१९-२०॥

यथाकाले यथापुष्पं स्वयं संगोपयेत्सकृत् ।
गृहीत्वा तत्प्रयत्नेन स्वयंभुकुसुमं च यत् ।
स्वयंभु पुष्पयोगेन साक्षतेन समर्चयेत् ।।२१।।

जिससमय जो पुष्प स्वयं एकबार प्रकट हो, उसकी भलीभांति रक्षाकरें उसे ग्रहणकर उससे उत्पन्न, अक्षत, स्वयंभूकुसुम को प्रयत्नपूर्वक ग्रहण कर उस स्वयंभूपुष्प से देवी का पूजन करे॥२१॥

विद्यां स्वप्नावतीं जप्त्वा छिप्रमाकर्षणादिकम् ।
देवताश्चमहानागादानवाराक्षसाश्च ये ।
राजानश्चस्त्रियस्सर्वा नित्यं वश्याभवंति हि ।।२२।।

स्वप्नावतीविद्या के जप से शीघ्र, आकर्षण आदि सामर्थ्य उपलब्ध हो जाते हैं तथा देवता, बड़े-बड़े नाग, दानव, राक्षस, राजागण, सभीप्रकार की स्त्रियाँ नित्य (सर्वदा), वश्य (वशीभूत) हो जाती हैं॥२२॥

तन्त्रचूडामणौ—तन्त्रचूडामणि में कहा है।

श्रृणुवत्स कुलद्रव्यमाहात्म्यं परमं शुभम् ।
यत्प्राप्य कुलदेवोऽपि लभ्यते वांछितं फलम् ।।२३।।

हे वत्स! कुलद्रव्य के श्रेष्ठ एवं शुभ माहात्म्य को सुनो। जिसको प्राप्तकर कुलदेवता भी वांछितफल प्राप्त करते हैं॥२३॥

अमावस्या तिथौ देवि सुषुम्णामध्यवर्तिनी ।
अमृतं वर्षते सातु त्रिदिनं पृथिवी तले ।।२४।।
अस्यां तिथौ कुलं देवि यदि विद्यां समुच्चरेत् ।
पूर्वसेवा भवत्यत्र प्रत्युच्चारणमेव च ।।२५।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुलं वीक्ष्य जपं भवेत् ।।२६।।

हे देवि! अमावस्यातिथि को, मध्यवर्तिनी जो सुषुम्ना है, वह तीनदिनों तक पृथ्वीतल पर अमृतवर्षा करती है। यदि इस तिथि को साधक विद्या का उच्चारण करे तो इससे पूर्ववर्णित सेवा तो होती ही है, प्रत्युच्चार भी सम्पन्न होता है। अतः उक्त अवधि में प्रयत्नपूर्वक कुलदर्शन करते हुए मन्त्रजाप करना चाहिए॥२४-२६॥

दृष्ट्वा तदमृतं देवि गलितं परिगृह्य च ।
साधनं साधयेत्सर्वं कुलाचारस्य सिद्धये ।।२७।।

हे देवि! उस अमृत को देखकर, गिरे हुए अंश को ग्रहण कर साधक कुलाचार की सिद्धि के लिए समस्त साधनों की साधना करे॥२७॥

अन्यत्राऽपि—अन्यत्र भी कहा है।

पतिहीना यदाशक्तिः सर्गादौ वर्षते हि यत् ।
तदेवं परमं धर्मं स्वयंभुकुसुमाख्यकम् ।।२८।।

पति से हीन (कुमारी) शक्ति जब सृष्टि के आरम्भ में वर्षा (श्राव) करती है वही परमधर्म है, उसे ही स्वयंभूकुसुम कहा जाता है॥२८॥

स्वयंभुकुसुमं द्रव्यं त्रैलोक्ये चातिदुर्लभम् ।
क्वचिद् गन्धर्वराजेन लभ्यते वा न वा प्रभो ।।२९।।
यदि चेल्लभ्यते देवलाक्षारससमन्वितम् ।
कस्तूरी कुंकुमाक्तं च वटीं कृत्वा तु गोपयेत् ।।३०।।

हे देव! स्वयम्भुकुसुम नामक द्रव्य तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ है। कभी गन्धर्वराज से मिलता है या नहीं मिलता। किसीप्रकार उपलब्ध हो जाये तो देवलाक्षारस से समन्वित कर उसे कस्तूरी और कुंकुममिश्रित वटी (गोली) बनाकर सुरक्षित रख लेना चाहिए। (यहाँ अमावस्या, अमृतवर्षा, पृथ्वीतल, लाक्षारस आदि के लाक्षणिक अर्थ हैं जो गुरु गम्य हैं)॥२९-३०॥

मंत्रराजं समालिख्य पूजयेद्यदि साधकः ।
एतेनाक्षतयोगेन महतीसिद्धिमालभेत् ।।३१।।

यदि साधक इसप्रकार से अक्षतयोग से उपलब्ध द्रव्य से मन्त्रराज को भलीभाँति लिखकर पूजा करता है तो वह महतीसिद्धि को प्राप्त करता है॥३१॥

सुप्रादि दोष दुष्टा मे मंत्रविद्याश्च कीर्त्तिताः ।
प्रबुद्धास्तत्प्रयोगेन यावत्सा पुनरागता ।।३२।।

सुप्तादिदोष से जो दूषितमन्त्र और विद्याएं हैं, वे सभी इसप्रकार के प्रयोग से प्रबुद्ध हो जाती हैं। जब पुनः अवसर आ जाये तब पूर्ववर्त्तीद्रव्य से ही साधना करनी चाहिए॥३२॥

ततः प्रयोगं विद्यानां मंत्रादीनां च कारयेत् ।
एवं प्रबुद्धा भवति प्राणैवद्राक्कदाचन ।।३३।।
एतत्त्रयाणां मध्ये तु स्वयंभुकुसुमंमहत् ।।३४।।

तब मन्त्र और विद्या आदि का प्रयोग करे। इसप्रकार से विद्या जागृत हो प्राणवान हो जाती है। यह कभी ही उपलब्ध होता है। इन तीनों द्रव्यों में स्वयंभूकुसुम श्रेष्ठ है॥३३-३४॥

श्रीक्रमेऽपि—श्रीक्रम में भी।

कस्तूरीकुंकुमं तत्र च चंदनागरुकादिकम् ।
नाना सुगन्धिकं दत्वा एकीकृत्यं तु साधकः ।
एतेनाक्षतयोगेन पूजयेत् परमेश्वरी ।।३५।।

उससमय कस्तूरी, कुंकुम, चन्दन, अगरु आदि अनेक प्रकार के सुगन्धितद्रव्यों को इकट्ठा कर इनसे तथा अक्षतयोग से परमेश्वरी का पूजन करना चाहिए।।३५।।

स्वयंभूकुसुमैः पूजा प्रत्यहं यः समाचरेत् ।
तस्य मधुमतीसिद्धराधीनादेव जायते ।।३६।।

जो प्रतिदिन स्वयंभूकुसुमों से पूजा करता है, उसकी मधुमतीसिद्धि उसके अधीन हो जाती है।।३६।।

मुंडमालायामपि—मुंडमालातन्त्र में भी कहा है।

पुष्पाण्यापि तथा दद्याद्रक्तपीत सितानि च ।
श्वेतं रक्तं जपापुष्पं करवीरं च तथा प्रिये ।।३७।।
तगरं मल्लिका जाती मालती यूथिका तथा ।
धत्तूराशोकवकुलश्वेतकृष्णापराजिता ।।३८।।
बकपुष्पं बिल्वपत्रं चंपकं नागकेशरम् ।
बन्धूकं झिंटिकां कांची रक्त यत्परिकीर्त्तितम् ।।३९।।
अर्कपुष्पं जपापुष्पं बर्बरं च प्रियंवदे ।
श्मशानोत्पन्नपुष्पेण संतुष्टा कालिका परा ।।४०।।

हे प्रिय बोलने वाली! श्वेत, लाल और पीले पुष्पों से भी पूजन करना चाहिए। हे प्रिये! इस दृष्टि से सफेद व लाल जपापुष्प, करवीर (कनैल), तगर, मल्लिका (चमेली), जाती, यूथिका, धत्तूर, अशोक, बकुल, श्वेतअपराजिता, कृष्णअपराजिता, बकपुष्प, बिल्वपत्र, चंपक, नागकेशर, बन्धूक, झिंटिका, लाल कांची आदि जो पत्र-पुष्प कहे गये हैं। उपर्युक्त से तथा मदार के फूल, गुड़हल के पुष्प, बर्बर तथा श्मशानभूमि में उत्पन्न पुष्पों द्वारा पूजी जाने से परादेवी कालिका भलीभाँति सन्तुष्ट होती हैं।।३७-४०।।

वन्यपुष्पैश्च विविधैः संतुष्टा पार्वती शिवा ।
अष्टम्यां च विधानेन सन्तुष्टा तस्य पार्वती ।।४१।।

अष्टमी तिथि को अनेक प्रकार के जंगली पुष्पों से कल्याणकारिणी पार्वती देवी की पूजा करता हूँ वह उससे संतुष्ट होती हैं।।४१।।

व्यंजनों, मधुओं और थोड़े गंधयुक्त, घीमिश्रित पदार्थों से रात्रि में या दिन में, विशेषकर कृष्णपक्ष में, शुभ दिन (पर्वादि) में बलि देनी चाहिए।।३-६।।

छागे दत्ते भवेद्वाग्मी मत्स्येदत्ते कविर्भवेत् ।
महिषेधनवृद्धिं स्यात्मृगे भोगफलं लभेत् ।।७।।
दत्ते पक्षि महर्द्धिः स्याद्गोधिकायां महाफलम् ।
नृछेदत्ते महर्द्धिः स्यादष्टसिद्धिमनुत्तमम् ।।८।।

छाग की बलि देने वाला वाग्मी, मछली की बलि देने से कवि होता है। भैंसे के बलिदान से धनवृद्धि होती है तथा मृग की बलि से भोगफल प्राप्त होता है। पक्षी के बलिदान से महान् ऋद्धि, गोह के बलिदान से महान् फल और नर बलि से महान् समृद्धि उत्तम आठों सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।।७-८।।

ललाट हस्तवक्षस्थ शिरोरुमध्यदेशतः ।
स्वदेहाद्रुधिरं दत्ते रुद्र देह इवापरः ।।९।।

अपने शरीर के ललाट, हाथ, वक्षस्थल, शिर, जंघा, कटि का रक्त बलिरूप में प्रदान कर, साधक दूसरे रुद्र के समानशरीरवाला हो जाता है।।९।।

चांडालबलिदानेन सर्वसिद्धिं प्रजायते ।
सुराछागेन देवेशि महायोगेश्वरो भवेत् ।।१०।।

हे देवेशि! चांडाल के बलिदान से सबप्रकार की सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं। हे देवेशि! सुरा और छाग के बलिदान से साधक महान् योगेश्वर होता है।।१०।।

सुरा तु त्रिविधा देवि स्फाटिकी सौक्तिकी तथा ।
पौष्टिकी स्फाटिकी दाने धनवृद्धिसुत्तमा ।।११।।

हे देवि! सुरा तीनप्रकार की कही गई है, स्फाटिकी (स्फटिक मणि के समान) सौक्तिकी–सुक्ता (सीपी) के समान वर्ण की, पौष्टिकी–पुष्टिदायिनी। स्फाटिकी सुरा के दान से उत्तम धनवृद्धि होती है।।११।।

डाकिनी दानमात्रेण सर्ववश्यो भवेद्ध्रुवम् ।
कार्ष्णिणिकी सुरया देवि योऽर्चयेत्परमेश्वरीम् ।।१२।।
गुटिकांजन स्तंभादि मारणोच्चाटनादिभिः ।
महासिद्धीश्वरो भूत्वा वसेत्कल्पायुतं भुवि ।।१३।।

डाकिनी (सौक्तिकी) सुरा के दानमात्र से साधक के लिए सब कुछ वश्य हो जाता है। हे देवि! कार्षिणिकी (पौष्टिकी) सुरा से जो साधक परमेश्वरी की पूजा करता है। वह गुटिकासिद्धि, अंजनसिद्धि, स्तम्भन, मारण, उच्चाटन आदि सिद्धियों की प्राप्ति से महासिद्धियों का स्वामी होकर दसहजार कल्पों तक पृथ्वीतल पर निवास करता है॥१२-१३॥

कुमारी कल्पेऽपि—कुमारीकल्प में भी कहा है।

ताम्बूलं च सकर्पूरं नारीकेलं स शर्करम् ।
पायसं सघृतं चैव आर्द्रकं सगुडं तथा ।।१४।।
सतंदुलं तिलं चैव दधि चैव स शर्करम् ।
जंबीरं पनसं चैव आम्रातकफलं तथा ।।१५।।
कदली तिंत्तिणी चैव श्रीफलं फलमुत्तमम् ।
करं च बकुलं चैव रंभाखर्जूरमेव च ।
अन्यानि सुगंधीनि स्वादूनि च फलानि च ।।१६।।
नवादाता तथा चाहि महिषशशकस्तथा ।
एतेषां चैव रक्तानि स्वादूनि च फलानि च ।।१७।।

कपूर के सहित पान, चीनी सहित नारियल, घी युक्त खीर, गुड़ सहित आदी, चावल सहित तिल, दही और चीनी, जंबीर, कटहल, अमड़ा के फल, केला, इमली, उत्तम श्रीफल (बिल्व), करंज, बकुल, केला, खजूर और अन्य सुगन्धित स्वादिष्ट पूर्वोक्त नये ग्रहण किये ताजे फल और सर्प, भैंसे, खरगोश इनके रक्त, बलिरूप में अर्पित करने चाहिये॥१४-१७॥

इति निज बलिदानं तु राज्ञामेव—निज बलिदान तो राजाओं के लिए ही होता है।

तदुक्तं रुद्रयामले—जो रुद्रयामल में कहा है।

राजा नरबलिं दद्यान्नान्येन तु कदाचन ।
सिंह व्याघ्र नरान् दत्वा ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ।।१८।।

राजा को ही नरबलि देनी चाहिए, यह अन्य द्वारा कभी नहीं दी जानी चाहिए। सिंह, बाघ एवं मनुष्य की बलि देकर, ब्राह्मण नरक में जाता है॥१८॥

नैवेद्यपात्रं तथा यामले—नैवेद्यपात्र जैसा कि यामल में बताया है।

तैजसेषु च पात्रेषु सौवर्णे राजते तथा ।

ताम्रैव प्रस्तरे वापि पद्मपत्रेऽथवापुनः ।
यज्ञदारुमये·वाऽपि नैवेद्यं कल्पयेद्बुधः ।।१९।।

बुद्धिमान् साधक को चाहिए कि वह धातुओं से बने पात्रों में सोने, चाँदी एवं ताम्बे के पात्रों अथवा पत्थर या कमल की पंखुड़ी अथवा यज्ञकाष्ठ के बने पात्र में नैवेद्य अर्पित करे॥१९॥

सर्वाभावेतु माहेव स्वहस्तघटितोऽथवा ।
तद्योग्यमर्घ्यपात्रेतु तन्निधाय निवेदयेत् ।।२०।।

सबके अभाव में मिट्टी के बने पात्र में अथवा अपने हाथ के ही बने अंजलिरूपी पात्र या उचित अर्घ्यपात्र में उसे रखकर निवेदित करे॥२०॥

अन्यभावैर्यदुत्सृष्टि अर्घ्यपात्रस्थिते भवेत् ।
नगृहणाति महादेवी दत्तं विधि शतैरपि ।।२१।।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे बलिदानविधिर्नाम चतुर्दशतत्त्वम्॥१४॥

हे महादेवि! अन्य भावों से जो उत्सृष्टि अर्घ्यपात्र स्थित होती है वैसी अन्य सैकड़ों विधियों से भी दिये जाने पर महादेवी ग्रहण नहीं करतीं॥२१॥

श्रीराघवभट्टद्वारा विरचित कालीतत्त्व में बलिदानविधि नामक चौदहवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई॥१४॥



पंचदशतत्त्वम्

*** प्रायश्चित्तविधिः ***

अथ प्रायश्चित्तविधिरूच्यते–प्रायश्चित्तविधि कही जाती है।

तदुक्तं लिंगागमे–जो लिंगागम में कहा है।

शिव उवाच–

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ।
तद्विशुद्धि विधिश्चैव भैरवेनेतिभाषितम् ।।१।।

शिव बोले–मैं उत्तम प्रायश्चित्तविधि को कहूँगा जो विशुद्धि विधिरूप में भैरव द्वारा कही गई है।।१।।

गुरुत्यागकरः शिष्यः प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ।
लक्षं श्रीपादुकां जप्त्वा तस्मात्पापाद्विशुद्ध्यति ।।२।।

गुरु का त्याग करने वाला शिष्य, प्रायश्चित्त का भागी होता है किन्तु श्रीपादुकामन्त्र का एकलाख जप करके उस पाप से वह शुद्ध हो जाता है।।२।।

एतत्तु दिव्य वीर गुरुत्यागे नतु पशुगुरुत्यागे–यह प्रायश्चित्त दिव्य और वीर गुरु के त्याग में लगता है न कि पशुगुरु का त्याग करने में।

अतएव यामलेप्युक्तं–इसीलिए यामल में भी कहा है।

मधोर्लोभाद्यथाभृंगः पुष्पात्पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
गुरुलुब्धस्तथा शिष्योः गुरोर्गुर्वांतरं व्रजेत् ।।३।।इति।

जिसप्रकार मधु के लोभ से भौंरा एक पुष्प से दूसरे पुष्प की ओर जाता है उसीप्रकार गुरु के लोभी (गुरु की चाह रखने वाले) शिष्य को एक गुरु से दूसरे गुरु की ओर जाना चाहिए।

गुरोरिति पशुगुरोरित्यर्थः–यहाँ गुरु का तात्पर्य पशुगुरु से है।।३।।

द्विजस्य कौलिकीं प्रार्थ्य पुनर्विद्यामुपालभेत् ।
अज्ञानाद्यत्कृतं कर्म नालोच्या कुलकौलिकीम् ।।४।।
क्षमस्व मातस्तत्पापं हर देवि कृपां कुरु ।
एवं प्रार्थ्य पुनर्दीक्षां कुर्यात् साधकसत्तम ।।५।।इति।

सर्वप्रथम कौलिकी (कुलाचारी) द्विज की प्रार्थना करे। तत्पश्चात् उनसे विद्या (शक्ति-मन्त्र) ग्रहण करे। **अज्ञानाद्यत्कृतं.....कृपां कुरु।** इस मन्त्र से प्रार्थना करके श्रेष्ठ साधक को पुनर्दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए।।

मन्त्रार्थ—कौलिक-कुल का बिना विचार किये अज्ञानवश जो कर्म किया गया है, हे माता! आप उसे क्षमा कीजिये। हे देवि! तत्सम्बन्धी पाप को आप दूर कीजिये। आप मेरे पर कृपा कीजिये। **गुरुरित्युपलक्षणं**—यहाँ गुरु एक उपलक्षण है जिसका तात्पर्य—**इमं मन्त्रादिकं परित्यज्यादन्य मन्त्रं गृहण्यादिति।** इसभाग के मन्त्रादि का परित्याग कर अन्य मंत्रादि के ग्रहण से है। **अतएव क्वचित् पुस्तके मन्त्रात्मन्त्रान्तरमितीत्यपि संगच्छते।** इसीलिए किसी पुस्तक में एक मन्त्र से दूसरे मन्त्र को जाता (ग्रहण करता) है, ऐसा लिखा है।।४-५।।

अतएव यामलादौः—इसीलिए **यामलादि** में भी कहा है।

सकलोबीजहीनश्च संदिग्धो निद्रितस्तथा ।
मनवस्ते न सिद्धयंति गुरुः स्यात् ब्रह्मघातकः ।
तदा तं सहसाज्ञात्वा मंत्र देवं गुरुं त्यजेत् ।।६।।

बीज से रहित, संदिग्ध, निद्रित आदि समस्त मन्त्र जिसके द्वारा सिद्ध किये जाते हैं, उसका गुरु ब्रह्मघातक होता है। तब ज्योंही इस प्रकार के गुरु का ज्ञान हो त्योंही वैसे मन्त्र, गुरु और देवता तीनों का परित्या-। कर देना चाहिए।।६।।

बहुज्ञोऽपि गुरुस्त्याज्यो ज्ञानसारोवरानने ।
अल्पज्ञोऽपि गुरुः पूज्यो यो जानाति कुलाकुलम् ।।७।।

हे श्रेष्ठ मुखवाली! यदि गुरु सारभूत तत्त्व को जानने के साथ बहुतकुछ जानने वाला किन्तु कुल-अकुल के रहस्य को न जाननेवाला हो तो उसका परित्याग कर देना चाहिए। यदि गुरु अल्पजाननेवाला हो किन्तु कुल और अकुल के रहस्य को जानने वाला हो तो वह पूजनीय है।।७।।

एकत्र गुरुणासार्धं स्वपत्युपरिसेवया ।
सयाति नरकं घोरं यावदिन्द्राचतुर्दश ।।८।।

जो साधक सेवा से उपरत होकर गुरु के साथ इकट्ठा सोता है। वह चौदह इन्द्रों के कार्यकाल तक अर्थात् १४ मन्वन्तर=१ कल्प की कालावधि तक घोर नरक में जाता है।।८।।

गुरुवाक्यं हतं कृत्वा आत्मवाक्यंतुरोपयेत् ।
गुरुं जेतुं मतोयस्य पातके नरकार्णव ।।९।।

गुरु के वाक्यों को हतकर, (खण्डनकर) जो अपने वाक्य (कथन) उसपर आरोपित करता है या जिसके मन में गुरु को जीतने की इच्छा जगती है वह साधक नरक के सागर में पतित होता है।।९।।

अनेकधापशोरन्नं भुंज्यते ये च कौलिकाः ।
तेभ्यः प्रकुप्यते देवी तत्संगं नैव कारयेत् ।।१०।।

जो कौलिक अनेक प्रकार से पशुओं का अन्न भोग करता है, ऐसे कौलिकों से देवी कुपित हो जाती हैं। ऐसे साधकों का संग नहीं करना चाहिए।।१०।।

लक्षत्रयं जपेल्लापां लज्जां वाप्यपरां जपां यजेत् ।
होमये हविष्यान्नेन निष्पापस्यात्तदा नरः ।।११।।

यदि ऐसा अपराध हो जाये तो तीनलाख की संख्या में लज्जा (ह्रीं) या अजपा मंत्र का जप करना चाहिए। जप के पश्चात् हविष्यान्न से दशांश होम करना चाहिए। उससमय ऐसा करने से साधक निष्पाप हो जाता है।।११।।

कौलिकः पशुगामी च राजशक्तिं रमेद्बलात् ।
गोष्ठीमध्ये तु यत्नेन स्पर्शं तस्य न कारयेत् ।।१२।।

जो कौलिक पशुगामी हो और राजा की शक्ति (रानी) से बलपूर्वक रमण करे तो गोष्ठी में भी यत्नपूर्वक ऐसे साधक का स्पर्श नहीं होने देना चाहिए।।१२।।

एकपात्रे पिबेद्द्रव्यं वीरो माहेश्वरो यदि ।
श्वानोच्छिष्टं भवेत्पात्रं प्रायश्चित्तं सकौलिकः ।।१३।।

वीर और माहेश्वर भी यदि एकपात्र ही तीर्थादि द्रव्य का पान करे तो पात्र कुत्ते के जूठे के समान त्याज्य हो जाता है और ऐसा करने वाला कौलिक प्रायश्चित्त का भागी होता है।।१३।।

गायत्रीभिः सहस्रेण उपवास त्रयेण च ।
सम्यक् शोधितचित्तं तु सुवर्णं गुरवे ददात् ।।१४।।

सम्यक्चित्तशोधन हेतु उपर्युक्तकर्म के प्रायश्चित्तस्वरूप तीन-हजार-गायत्री जप एवं तीन उपवास करके गुरु को स्वर्ण की दक्षिणा प्रदान करे।।१४।।

चक्रं कृत्वातु देवेशि पूजयेत् तर्पणं विना ।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्यायशोबलम् ।।१५।।

हे देवेशि! चक्र करके भी जो साधक बिना तर्पण किये पूजन करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और बल ये चारों ही नष्ट हो जाते हैं।।१५।।

मातृरूपं परित्यज्य स्त्रीरूपं शक्तिमावदेत् ।
सयाति नरकं घोरं जन्मकोटि शतानि च ।।१६।।

जो साधक शक्ति के मातृरूप को छोड़कर स्त्रीरूप में उसके प्रति कथन आदि करता है, वह सौ करोड़ जन्मों तक घोर नरक में जाता है।।१६।।

परां लक्षत्रयं जपत्वा अजपालक्षमेव च ।
तुर्यबीजं पञ्चलक्षं ततः शुद्धिः प्रजायते ।।१७।।

परांबीज (ह्रीं) का तीनलाख, अजपा का एकलाख, चौथे बीज सौः का पाँचलाख जप करने से पूर्वोक्त पातक से साधक की शुद्धि होती है।।१७।।

मंत्रमाता च पुत्री च भगिनी च कुलांगना ।
नरमेत् कौलिको नित्यमेताः सम्यक् समर्चयेत् ।।१८।।

मन्त्रमाता (गुरुपत्नी), पुत्री, बहन यदि इनके साथ कौलिक को रमण नहीं करना चाहिए। अपितु नित्य इनका भलीभाँति पूजन करना चाहिए।।१८।।

श्रीपात्रं ग्रहणं कृत्वा चक्रमुत्थापयेद्यदि ।
पशुपात्रं भवेत्तस्य प्रायश्चित्तं तु जायते ।।१९।।

जब साधक श्रीपात्र ग्रहण के पश्चात् चक्र का उत्थापन (विसर्जन) कर देता है तो ऐसे चक्रान्तर्गत किया गया उसका पान (तीर्थसेवन) पशुपान हो जाता है और उसे प्रायश्चित्त होता है।

मन्त्रमातृरमणे प्राणांतिकं प्रायश्चित्तम्–मन्त्रमाता के रमण का प्राणान्तपर्यन्त प्रायश्चित्त होता है।।१९।।

तदुक्तं मंत्रार्णवे–जैसा कि **मंत्रार्णव** में कहा है।

बलाद्वास्वेच्छयापि यो रमेत् मंत्रमातरम् ।
दशलक्षं मनुं जप्त्वा तुषनलं समाचरेत् ।।२०।।

बलपूर्वक या स्वेच्छानुसार (अनुकूलता से) जो साधक मन्त्रमाता के साथ रमण करता है। उसे प्रायश्चित्तस्वरूप दसलाख मंत्रजप संपन्न करने के पश्चात् धान की भूसीयुक्त अग्नि में प्रवेश कर जाना चाहिए।।२०।।

पुत्री कुलांगना भगिनी रमणे मूलमंत्रलक्षजपात्शुचिः–यदि वह पुत्री, कुलांगना (शिष्या) या बहन के साथ रमण करे तो वह एकलाख मूलमंत्र के जप से शुद्ध होता है।

तदुक्तं तत्रैव–जो वहीं कहा है।

मंत्रपुत्री स्वपुत्री च भगिनी च कुलांगना ।
रमणाल्लक्ष जापेन पूतो भवति कौलिकः ।।२१।।

कौलिकसाधक, मन्त्रपुत्री (शिष्या), स्वपुत्री (कन्या), भगिनी (बहन) के साथ रमण करने पर मूलमंत्र के एकलाख जप करने से शुद्ध होता है।।२१।।

अथ तन्त्रान्तरे–अन्य तन्त्र में भी कहा है।

पर्वण्यपूज्य देवेशीं गुरुमग्निं च शक्तितः ।
प्रदत्वा च बलिं तत्र मूलमष्टशतं जपेत् ।।२२।।

यदि साधक पर्वों पर देवी, गुरु और अग्नि का सामर्थ्य के अनुरूप पूजन नहीं करे तो वह बलिप्रदान कर मूलमंत्र का अष्टोत्तरशत जप करे॥२२॥

पत्रंपुष्पं फलं मूलमन्नपानादिमौषधम् ।
अनिवेद्यं न भुञ्जीत् यदा दुष्पापकल्पितम् ।।२३।।

पत्र, पुष्प, फल, मूल, अन्न, पान (पेय पदार्थ), औषधि आदि देवता या गुरु को बिना निवेदित किये नहीं ग्रहण करना चाहिए। जब कोई करता है तो वह पापकल्पित होता है॥२३॥

अनिवेद्यं तु भुंजानः प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ।
देव्याश्चाष्टशतं मंत्रं जप्त्वा पूतो भवेन्नरः ।।२४।।

बिना निवेदित किये भोजन करने वाला मनुष्य प्रायश्चित्त का पात्र होता है और ऐसा व्यक्ति देवी के आठ सौ मन्त्रों का जप करने से पवित्र हो जाता है॥२४॥

अनास्थिप्राणसंजातं हत्वा च दशकं जपेत् ।
हत्वा च पक्षिणस्सर्वा स्त्रियं वै दशक जपेत् ।।२५।।

बिना हड्डी वाले प्राणियों को मार कर दस बार मन्त्रजप करे। सभी प्रकार की स्त्रीपक्षियों की हत्या के पश्चात् भी दस ही बार जप करे॥२५॥

सर्पमार्जार नकुलश्वानमुष्ट्रं खरं हयम् ।
अजाद्यांश्च मृगान् सर्वान् हत्वा चाष्टशतं जपेत् ।।२६।।

साँप, बिल्ली, नेवला, कुत्ता, ऊँट, गदहा, घोड़ा, बकरी आदि और सभीप्रकार के मृगों को मारने वाला आठ सौ मन्त्र जपे॥२६॥

वीरस्त्री हननेवापि वृथापाने तथैव च ।
गुरोः स्नुषा मंत्रपुत्रीं रमित्वा लक्षमाजपेत् ।।२७।।

इदं तु ज्ञानकृते बोद्धव्यम्। इदमुपलक्षणं एवं सर्वं पक्षिण इत्यत्रापि बलिदान व्यतिरेकेणमते तत्र तत्र विहितं प्रायश्चित्तं विधेयम्।

वीरसाधक की स्त्री की हत्या करने, व्यर्थ (पूजनातिरिक्त) पान करने, गुरु की पुत्री, मंत्रपुत्री (शिष्या), इनके साथ रमण के प्रायश्चित्तस्वरूप एकलाख मन्त्रजप करे।

यह कथन ज्ञान के लिए जानना चाहिए। यह सब एक उपलक्षण है। इसीप्रकार सभी पक्षियों को समझना, बलिदान में जिनका उल्लेख है। बलिदान से अतिरिक्त अवसर पर उनका वध करने पर निर्दिष्ट प्रायश्चित्त करना चाहिए॥२७॥

तदुक्तं ब्रह्मयामले—जो **ब्रह्मयामल** में कहा है।

कृत्वा वीरवधं मंत्री वृथापानं गुरोस्नुषाम् ।
वीरपत्नीं मंत्रपुत्रीं रमित्वा लक्षमाजपेत् ।।२८।।

वीरसाधक के वध, व्यर्थ पान, गुरु की कन्या, वीर साधक की पत्नी, मंत्रपुत्री से रमण के पश्चात् मन्त्रसाधक, एकलाख मन्त्रजप करे।।२८।।

अन्यत्राऽपि–अन्यत्र भी कहा है।

बलिदानं विना देविं घातयेद्द्विजातिकान् ।
प्रायश्चित्तं च वै प्रोक्तं तत्तत्तन्त्र निदर्शितम् ।।२९।।

हे देवि! बलिदान के अतिरिक्त पक्षियों की जो हत्या करता है, भिन्न-भिन्न तन्त्रों में उसी के भिन्न-भिन्न प्रायश्चित्त कहे गये हैं।।२९।।

कालीतन्त्रेऽपि–कालीतन्त्र में भी कहा है।

हिंसा सर्वत्र वर्जयेदिति– हिंसा का सर्वत्र त्याग करना चाहिए।

अन्यत्राऽपि–अन्यत्र भी कहा है।

वीरद्रव्यापहारी च दिव्यस्त्री निंदकस्तथा ।
कौलतंत्रे मनूनां च साधकानां तथा पुनः ।
कौलिको निंदको यस्तु प्रायश्चित्त समाचरेत् ।।३०।।

इति कर्मलोपादिजातपापक्षयार्थ धर्मादि प्राप्त्यर्थंच दिव्यवीरयोररर्चनं कुर्यादितीदमुपलक्षणम्। तत्तद्विशेष विहित प्रायश्चित्तानुकल्पम्। गंगास्नानादिवत्कौलिकार्चनमेव प्रायश्चित्तम् बोद्धव्यम्।

इस प्रकार कर्मलोप आदि से उत्पन्न पापों के नाश, धर्मादि की प्राप्ति हेतु दिव्य एवं वीरसाधकों का पूजन करना चाहिए। यहाँ यह उपलक्षण समझना चाहिए। उन-उन विशेष प्रायश्चित्तों के लिए गंगास्नानादि विकल्पों के रूप में कौलिकार्चन को ही कौलसाधकों का प्रायश्चित्त जानना चाहिए। वीर के द्रव्य का अपहरण करने, दिव्यस्त्रीसाधिका भैरव्यादि तथा कौलतन्त्र में प्रयुक्त मंत्रों एवं साधकों और कौलिकों की जो निन्दा करता है उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए।।३०।।

कौलिकार्चन माहात्म्य

तदुक्तं सर्वतन्त्रेऽपि–जो सर्वतन्त्र में भी वर्णित है।

माहेश्वरं समालोक्य पूजयेद्विधिपूर्वकम् ।
यथा विभवरूपेण पंचतत्त्वं निवेद्य च ।।३१।।

माहेश्वर (कौलिक-आचार्य) को देखकर अपने वैभव के अनुसार साधक सर्वप्रथम पंचतत्त्वों का उनके प्रति निवेदन कर, उनका विधिपूर्वक पूजन करे।।३१।।

तदा तुष्टा भवेद्देवी सर्वान्नकामान् लभेद् ध्रुवम् ।
अन्यथा नैव सिद्धिःस्यात् क्रुद्धा भवति योगिनी ।।३२।।

उससे देवी जब संतुष्ट हो जायँ तो उनसे निश्चितरूप से समस्त कामनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। अन्यथा सिद्धि नहीं प्राप्त होती और योगिनी (इष्टदेवी) भी क्रोधित हो जाती हैं॥३२॥

मेदिनीं यस्तु सम्पूर्णां ब्राह्मणे वेदपारगे ।
दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं कौलिकार्चनात् ।।३३।।

वेदपारगामी वैदिक ब्राह्मण को सम्पूर्ण पृथ्वी दान करके जो फल प्राप्त होता है वह फल, कौलिक के पूजनमात्र से ही प्राप्त हो जाता है॥३३॥

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
इष्ट्वायत्फलमाप्नोति तत्फलं कौलिकार्चने ।।३४।।

हजारों अश्वमेधयज्ञ तथा सैकड़ों वाजपेययज्ञ को करके जो फल प्राप्त किया जाता है, साधक वह फल कौलिक के अर्चन में प्राप्त कर लेता है॥३४॥

वापीकूपतडागादि कृत्वा यत्फलमाप्नुयात् ।
तत्फलं लक्षगुणितं कौलिकानां प्रपूजने ।।३५।।

वापी, कुएँ, तालाब आदि के निर्माण से जो फल प्राप्त होता है, वही फल लाखगुना होकर कौलिक के पूजन से प्राप्त होता है॥३५॥

कौलिकं निंदयेद्यस्तु कुलशास्त्रपरायणम् ।
स याति नरके घोरे सत्यमेव न संशयः ।।३६।।

जो व्यक्ति कुलशास्त्र के ज्ञाता कौलिक की निन्दा करता है, वह घोरनरक में जाता है। यह सत्य है। इसमें कोई संशय नहीं है॥३६॥

प्रायश्चित्तविहीनानां सशक्तानांच भैरवि ।
दिव्यवीरार्चनं तेषां प्रायश्चित्ताय कल्प्यते ।।३७।।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे प्रायश्चित्तविधौनाम पंचदशं तत्त्वम्॥१५॥

हे भैरवि! जो साधक सशक्त है अर्थात् शाक्त है किन्तु प्रायश्चित्त से हीन है। ऐसों के प्रायश्चित्त का उपाय दिव्य और वीरभाव के आचार्यों का पूजन ही निर्धारित किया गया है॥३७॥

श्रीराघवभट्टविरचितकालीतत्त्व में प्रायश्चित्तविधि नामक पन्द्रहवें अध्याय की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई॥१५॥



षोडशतत्त्वम्

* भावविवेचनम् *

तद्वर्ण देवता यस्य तत्तेजः पुंजपूरितम् ।
तेजोमयं जगत्सर्वं विभाव्यं मूर्त्तिकल्पनम् ।।१।।
ते तन्मन्त्रैर्यन्त्रैः स्वेन स्वेनैव वा पुनः ।
आत्मानं तन्मयं ध्यात्वा सर्वभावं तथैव च ।।२।।
तत्सर्वं पोषितिध्यात्वा चिन्येद्यतमानसः ।
अशेषकुलसम्पन्ना नानाजातिसमुद्भवाः ।।३।।
नाना देशोद्भवावापि गुणलावण्यसंयुताः ।
द्वितीयवत्सरादूर्ध्वं यावत्स्यादष्टवार्षिकीः ।
तावत्कुमारी विज्ञेया यन्त्रमन्त्र फलप्रदा ।।४।।

सम्पूर्ण कुलों में उत्पन्न अनेक जातियों एवं देशों में उत्पन्न अर्थात् किसी भी कुल, जाति या स्थान में उत्पन्न गुण और सौन्दर्य से युक्त दो वर्ष से आरम्भ कर आठ-वर्षपर्यन्तवय की कन्याएँ. कुमारी जाननी चाहिएँ। इनकी पूजा सभीप्रकार के यन्त्र और मन्त्रों का फल प्रदान करने वाली हैं। इनमें जिस देवता का जो वर्ण हो उस वर्ण की, तेज-पुंज से भरे हुए सारे जगत् को तेजमय मानकर उनकी कुमारियों के स्वरूप की कल्पना करनी चाहिए। उनसब की उनसे सम्बन्धित अपने-अपने मन्त्रों से, अपने को सभीप्रकार से उनके जैसा ही मानते हुए साधक, उन सबका पोषिति (पोषण करने वाली माता) के रूप में संयत मन से चिन्तन करे।।१-४।।

कुमारीपूजनाच्चैव कुमारीभोजनादपि ।
एकद्वित्रयादि बीजानां फलवान्नात्रसंशयः ।।५।।

उपर्युक्त चिन्तनपूर्वक कुमारियों का पूजन करने और उन्हें भोजन कराने से साधक, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, वाग्भव, लज्जा, काम तीनों ही बीजों के जप का फल प्राप्त कर लेता है। इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिए।।५।।

ताभ्यः पुष्पं फलं वापि अनुलेपादिकं तथा ।
बालाप्रियं च नैवेद्यं दत्त्वा तद्भावपूरितः ।।६।।

उनका पुष्प, फल या चन्दन आदि से, उनकी बाल्यावस्था के

अनुरूप प्रिय नैवेद्य आदि, उन्हीं की भावना से पूरित होकर निवेदित करना चाहिए॥६॥

दत्त्वा तदात्मनात्मानं बालभावविचेष्टितम् ।
ताभिः प्रियकथालापः क्रीडाकौतूहलादिकम् ।
यथातथाप्रियत्कृत्वाकृत्वा सिद्धिश्वरो भवेत् ।।७।।

तत्पश्चात् अपनी बालभाव की चेष्टाओं से कथा-वार्ता, क्रीडा-कौतूहल आदि जो कुछ भी उन्हें प्रिय हो, वह प्रसन्नता के लिए करके, उन्हें सन्तुष्ट कर, साधक सिद्धियों का स्वामी हो जाता है॥७॥

तस्मात् षोडशपर्यन्तम् युवती प्रचक्षते ।
तत्र भावः प्रकाशश्चेत् सम्भवः परमो मतः ।।८।।

उससे ऊपर, नव से सोलहवर्ष तक की कन्याएँ युवती, कही जाती हैं। उनके सम्मुख रहने पर जो भाव प्रकट होता है, वही परम श्रेष्ठतम् भाव कहा गया है॥८॥

रक्षितव्याः प्रयत्नेन रक्षतास्तानकारयेत् ।
न ब्रह्मा नहरिर्नसंभुर्न्नदेवीनाऽपि षोडशी ।।९।।
न च मृत्युञ्जयो देवः प्रभवन्ति न देवताः ।
शस्त्रेण शूल योगेन नागदंष्ट्रिविषेण वा ।।१०।।
रौद्रेणातिवरेणैव महाव्याधि विषादापि ।
म्रियतेतेन पापेन सत्यं सुव्रत निश्चितम् ।।११।।

हे सुव्रत! ये सभी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने योग्य हैं, उनको रक्षा करे तो ऐसा करने से उससाधक को ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवी, षोडशी (त्रिपुरा), मृत्युञ्जय आदि देवता प्रभावित नहीं कर पाते हैं न कोई अन्य ही देवता। शस्त्र, शूल, नाग के डसने के विषप्रयोग, भयानकज्वर, महाव्याधि, विष आदि से वह नहीं मरता, वह अपने कृत पाप के कारण मरता है। इसमें कोई संशय नहीं है॥९-११॥

भैरव उवाच-

चतुर्थाश्रमिणां देवि मोक्षदात्री सदा कथम् ।
कुलभावविराधित्वात्संशय मम दूरय ।।१२।।

भैरव बोले- हे देवि! चतुर्थाश्रम, सन्यासमार्गगामी तो कुलभाव के विरोधी होते हैं, तब भी आप उन्हें सदैव कैसे मोक्षप्रदान करती हैं। मेरे इस संशय को आप दूर कीजिये॥१२॥

श्रीदेव्युवाच–

मोक्षत्वाद्वर्णबहुलं यद्यस्ति कुलभैरव ।
केवलं कुलयोगेन प्रसीदामि नसंशयः ।।१३।।

श्रीदेवी बोलीं– हे कुलभैरव! मोक्ष के मार्ग में वर्ण की विभिन्नता बहुत है, ऐसी स्थिति में केवल कुलयोग के मार्ग की अनुगामी साधना से मैं (शीघ्र) प्रसन्न होती हूँ, इसमें कोई संशय नहीं है॥१३॥

चतुर्थाश्रमिणां देव अवधूताश्रमो महान् ।
तत्राहं कुलयोगेन प्रसीदामि न संशयः ।।१४।।

हे देव! सन्यासियों में भी अवधूत-आश्रम अत्यन्त श्रेष्ठ है। उसमें मैं कुलयोग के आचरण से प्रसन्न होती हूँ। इसमें कोई संशय नहीं है। (सन्यास में भी अवधूतसाधक कौलिक हो सकते हैं)॥१४॥

यदि न स्यात्तथावत्स शृणु तत्कथयामिते ।
ज्ञानभावसमुत्पन्ने संप्राप्य च तदाज्ञया ।।१५।।
तदा योगेऽवियुक्तः स्यात्तां प्रपूज्य कुलान्तरे ।
कुण्डलीशक्तिवरेण तदा योगं समभ्यसेत् ।।१६।।

हे वत्स! यदि अवधूताश्रम की स्थिति न बने तब क्या करे, यह मैं तुमसे कहती हूँ। तुम उसे सुनो। जब साधक में ज्ञान का भाव उदय हो जाय तो वह अपनी इष्टदेवी से आज्ञा ले, उसी में लगा हुआ उसका पूजन करे, कुलम।ः से अतिरिक्त होने पर कुण्डलिनीशक्ति का वरणकर तत्सम्बन्धी योग का भलीभाँति अभ्यास करे॥१५-१६॥

निर्द्वन्द्वो निरहंकारः शुद्धनाडीगणो ब्रवीत् ।
मृद्वासनसमासीनः स्वर्गी संयमनेमतः ।।१७।।

इससमय सभीप्रकार के द्वन्द्वों और अहंकार से रहित हो, शुद्ध नाडीगणों से संवाद करे। सम्पर्कसाधना चाहिए। तब साधक मृदु (सुखकर) आसन पर भली-भाँति सुखासीन हो। स्वर्ग (सहस्त्रार) में अपनी बुद्धि को संयमित करे, ध्यान केन्द्रित करे॥१७॥

मेरुदण्डबहिः पार्श्वे चन्द्रसूर्यात्मके शिवे ।
मध्ये सुषुम्णा संदिष्टा तन्मध्ये चित्ररूपिणी ।।१८।।
तत्रैव ग्रथितं पद्मं मूलादि ब्रह्मरंध्रगान् ।
कालिकोंकार रूपेण डाकिन्याद्युपलक्षिताम् ।।१९।।
मूलद्वारं समासाद्य स्थिता नागस्वरूपिणी ।
वायुनाभिद्यते वज्र दृढं विद्रावयेत्ततः ।।२०।।

मेरुदण्ड के बाहरी दोनों भागों में चन्द्र और सूर्यस्वरूपिणी इड़ा-

पिंगला नामक दो शिवानाडिकाख्या देवियाँ विराजमान रहती हैं। उनके मध्य में मूलाधार से लेकर ब्रह्मरंध्र पर्यन्त अनेक पद्म गुँथे हुए हैं। उन्हीं में से मूलद्वार अर्थात सहस्त्रार का आश्रय ले नागस्वरूप में भगवती कालिका डाकिनी आदि शक्तियों से उपलक्षित हो ॐकार रूप से स्थित हैं। जो वायुतत्त्व से भेदी जाकर दृढ़वज्र को भी विद्रावित कर, पार करती हुई, ऊपर उठती है॥१८-२०॥

उच्छ्वासोज्वल कायस्यशिखायाति समुज्ज्वला ।
प्रतिचक्र प्रबुद्धासौ जीवात्मानं परे कुले ।।२१।।
नियोजयति तद्योगादमृतं क्षरते चिरात् ।
व्योम प्रोभिद्यमानानां ते गतौ चन्द्रदिवाकरौ ।।२२।।

तब ऊपर उठती हुई अपनी निर्मलकाया से भलीभाँति प्रकाशिता कुण्डलिनी रूपवाली वह, शिखर की ओर जाती है। उससमय वह प्रत्येक चक्रों को जागृत करती हुई जीवात्मा को परकुल सहस्त्रार से नियोजित करती है, तब उस मिलन के कारण शीघ्र ही अमृत का क्षरण होता है और आकाश के भेदन के पश्चात् चन्द्र-दिवाकर अर्थात् त्रिनाडिका के ऊर्ध्वमिलन स्तर का भी भेदन हो जाता है॥२१-२२॥

अधोवक्रं महापद्मं क्रोडीकृत्य सुषुम्णया ।
व्यावृत्य नासिकामध्ये गतचिंतान्तरगता ।।२३।।
ऊर्ध्वभित्वा तु तल्लिंगं दृढतत्पुष्करान्ततः ।
बहिरुद्गमनाकांक्षाकारिणी मोक्षदायिनी ।।२४।।
जीवेन दृढसम्बद्धा स्थिता परमसन्निधौ ।
एतद्भेदं विद्वांसो भित्वा यांति परं पदम् ।।२५।।

वहाँ जहाँ अधोमुखी महापद्म सुषुम्णा नाड़ी के गोद में स्थित है। घुमड़कर नासिकामध्य में चिन्ता को पारकर स्थित हो, उसके ऊपर उस कमल के मध्यस्थित लिंग का भेदन कर, बाहर निकलने की आकांक्षा रखनेवाली वह कालिका (कुण्डलिनी शक्ति) मोक्ष देने वाली है। जीव से भलीभाँति दृढ़तापूर्वक सम्बन्ध हो उस परमतत्त्व सदाशिव की सन्निधि में स्थित होती है। कुण्डलिनी के इस भेद (रहस्य) को जो विद्वान् जानता है, वही परमपद, मोक्ष को प्राप्त करता है। (यहाँ मोक्षकांक्षी को कुण्डलिनी रूपिणी कालिका की आराधना की प्रेरणा दी गई है)॥२३-२५॥

अदृष्टधातु जीवोऽसौ बहिर्याति दिने दिने ।
दिनेशांगुलिमानेन तदर्धंचोपवासतः ।।२६।।

यह जो जीव (प्राण) तत्त्व है वह सूर्य, १२ अंगुलमान, लम्बाई

का होकर अदृष्टधातु रूप में प्रतिदिन बाहर निकलता है। उसका आधा ६ अंगुल उपवास से निकलता है॥२६॥

द्विगुणं रतिकालेस्यात् द्विगुणं भोजनात् बहिः ।
अत ऊर्ध्वं वहे देवत्रिगुणं यदि दैवतः ।
न्यूनं वा तदर्धं प्राणं शरीरं परि मुंचति ।।२७।।

उससे दूना अर्थात् १२ अंगुल रतिकाल में, उससे दूना २४ अंगुल भोजन से नष्ट होता है, यदि दैवयोग से इससे अधिक प्राणवायु का संक्षरण होता है तो वह ७२ अंगुल होता है। शरीर कम से कम उसका आधा अर्थात् ३६ अंगुल तक प्राणवायु का सब ओर से विसर्जन करता है॥२७॥

शरीरं समती नीत्वा न्यूनं वा वटुकेश्वरः ।
कुंभयित्वा अधोवायुं कुण्डलीमुखवर्त्मनि ।।२८।।
योजयित्वा ततो बीजं नीत्वा नादावसानकम् ।
गमांगमं कारयित्वा सिद्धो भवति नापरः ।।२९।।

बटुकेश्वर (साधक) शरीर को समानावस्था, ऋजुकायस्थिति में स्थापित कर या न्यून (संकुचित) कर कुण्डलीमुख के मार्ग से अधोवायु का कुम्भक करे। तब बीजमंत्र के भोजन से उस कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर उसे नादावसान स्थिति में स्थापित करे। इसप्रकार जो साधक अपनी कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर ऊर्ध्वमुख से सहस्त्रार से उठाकर अधोमुख सहस्त्रार में स्थित नादविन्दु तक ले जाता है तथा पुनः वहाँ से उसे अवरोहणक्रम से नीचे उतारता है। वह ऐसा करके सिद्ध हो जाता है। अन्यथा सिद्ध नहीं होता॥२८-२९॥

पीयते वाद्यते यद्यत्ततत्सर्वं कुण्डलीमुखे ।
हुत्वा सिद्धिमवाप्नोति नरबंधे न बध्यते ।।३०।।

ऐसी स्थिति में साधक जो कुछ भी खाता या पीता है वह कुण्डलीमुख में होम कर साधक सिद्धि प्राप्त कर लेता है वह बंधन में नहीं बँधता॥३०॥

भिक्षाकार्यान्न च स्वार्थात्कुण्डलिन्या कृते पुनः ।
रेमातर्देहि मे भिक्षां कुण्डली तर्पयाम्यहम् ।।३१।।

साधक को अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु भिक्षा नहीं मांगनी चाहिए। वह कुण्डलिनी के लिए ही भिक्षायाचन करे। भिक्षा माँगने के समय वह कहे कि हे माता मुझे भिक्षा दीजिये इससे मैं अपनी कुण्डलिनीशक्ति को तृप्त करूँगा॥३१॥

अवधूताश्रमे स्थित्वा भैरवानंदतत्परः ।
भैरवोऽहं न चान्योऽस्मि न देवो मत्परः क्वचित् ।।३२।।

तन्त्रमंत्रांजनं सर्वं मयि जातं न चान्यथा ।
नास्मत्परतरो देवो न जातो न जनिष्यसि ।।३३।।
शिवोहं भैरवानंदमग्नोहं कुलनायकः ।
रक्तचंदनदिग्धांगो रक्तकौपीनभूषितः ।।३४।।
रक्तमाल्यांबरधरो हेतुयुक्तसदा भवेत् ।
एवं भिक्षाचरन् भिक्षुः भैरवाचार तत्परः ।।३५।।

अवधूत आश्रम में रहता हुआ साधक, भैरवानंद में तत्पर हो **'भैरवोहं.......कुलनायकः'** मैं स्वयं ही साक्षात् भैरव हूँ। मैं भैरव के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हूँ। सभी तंत्र-मन्त्र, अंजनादि मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं, अन्य से नहीं। मेरे से अतिरिक्त कोई अन्य देवता भी नहीं है। मेरे से भिन्न न कोई देवता उत्पन्न हुआ है और न होगा। मैं स्वयं शिवस्वरूप हूँ। मैं भैरवानन्द में मग्न हूँ। मैं कुलनायक हूँ। के भाव से युक्त हो रक्तचन्दन से चर्चित शरीर हो, लाल कौपीन से सुशोभित हो, लालवस्त्र एवं लालफूल की माला धारण कर सदैव हेतु साधना के उद्देश्यपूर्ति में लगे हुए, भैरवाचार का आचरण करता हुआ, भिक्षु (साधक), भिक्षा मांगते हुए विचरण करे॥३२-३५॥

क्षीयते न च पापेन वध्यते न च जंतुना ।
यत्र देशे त्वयंयाति सदेशः क्षितिनायकः ।।३६।।

ऐसा अवधूताश्रमी साधक न तो किसी पाप के कारण हानि को प्राप्त करता है और न किसी जन्तु द्वारा मारा जाता है। जिस स्थान में इसप्रकार का साधक जाता है वह देश स्वतः पृथ्वीतल पर नायकत्व को प्राप्त कर लेता है॥३६॥

अत्र निंदापरा ये तु द्रवन्ति तत्क्षतादपि ।
तस्माद्यस्मात्पूजयितव्यो न तिरस्कार्य एव हि ।।३७।।

इसकी जो निन्दा करते हैं वे हानि से पीड़ित होते हैं। इसलिये ऐसे साधक का जिस किसी प्रकार हो, सम्मान किया जाना चाहिए। वह किसीप्रकार भी तिरस्कार के योग्य नहीं हैं जहाँ उसकी जो इच्छा हो वही करना चाहिए न कि उससे अप्रिय करे॥३७॥

तदन्ये देवदेवेश विनोपचार विस्तारम् ।
पूजयन्ति महादेवीं कुलांगदृष्टिमात्रतः ।।३८।।

हे देवदेवेश! वे अन्य उपचारों के विस्तार में नहीं जाते तथा कुलांग के दर्शनमात्र से ही महादेवी की पूजा सम्पन्न करते हैं॥३८॥

एकाकी निर्जने देशे श्मशाने निर्जने वने ।
शून्यगेहे नदीतीरे निःसंग विहरेत्सदा ।।५३।।

वह अकेले निर्जनदेश, श्मशान, निर्जनवन, शून्यगृह (खंडहर) नदीतट, में निःसंगभाव से सदैव विहार करे।।५३।।

वीराणां जपकालस्तु सर्वकाले प्रशस्यते ।
सर्वदेशे सर्वपीठे कर्त्तव्यं न च संशयः ।।५४।।

वीरों के लिए जप का कोई विशेष समय नहीं होता, सभीसमय उनके जप के लिए उपयुक्त हैं। इनके द्वारा सभी देशों (क्षेत्रों) में तथा सभी पीठों पर जप किया जा सकता है। अर्थात् वीर साधकों के लिये कोई देशकालादि का प्रतिबन्ध नहीं होता। इसमें कोई संशय नहीं है।।५४।।

साधकः यद्यदिच्छेष्टः कुलद्रव्यपरायणः ।
तद्ध्यानेन विधानेन कर्त्तव्यं कुलतोषणम् ।।५५।।

साधक जो-जो अभीष्ट की इच्छा करे, उसे कुलद्रव्यपरायण हो, उतना ही चिन्तन करता हुआ, विधिपूर्वक कुल की तुष्टि करनी चाहिए, (यहाँ कुल, कुलांगना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है)।।५५।।

तद्धस्ते जलपुष्पं च पट्टवस्त्रां फलं लभेत् ।
ब्रह्महत्यादिकं पापं क्षणान्नश्यन्ति निश्चितम् ।।५६।।

उसके हाथ में जो भी जल, फूल, रेशमीवस्त्र एवं फलादि प्रदान किये जाते हैं उससे ब्रह्महत्यादि के पाप क्षणभर में ही नष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।।५६।।

अतः परं तु माहात्म्यं वक्तुं नाहं महेश्वरः ।
वीरसाधनकार्यं तु कर्त्तव्यं वीरपुरुषैः ।।५७।।

हे महेश्वर! इससे अधिक माहात्म्यवर्णन में मैं समर्थ नहीं हूँ। सारांश यही है कि वीर पुरुषों (साधकों) द्वारा वीरसाधन अवश्य किया जाना चाहिए।।५७।।

दिव्यैरपि च कर्त्तव्यं पशुभिर्न च पामरैः ।
वरं पामर कार्यं तु नपशोरिति निश्चितम् ।।५८।।

दिव्य साधकों द्वारा यह पूजा की जानी चाहिए किन्तु पशु या पामर (नीच) साधकों को इसमें अधिकार नहीं है। पामर कर भी ले तो पश्वाचारी को निश्चितरूप से इस वीरसाधना में अधिकार नहीं है।।५८।।

यद्यत् परमसंकेतं तत्तयन्मंत्रसाधनम् ।
अंजनं गुटिकाकार्यं कुर्याद्वीरो महाबलः ।।५९।।

महाबली वीर साधक जो-जो पर संकेत (रहस्य) हैं, उनसे सम्बन्धित मन्त्रों की साधना, अंजन और गुटिकादि साधन सम्बन्धी कार्य करे॥५९॥

दिव्ये वीरो न भेदोस्ति यद्भेदं कथ्यते श्रृणु ।।६०।।

दिव्य एवं वीर में कोई भेद नहीं है, जो भेद है, वह कहा जा रहा है, उसे सुनो॥६०॥

शांतो विनीतो मधुरः कलालावण्य संयुतः ।
दिव्यस्तु देववत्पूज्यो वीरश्चोद्धतमानसः ।।६१।।

दिव्यसाधक शान्तचित्त, विनीतस्वभाव, मधुरव्यवहार तथा कला एवं लावण्य से युक्त होने के कारण देवता के समान पूजनीय होता है। किन्तु वीर साधक उद्धत मानसिकता का होता है॥६१॥

विभूतिभूषणैर्वापि चन्दनैर्वापि लेपितः ।
आकार गोपनो वापि वर्णो वा कुलभैरवः ।।६२।।
रक्तचंदनदिग्धांगो वैष्णवो वाप्यथ वैष्णवः ।
असंस्कृतकेशजालः संस्कृतो वा कुलेश्वरः ।।६३।।

वह या तो भस्म के लेपन से अपने को विभूषित रखता है या चन्दन के लेपन से, कुलमार्गसाधक, भैरव, रक्तचन्दन से पूरित अंगों अथवा वैष्णवचिन्हों से अपने मुख्य आकार और वर्ण को छिपाये रखता है। वह कुलेश्वर (कौलिकसाधक) असंस्कृत, अटपटे केशसमूह वाला होता है तो कभी सुसंस्कृत झाड़े हुए केशों वाला होता है॥६२-६३॥

अपमाने च पूजायां हृष्टः तुष्टः सदा भवेत् ।
देवनिंदापरो वापि तत्पूजादिपरोपि वा ।।६४।।
पूजारतः तद्रहितः कुलालापमते स्थितः ।
निजभावसमायुक्तो देववद्विहरेत्क्षितौ ।।६५।।

उसे स्वयं के अपमान एवं पूजा दोनों ही अवस्थाओं में सदा ही प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहना चाहिए। वह चाहे देवता के पूजन में तत्पर हो या उसकी निन्दा में। वह पूजन या पूजारहित हो, परायण हो, केवल कुलानुरूप वार्तागतबुद्धि में ही लगा रहे। ऐसी अवस्था में पूर्वोक्त वर्णित भावों में से अपने अनुरूपभाव का आश्रय ले उसे देवता के समान पृथ्वी पर विचरण करना चाहिए॥६४-६५॥

स्वकुलांतपरेऽथवा कार्या रात्रौ न चान्यथा ।
वेदहीने द्विजे देव यथा मन्त्रेण विद्विषाः ।।६६।।
विष्णुभक्तिर्विना देवभक्तिर्न प्रभवेद्यथा ।
शाक्तं ज्ञानं विना मुक्तिर्यथा हास्याय कल्पते ।।६७।।

गुरुं विना यथाशास्त्रे नाधिकारः कथंचनः ।
पतिहीना यथा नारी सर्वकर्मविवर्जिता ।।६८।।

हे देव! अपने कुल अथवा अन्य के साथ वह रात्रि में अर्चा करे। जिसप्रकार वेदज्ञान से हीन ब्राह्मण, मन्त्र का, विद्वेषी हो जाता है। विष्णुभक्ति के बिना देवभक्ति प्रभावशाली नहीं होती, जैसे शाक्तज्ञान के बिना मुक्ति हास्यास्पद हो जाती है। गुरु के बिना शास्त्र में किसीप्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं होता। जिसप्रकार पति से हीन नारी सभी कार्यों में वर्जित बताई गई है।।६६-६८।।

कुलं विना यथा दिव्यो वीरो वा मम पूजकः ।
नाधिकारीति सोप्यस्मत्तस्माद्भावपरो भवेत् ।।६९।।

उसीप्रकार कुलमार्ग के बिना मेरी पूजा करने वाला दिव्य एवं वीर भावों का आश्रय ले मेरी पूजा का अधिकारी नहीं होता। इसीलिए साधक को भावपरायण (वीर या दिव्यभावानुगामी) होना चाहिए।।६९।।

अविनीतं कुलं यस्य स कथं मम पूजकः ।
तस्माद्यत्नाद् सदा कार्यं यथास्याद्विनयान्वितम् ।।७०।।

जो कुल, विनय या आचार से युक्त नहीं है, वह कैसे मेरा साधक हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता। इसीलिए साधक को प्रयत्नपूर्वक सदैव ऐसा करना चाहिये, जिससे वह विनयान्वित हो।।७०।।

भावाभावे कुलेशास्त्रे नाधिकारी कथं च न ।
तेन भात्रविशुद्धस्तु साधकः कौलिको भवेत् ।।७१।।

भावों के अभाव में किसीप्रकार से कोई कुल एवं शास्त्र का अधिकारी नहीं हो सकता, अतएव कौलिकसाधक भाव से विशुद्ध होना चाहिए।।७१।।

श्रीदेव्युवाच–

पशुभावं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मम भैरव ।
यथाविधि पशुर्विद्यां गृहीत्वा भावतत्परः ।।७२।।
प्रथमं पूर्वसेवार्थं यत्नतः सिद्धिमाप्नुयात् ।
ध्यात्वा तस्य धोवनं वापि न परद्रव्य लोभकृत् ।।७३।।

श्रीदेवी बोलीं–हे भैरव! अब मैं पशुभाव के विषय में कहूँगी। तुम मेरे द्वारा कहे उस तथ्य को सुनो। सर्वप्रथम साधक पशुभाव के गुरु से भावतत्पर होकर (श्रद्धासहित), विधिपूर्वक पशुविद्या (पाशवीदीक्षा) ग्रहण करे। पहले पूर्ववर्णित सेवाहेतु यत्नशील हो सिद्धि प्राप्त करे। उसके स्वरूप का ध्यान करे किन्तु परद्रव्य का लोभ न करे।।७२-७३।।

सिन्धुतीरे कानने वा पर्वते वा सुरालये।
बिल्वमूले विविक्ते च पुण्यक्षेत्रे सुशोभने ।।७४।।
न शूद्रदर्शनं कुर्यात् कौटिल्यं दूरतस्त्यजेत्।
देवता शुद्धभावेन ध्यातव्या च समाहितैः ।।७५।।

नदी के किनारे, जंगल में, पर्वत पर, देवमन्दिर में, बिल्ववृक्ष के जड़ में, एकान्त और सुन्दर तीर्थक्षेत्र में, कुटिलता का, शूद्रों के दर्शन दूर से ही त्याग करते हुए, शुद्धभाव से ध्यानपूर्वक समाहितचित्त से देवता का ध्यान करना चाहिए।।७४-७५।।

त्रिसंध्यं देवपूजास्यात् त्रिसंध्यं जपमाचरेत्।
रात्रौमालां च यन्त्रं च स्पृशेन्नैव कदाचन ।।७६।।
न मंत्रमुच्चरे सुप्त्वा मौनी स्यात् सर्वकर्मसु।
सर्वकाले स्त्रियं नैव गच्छेत्तु साधकोत्तमः ।।७७।।

उत्तमसाधक तीनों संध्याओं में देवपूजन और जप का कार्य सम्पन्न करे। वह कभी भी रात्रि में माला और यन्त्र का स्पर्श न करे और न सोये हुये मन्त्रोच्चारण ही करे। सभी कर्मों में वह मौन व्यवहार करे तथा सभी समयों में (साधना की अवधि में) स्त्रियों का संग न करे।।७६-७७।।

पुष्पगंधं जलं चैव स्वयमानीयमुत्सृजेत्।
ऋतुकालेविना गच्छेन्न च स्वास्त्रीयमादरात् ।।७८।।

वह पुष्प, चन्दन और जल स्वयं लाकर देवता को चढ़ाये। अपनी स्त्री के साथ आदरपूर्वक ऋतुकाल के बिना सम्पर्क न करे।।७८।।

पुराणश्रवणे श्रद्धा वेद-वेदार्थ तत्परः।
न रात्रौ भोजयेत् विद्वान् ताम्बूलं परमेश्वर ।।७९।।

हे परमेश्वर! साधक को पुराणश्रवण में श्रद्धावान् तथा वेद एवं उसके अर्थज्ञान में तत्पर रहना चाहिए। विद्वान् साधक रात्रि में ताम्बूल न खाये।।७९।।

गुरुणायद्यदादिष्टं तत्सर्वं यत्नतश्चरेत्।
अपि तत्कुंकुमं चैव हेतु द्रव्यं च भैरव ।।८०।।
स्पृष्ट्वा स्त्रियं त्रिरात्रं च पंचगव्येन शुद्ध्यति।
रक्तवस्त्रं न गृहणीयाद्देवीभक्तिपरायणः ।।८१।।

हे भैरव! साधक को चाहिए कि गुरु के द्वारा जो-जो आदेश प्रदान किए जायँ उनका वह प्रयत्नपूर्वक आचरण करे। उनके कुंकुम और हेतुद्रव्यों, स्त्रियों का स्पर्श कर साधक तीन रात्रिपर्यन्त पञ्चगव्य का

सेवन करने से शुद्ध होता है। देवीभक्तिपरायण पश्चाचारीसाधक को लालवस्त्र नहीं ग्रहण करना चाहिए।।८०-८१।

विष्णुतंत्रोक्त पूजादि तदनुष्ठानमेव च ।
कार्यं न तत्कथालापं न कुयद्दिवनिन्दनम् ।।८२।।

उसे विष्णुतन्त्र में बताई पूजा आदि के अनुष्ठान को ही करना चाहिए। उसकी व्यर्थचर्चा नहीं करनी चाहिए और न देवताओं की ही निन्दा करनी चाहिए।।८२।।

नित्यश्राद्धं गवां ग्रासं बलिवैश्वादिकंस्तथा ।
तीर्थस्नानपीठदेशेगमनं धर्मतत्परः ।।८३।।

साधक नित्य पितरों का श्राद्ध, गायों को ग्रास (भोजन) बलिवैश्वदेवकर्म कर, धर्म में तत्पर रहकर तीर्थों में स्नान, पीठदेशों की यात्रा करे।।८३।।

पशुस्तु द्विविधो देवपूर्वेण सह भैरव ।
अस्याधिकारः पूजायां गुरुत्वे न कथंचन ।।८४।।

हे भैरव! पहले वर्णित वीर दिव्य के साथ जिस पशुभाव का वर्णन किया गया है वह दो प्रकार का होता है। इसका अधिकार केवल पूजा में है, गुरुकर्म करने में नहीं अर्थात् पश्चाचारी को दीक्षादान का अधिकार नहीं है।।८४।।

पूर्वस्यां नाधिकारोस्ति पूजा देशेगतागते ।
पूर्वस्तु सर्वध्येयैः बहिः कार्यः सदेशतः ।।८५।।

पहले प्रकार के पशु का पूजा देशों में आने जाने का कोई अधिकार नहीं है, उसे सबप्रकार के पूजादेश (चक्र) से बहिष्कृत करना चाहिए।।८५।।

पूर्वदर्शनमात्रेणकुलदर्शनमाचरेत् ।।८६।।

पहले प्रकार के पश्चाचारी के दर्शनमात्र से ही प्रायश्चित्तस्वरूप कुलदर्शन करना चाहिए।।८६।।

ब्रह्महत्यादिकं पापं परं सह्यं न च प्रभो ।
पूर्वदर्शनमात्रेण सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।८७।।

हे प्रभो! पूर्व प्रकार के पश्चाचारी के दर्शनमात्र से ही ब्रह्महत्यादि के महान् असह्य पाप होते हैं, यह मैं आपसे सत्य से भी सत्य तथ्य कहती हूँ।।८७।।

ममात्मा सोऽपि देवेशि विभुरित्यपि सो प्रभो ।
कुलशास्त्रेद्वयं पापोगरिष्टः कुलनायकः ।
स्वकुले महती निंदां परयोगमहेश्वर ।।८८।।
तस्मादपि च तत्पापं पशुसंगात्प्रजायते ।।८९।।

हे प्रभो! हे देवेश! यद्यपि वह भी मेरी ही आत्मा और विभु है किन्तु हे महेश्वर! कुलशास्त्रों में कुलनायक के लिए दो गरिष्टपाप कहे गये हैं। जो अपने कुल की निन्दा करना अथवा दूसरे प्रकार के योगों में अनुरक्त होना है। उससे भी बड़ा पाप पशुसंगति से उत्पन्न होता है॥८८-८९॥

सर्वथा तत्रभावौ द्वौ न प्रकाश्यं कथंचन ।
स्वभावश्च द्विभावश्च पशुर्द्विधाप्रकीर्तितः ॥९०॥

वहाँ पशुसमाज में किसी भी प्रकार से दोनों वीर एवं दिव्य भावों को प्रकाशित नहीं करना चाहिए। पशु दोप्रकार के कहे गये हैं॥९०॥

स्वभावे पशुभावे च जन्मत्रय विभावनात् ।
वीरभावोभवेदेव दिव्यभावश्च जायते ॥९१॥

स्वाभाविक पशुभाव की स्थिति में तीन जन्मों तक विभावना करने से वीरभाव उत्पन्न होता है उससे दिव्यभाव उत्पन्न होता है॥९१॥

वीरात्प्रजायते दिव्यो दिव्यात्वीरो प्रजायते ।
देवे वीरो न भेदोऽस्ति साम्यमत्र विधीयते ॥९२॥

वीर से दिव्य और दिव्य से वीरभाव उत्पन्न होता है। देव (दिव्य) और वीर में कोई अन्तर नहीं है। यहाँ दोनों में ही समानता होती है॥९२॥

भावस्तु मनसोधर्मः शाब्दे स हि कथं भवेत् ।
तस्माद्भावो न वक्तव्यो दिङ्मात्रं समुदाहृतम् ॥९३॥

भाव तो मन का धर्म है, वह शब्दों में कैसे व्यक्त होगा। अर्थात् नहीं लाया जा सकता। इसीलिए भाव का पूर्णकथन न करके यहाँ दिग्दर्शनमात्र उद्धृत किया गया है॥९३॥

यथेक्षुर्गुडमाधुर्यं रसवाज्जायते प्रभो ।
यथा भावे विभावस्तु मनसा परिभाव्यते ॥९४॥

हे प्रभो! जिसप्रकार गुड़ की मधुरता जिह्वा से जानी जाती है, उसीप्रकार भाव और विभाव का अनुभव मन से होता है॥९४॥

एक-एव महादेवः नानात्वं भजते प्रभुः ।
उपाधि भाव भेदेन भावोभेदेन दृश्यते ॥९५॥

एकमात्र भगवान् महादेव ही उपाधि तथा भावों के भेदों के कारण नानारूपों का आश्रय लिये दिखाई देते हैं॥९५॥

आनंदमनसंदोह प्रभुः यो प्रकृति पृथक् ।
रसरूपः सएवात्मा सप्रभुः परमोमतः ॥९६॥

जो प्रभु आनन्दमन का समूह है, आनन्दधन है, वही प्रकृतिरूप

धारण किया हुआ, रसरूप में दिखाई देता है। वही प्रभु परमात्मा कहा गया है॥९६॥

श्रोतव्यः स च मंतव्योः निदिध्यातव्य एव सः ।
साक्षात्कार्यः स एवात्मा आगमैर्विविधैः प्रभो ।।९७।।

हे प्रभो! वही सुनने योग्य है। वही मनन करने योग्य है। वही निदिध्यासन के योग्य है, उसी आत्मा का साक्षात्कार विविध आगमों द्वारा होता है॥९७॥

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यः मनसादिभिः ।
सोपपत्तिभिरेवायं ध्यातव्यं गुरुर्देशिकैः ।।९८।।

उसे श्रुति वेदवाक्यों से सुनना चाहिए, मन आदि अन्तःकरण से उसका मनन करना चाहिए। गुरु और विद्वानों के समीप जाकर उनकी उपपत्ति के अनुसार उसका ध्यान करना चाहिए॥९८॥

उदास एव सर्वात्मा प्रत्यक्षो भवति क्षणात् ।
तस्मिन् देशे तु देवेश प्रत्यक्षे परमेश्वरः ।।९९।।

हे देवेश! उदास अनासक्तभाव से आराधना किये जानेपर वह जो सर्वआत्मा (सबका आत्मस्वरूप) है क्षण भर में प्रत्यक्ष हो जाता है। जहाँ ऐसा किया जाता है उसीस्थान में वह परमेश्वर प्रत्यक्ष हो जाता है॥९९॥

भावो बहुविधो देव भावस्तत्रापि लीयते ।
भुक्त्वा नानाविधं द्रव्यं गविचैको यथारसः ।।१००।।
दुग्धमभ्यासयोगेन नानात्वं भजते प्रभुः ।
तृणेन जायते देव रसस्तस्मात् परो रसः ।।१०१।।

हे देव! भाव बहुत प्रकार के होते हैं जो परस्पर लीन होते रहते हैं। जैसे गौ अनेक प्रकार के द्रव्यों को खाती है किन्तु एकमात्र रस, दूध के रूप में उत्पादित करती है, वही दूध अभ्यास (तापादि) के कारण कतिपय गव्य के रूप में दिखाई देता है। उसीप्रकार प्रभु भी अभ्यास के ही कारण अनेक से एक और एक से अधिक का आश्रय ग्रहण करता है। तृण से (जो गौ द्वारा भोजन किया जाता है उससे) हे देव! रस उत्पन्न होता है, उससे अन्य रस (दुग्ध) उत्पन्न होता है॥१००-१०१॥

तस्माद्दधि ततो नेहः तस्मादपि रसोदयः ।
स एव कारणं तत्र तस्मात्सर्वं च लभ्यते ।।१०२।।

उससे दही और उस दही से नेह (घृत) और उससे भी आनन्दरूप रस का उदय होता है। उसीप्रकार वह परमात्मा ही सबका कारणभूत है तथा सबकुछ उसी से प्राप्त होता है॥१०२॥

तृप्यते च महादेव न कार्यं नापिकारणम् ।।१०३।।
तथैवायं स एवात्मा नाना विग्रहयोनिषु ।
जायते जनिष्यते जातः काल भेदाद्विभाव्यते ।।१०४।।

हे महादेव! उसके तृप्त हो जाने के पश्चात् न कार्य रह जाता है और न कारण, केवल तुष्टि की ही अनुभूति होती है। उसीप्रकार से वह परमात्मा भी अनेक रूपों की योनियों में उत्पन्न होता है, उत्पन्न होगा, और उत्पन्न हुआ के रूप में, कालभेद से जाना जाता है।।१०३-१०४।।

स जातः स मृतो बद्धः स मुक्तः स सुखी पुमान् ।
स्त्री नपुंसकः स स्याद्विद्वानज्ञानमेव सः ।।१०५।।

वह पैदा हुआ है, वह मरा हुआ है, वह बँधा हुआ है, वह मुक्त है, वह सुखी है, वह पुरुष है, वह स्त्री है, वह नपुंसक है, वह विद्वान् है, वही अज्ञानवान् भी है।।१०५।।

नानाभ्यास समायोगान्नानात्वं भजते प्रभुः ।
एक एवैससर्वात्मा रसरूपी सनातनः ।।१०६।।

वह प्रभु अनेक अभ्यासों के समायोजन से अनेकत्व का आश्रय लेता है किन्तु वास्तविकरूप से वह सर्वात्मा, सनातन, एकमात्र और रसस्वरूप ही है।।१०६।।

अव्यक्तः स च व्यक्तं स्यात् प्रकृत्या जायते क्रमात् ।
तस्मात्प्रकृति योगेन ज्ञायते नान्यथा क्वचित् ।।१०७।।

जो अव्यक्त है, वही प्रकृति से व्यक्त होता है। क्रमशः वह प्रकृति के योग से जाना जाता है, इसके अतिरिक्त कहीं कुछ और नहीं होता।।१०७।।

विना घटत्वयोगेन न प्रत्यक्षो यथा घटः ।
तद्भिद्यमानोऽपि न भेदमुपगच्छति ।।१०८।।

जिसप्रकार घटत्व के अभाव में घट का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। उसीप्रकार वह भिद्यमान होने पर भी भेद को प्राप्त नहीं होता।।१०८।।

मां विना पुरुषभेदो न चेद्याति कथंचन ।
न प्रयोगे न च ज्ञानेन श्रुत्वा न गुरुक्रमात् ।।१०९।।

न प्रयोग, न ज्ञान, न गुरुपरंपरा किसी भी प्रकार से वह पुरुष मेरे (प्रकृति के) बिना भेद को प्राप्त नहीं हो सकता।।१०९।।

प्रकृत्या ज्ञायते यस्मिन् प्रकृत्या लुप्यते पुमान् ।
प्रकृत्याधितिष्ठतं सर्वं प्रकृत्यावस्थितं जगत् ।।११०।।

वह विराट् पुरुष जहाँ प्रकृति के कारण जाना जाता है वहीं लुप्त

भी होता है। प्रकृति से ही सब अधिष्ठित है। प्रकृति में ही यह सम्पूर्ण जगत् अवस्थित है॥११०॥

प्रकृत्या भेदमाप्नोति प्रकृत्या भेदमाप्नुयात् ।
न वस्तु प्रकृति शेवेत्स पुमान् परमेश्वरः ॥१११॥

प्रकृति के ही कारण वह भेद को प्राप्त करता है और प्रकृति के कारण ही उसे भेद प्राप्त होता है। वह परमेश्वर, वह पुरुष, वस्तु प्रकृति की सेवा नहीं करता॥१११॥

तयोः समरस ज्ञानं वस्तुतस्तु महेश्वरः ।
उभयोः समवायस्तु तत्त्वं परमं पदम् ॥११२॥

उन दोनों के समरसता का ज्ञान ही वास्तविक महेश्वरस्वरूप है। उन दोनों का समवाय ही परम पद है॥११२॥

प्रकृत्यस्मिन् स्वयं प्राज्ञश्चित्स्वरूपः पुमानसौ ।
निर्विकारः सर्ववेदप्रमाणगोचरः पुमान् ।
व्यक्तोभवति देवेशः स्वायमात्मसमुद्भवः ॥११३॥

हे देवेश! इस प्रकृति में वही पुरुष जो प्राज्ञ, चित्स्वरूप, विकार रहित है, जो सभी वेदों के प्रमाण से ही गोचर होता है, अपने आपसे ही उत्पन्न हो, व्यक्त होता है॥११३॥

उपायाः सन्ति बहुधा ज्ञानं वर्त्म सनातनम् ।
तथापि प्रकृतेर्योगात् क्षिप्रं प्रत्ययतां व्रजेत् ॥११४॥

यद्यपि ज्ञानमार्ग में उसे जानने के अनेक सनातन उपाय हैं तथापि प्रकृति के सम्पर्क से वह शीघ्र ही प्रत्यय की स्थिति को प्राप्त होता है॥११४॥

स मातृका ज्ञान सेतु द्वारं चैव प्रचक्षते ।
नाना देशं समुत्तीर्य समुद्रं विशते चिरात् ॥११५॥
उद्भटे नावमास्थाय क्षणाद्याति यथा प्रभो ।
तथैव साधको अस्मिन् विष्णुत्वं चैव भैरव ॥११६॥

हे प्रभो! हे भैरव! वह मातृकाज्ञान का सेतु और द्वार कहा जाता है। जिसप्रकार नाविक श्रेष्ठ नाव का आश्रय ले क्षण भर में पार हो जाता है। वह अनेक देशों (स्थितियों) को पारकर समुद्र में शीघ्र ही प्रवेश कर जाता है। हे भैरव! विष्णुत्व भी उसीप्रकार उद्देश्य प्राप्ति में सहायक हैं॥११५-११६॥

वैजात्यं चाति चेत्तत्र कथं च तद्धिकारणम् ।
तस्मात् परंपरा जातास्तेहि कारणत्यं गताः ॥११७॥

परम्परा जो चली आ रही है वही कारणता को प्राप्त है॥११७॥

न कारणादृते वस्तु साक्षात्तु प्रतिकारणम् ।
स्त्रीभावं प्रकृतिर्ज्ञेया पुंभावः पुरुषोमतः ।।११८।।

कारण के अतिरिक्त कोई वस्तु साक्षात् प्रतिक्रिया करने वाली नहीं हो सकती। स्त्रीभाव को प्रकृति एवं पुरुषभाव को पुरुष जानना चाहिए॥११८॥

ज्ञाप्तिर्ज्ञेय विभागेन ज्ञायतां भैरवेश्वरः ।
घट् प्रत्यक्षतां यातु आलोकोव्यंजको यथा ।।११९।।

हे भैरवेश्वर! यह ज्ञाप्ति है। यह जानने योग्य है, जब-तक यह अन्तर है तभी-तक जानने की प्रक्रिया होती है। जैसे घट के प्रत्यक्ष होने में प्रकाश एक साधन मात्र है, उसी प्रकार ज्ञेय और ज्ञायता में ज्ञाप्ति का स्थान है॥११९॥

सतत्कारणमेवैतत् प्रकृत्या चैव भैरव ।।१२०।।

हे भैरव! इसीप्रकार प्रकृति के कारण वह पुरुष भी कारणमात्र ही है॥१२०॥

दिव्यभावो वीरभावो यस्यचित्तेव्यवस्थितः ।
जीवन्मुक्तः स एवात्माभोगार्थमटते महीम् ।
देवी पुत्रः स एवात्मा भैरवः परिकीर्त्तितः ।।१२१।।

ये दिव्यभाव एवं वीरभाव जिसके चित्त में व्यवस्थित हो जाते है, वह साधक जीते जी मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। तथा अपने भोग को ही पूर्ण करने के लिए पृथ्वी पर घूमता हुआ दिखाई देता है॥१२१॥

भावत्र्याणां मध्येतु भावद्वौ प्रतिष्ठितम् ।
नवक्तव्यं महादेव कुलाचारं कुलोत्तमैः ।।१२२।।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतन्त्रे भावविवेचननामषोडशतत्त्वम्॥१६॥

हे महादेव! वह साधकात्मा देवी का पुत्र भैरव कहा गया है। कहे गये तीनों भावों में वीर और दिव्य ये ही दो भाव प्रतिष्ठित हैं। उत्तम कुलसाधकों से कुलाचार का कथन नहीं करना चाहिए। अर्थात् वीरभाव, दिव्यभावापन्न भैरवत्व को प्राप्त जीवनमुक्त साधकों के लिए कुलाचार का कोई विशेष महत्त्व नहीं रह जाता। उनका स्वयं का कार्य ही आचार हो जाता है॥१२२॥

श्रीराघवभट्ट विरचित कालीतत्त्व में भावविवेचन नामक सोलहवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई॥१६॥



सप्तदशतत्त्वम्

* कुमारीपूजनविधिः *

अथ कुमारी पूजनविधिरूच्यते—अब कुमारीपूजाविधि कही जाती है। तदुक्तं यामलादौ—जो यामल आदि ग्रन्थों में कही गई है।

एकवर्षा भवेत्संध्या द्विवर्षा च सरस्वती ।
त्रिवर्षातु त्रिधामूर्तिश्चतुर्वर्षातु कालिका ।।१।।
सुभगा पंचवर्षास्यात् षड्वर्षातु भवेदुमा ।
सप्तभिर्मालिनी साक्षादष्टवर्षा च कुब्जिका ।।२।।

कुमारी पूजन में एक वर्ष की कन्या संध्या, दो वर्षीया सरस्वती, तीनवर्षीया त्रिधामूर्त्ति (महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती स्वरूपिणी) चारवर्ष की कालिका, पाँचवर्ष की सुभगा, छःवर्ष की उमा, सात वर्ष की मालिनी, आठवर्षीया कुब्जिका होती है।।१-२।।

नवभिः कालसंकर्षा दशभिश्चापराजिता ।
एकादशैश्च रुद्राणी द्वादशाब्दैरक्तभैरवी ।।३।।
त्र्योदशे महालक्ष्मी द्विसप्ते कुलनायिका ।
क्षेत्रज्ञा पंचदशीयः षोडशे चर्चिकामता ।।४।।
एवं क्रमेण पूजयेत् यावत्पुष्पं न विद्यते ।।५।।

नववर्षीया कालसंकर्षा, दसवर्षीया कन्या अपराजिता होती है। एकादश वर्ष की रुद्राणी, द्वादश वर्ष की रक्तभैरवी, तेरहवर्षीया महालक्ष्मी, चौदह वर्ष की कुलनायिका, पन्द्रह वर्ष की क्षेत्रज्ञा और सोलहवर्षीया चर्चिका कही गई है। कुमारीपूजन में इसीक्रम से तब-तक कन्याओं का पूजन किया जाना चाहिए जब-तक उनके पुष्पदर्शन (मासिकधर्म) का वय न उपस्थित हो जाय। अन्य ग्रन्थों में २ से १० वर्ष की नवकन्याओं के कुमारीपूजन का विधान है, वहीं यहाँ रजोदर्शन पूर्वतक की कन्या कुमारीपूजन की अधिकारिणी कही गई है।।३-५।।

प्रतिपदादि पूर्णांत वृद्धिभेदेन पूजयेत् ।।६।।

यह पूजन शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक एक-एक कन्या बढ़ाते हुए करना चाहिए।।६।।

कुमारीं पूजयेद्यस्तु षोडशेचैवभक्तिमान् ।
पूजयित्वा तु भक्त्या च सर्वसंपत्तिमान्भवेत् ।।७।।

भक्तियुक्त जो साधक भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त षोडश (१६) कुमारियों का पूजन करता है, वह भक्ति पूर्वक पूजन करके सबप्रकार की सम्पत्ति से सम्पन्न हो जाता है।।७।।

पूजयेत् कुलविद्यानामेकां वा नवभैरवीम् ।
पञ्चप्रणवयोगेन चैतन्यमनुनार्चयेत् ।।८।।

कुलविद्याओं में एक या नवभैरवियों का कुमारीपूजन के निमित्त पूजन करना चाहिए। इनका पूजन तत्सम्बन्धी उस चैतन्यमन्त्र द्वारा करना चाहिए जो पञ्चप्रणव से युक्त हों।।८।।

अर्चयेद्वैषडंगानि कामेश्वर्यादिनामतः ।
वाग्भवेन च पुरक्षोभं मायाबीजगुणाष्टकम् ।।९।।
श्रियोबीजे श्रियोनाथं स्त्रीबीजेनाधि संक्षयः ।
भैरवेण तु बीजेन नखवत्सुपजायते ।।१०।।

कुमारी पूजनक्रम में कामेश्वरी आदि नामों से कन्याओं का षडंग पूजन करे। वाग्भव (ऐं) बीज से पुरक्षोभ करे। माया (ह्रीं) बीज से अष्टगुणों का, श्री (श्रीं) बीज से श्रीपति विष्णु का, स्त्री **(हसौं सौः)** बीज से **अधिसंक्षय भैरव** बीज से **न खवत्म्** उत्पन्न होता है।।९-१०।।

कुमारिका ह्यहं नाथ सदात्वं च कुमारिका ।
अष्टोत्तरशतं वापि एकां कन्यां प्रपूजयेत् ।।११।।

क्योंकि हे नाथ! मैं कुमारिका हूँ और आप स्वयं कुमारिकानाथ हैं। कुमारीपूजनक्रम में एक या १०८ कन्याओं का पूजन करना चाहिए।।११।।

कालाग्निशिवपर्यन्तं तथा कार्यादि संहतिः ।
सप्तद्वीप समुद्राश्च भुवनानि चतुर्दश ।।१२।।

उसीप्रकार कालाग्नि से शिवपर्यन्त रुद्रों की संहति करनी चाहिए। तत्पश्चात् सातद्वीपों, सातसमुद्रों एवं चौदहभुवनों की भी योजना करनी चाहिए।।१२।।

विधियुक्तं कुमारीभिर्भोजयेच्चैव भैरवीम् ।
पाद्यमर्घं तथा धूपं कुंकुमं चन्दनं शुभम् ।
भक्तिभावेन संपूज्य निवेदयेच्चसाधकः ।।१३।।

तब साधक विधिपूर्वक कुमारियों सहित भैरवी को भोजन

करावे। साधक इस पूजन में पाद्य, अर्घ, धूप, कुंकुम, शुभ चंदन से भक्तिभाव से पूजन करे॥१३॥

प्रदक्षिणात्रयं कुर्यादादिमध्ये शुभं भवेत् ।
पश्चाच्च दक्षिणा देया रजतं स्वर्णमौक्तिकम् ।।१४।।

पूजन के आदि-मध्य में तीन प्रदक्षिणाओं के करने से शुभ होता है। अन्त में चाँदी, सोने या मोतियों की दक्षिणा अर्पित करे॥१४॥

विवाहयेत्स्वयं कन्यां ब्रह्महत्या विनश्यति ।
गोहत्या स्त्रीहत्या च सर्वपापं प्रणश्यति ।।१५।।

यदि स्वयं कन्या का विवाह कराये तो ऐसा करने से, ब्रह्महत्या नष्ट हो जाती है। साथ ही गोहत्या, स्त्रीहत्या आदि सभी पाप नष्ट हो जाते हैं॥१५॥

माता च पितरौ चैव भ्रातरश्चैव सर्वदा ।
ये च ये च पुनः सर्वे कन्यादानं प्रकुर्वते ।
भुक्तिमुक्ति फलं तेषां सर्वसौभाग्यसंपदः ।।१६।।

सदैव साधक द्वारा कन्यादान के पश्चात् माता-पिता भाई आदि जो-जो सम्बन्धी हैं वे कन्यादान करें तो। ऐसा करने से उन्हें भोग एवं मोक्ष सहित सभीप्रकार का सौभाग्य एवं संपत्ति प्राप्त होती है॥१६॥

परलोके वसेन्नित्यं त्रिनेत्रो भगवान्हरिः ।
षष्टिकोटि सहस्राणि अश्वमेध फलं लभेत् ।।१७।।

वह परलोक में, परंधाम में नित्य त्रिनेत्र (शिव) तथा भगवान् हरि (विष्णु) के साथ निवास करता है। वह साठ हजार करोड़ अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है॥१७॥

एवं फलं लभेत्सद्यः कन्यां यस्तु विवाहयेत् ।
वा कन्योद्वाह्येद्यावत्तावदब्दं नरेश्वरः ।।१८।।

जो कन्या का विवाह करता है, वह उपर्युक्त फल शीघ्र ही प्राप्त करता है अथवा जितनी कन्याओं का विवाह कराता है, उतने वर्षों तक राजा होता है॥१८॥

एकैकं नवमुद्धृत्य स्वर्गलोकगतेऽपि च ।
यावत्कन्यादानस्तु सतावद्भूमि दिवौकसः ।।१९।।

एक-एक क्रम से बढ़ाते हुए वह जितना कन्यादान किया होता है, स्वर्गलोक में जाकर उतनी भूमि प्राप्त कर लेता है॥१९॥

कन्यादानं महादानं सर्वदानेषु चोत्तमम् ।
दौर्भाग्यं नश्यति क्षिप्रं सौभाग्यं च प्रवर्तते ।।२०।।

कन्यादान एक महादान है जो सब दानों में श्रेष्ठ है। इसके करने से दौर्भाग्यनष्ट होता है और शीघ्र सौभाग्य में प्रवर्तित हो जाता है।।२०।।

राजद्वारे लभेत्पूजां मान्ये चैव कुलेश्वरः ।
सर्वथैव कुमारीश्चेत्पूजयेच्च प्रयत्नतः ।।२१।।

वह राजद्वार में पूजा प्राप्त करता है तथा सम्मानित लोगों में कुलेश्वर (कौलोत्तम) हो जाता है। इसलिए यदि पूजन हेतु कुमारी उपलब्ध हो जाय तो सबप्रकार से प्रयत्नपूर्वक उसका पूजन करना चाहिए।।२१।।

महद्भये समुत्पन्ने कन्यां चैव प्रपूजयेत् ।
अंते च लभते मोक्षं कन्यानां पूजनेरतः ।।२२।।

महान् भय उपस्थित होने पर कन्या का भलीभाँति पूजन करना चाहिए क्योंकि कन्या के पूजन में रत साधक, मोक्ष प्राप्त करता है।।२२।।

अथ कन्यापूजन पद्धतिः—प्रतिदिनं सन्ध्यानाम्नीं कुमारिकामानीय। गंधोदकेन संस्नाप्य चंदनादिना संलिप्य। कामरूपपीठे नवकोणं चक्रं निर्माय पुष्पसंकीर्णे पुरोवर्तिनिपीठे संवेश्य।

प्रतिदिन संध्यानाम की कुमारिका (एक वर्षीया कन्या) को लाकर उसे गंधोदक चन्दन मिले जल से स्नान कराकर चन्दन आदि का लेप करना चाहिए। पुष्प बिखेरे हुए कामरूपपीठ पर नवकोणात्मक चक्र का निर्माण करें। तब सम्मुख पीठ पर बैठे। तत्पश्चात्—

ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं कुलवागीश्वर्यै नमः। प्रथम कोण में।
ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं वज्रेश्वर्यै नमः। द्वितीय कोण में।
ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं भगमालिन्यै नमः। तृतीय कोण में।

ततः षट्कोणेषु अनंगकुसुमाद्या षट्शक्ती पूजयेद्यथा। तब शेष छः कोणों में अनंगकुसुमा आदि छः शक्तियों का इसप्रकार पूजन करे।

ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं कुल कुमारिके हृदयाय नमः।
ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं कुलनायिके शिरसे स्वाहा।
ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं कुलभैरवि शिखायै वषट्।
ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं कुलवागीश्वरि कवचाय हुँ।
ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं कुलपालिके अस्त्राय फट्।
ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं सिद्धिजये पूर्ववक्त्राय नमः।

ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं कुब्जिके पश्चिमवक्त्राय नमः।

ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं कालिके दक्षिणवक्त्राय नमः।

इत्यंगानि सम्पूज्य। इससे अंगों का स्पर्शपूर्वक पूजन करे।

ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं कुल प्रर्चर्च्यैं कुमारिके इदमाचमनीयम्।

क्लीं संध्यायै अर्घ्यं नमः। स्त्रीं संध्यायै कुमारिकायै एषदीपः ऐं संध्यायै कुलकुमारिकायै इदं वस्त्रं चन्दनम् नमः। क्लीं संध्यायै कुमारिकायै पुष्पं नमः। ऐं संध्यायै कुमारिकायै धूपम् नमः ऐं संध्यायै एष दीप। ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं ह्सौं संध्यायै कुमारिकायै इदं वस्त्रं एवं क्रमेण षोडशोपचारैः पंचोपचारैर्वा कुमारीः पूजयित्वालितवक्त्रे सपरिवारां मूलदेवतां सम्पूज्य।

उपर्युक्त **ऐं ह्रीं.......इदं वस्त्रं** के क्रम से षोडशोपचारों या पंचोपचारों से कुमारिका का पूजन कर अलितवक्त्र (तीर्थयुक्तमुख) हो सपरिवार मूल देवता का पूजन करे।

प्रदक्षिणाकृत्य दण्डवत्प्रणम्य यथासंभवं स्वर्णादि दक्षिणां दत्त्वा संध्ये च कुलकुमारिके क्षमस्वेति विसर्जयेदिति।

तब प्रदक्षिणा कर दण्डवत् प्रणाम करे और यथासंभव स्वर्णादि की दक्षिणा देकर **'संध्ये कुल कुमारिके क्षमस्व'** ऐसा कहकर विसर्जन करे।

एवं च द्वितीयदिने सरस्वतीं कुलकुमारिकां पूजयेत्। एवं तृतीय-दिने त्रिमूर्तिकुलकुमारिकां पूजयेत्। एवं चतुर्थदिने कालिकां कुमारिकां पूजयेत्।

इसीप्रकार दूसरे दिन सरस्वती, तीसरे दिन त्रिमूर्ति, चौथे दिन कालिका कुमारिकाओं का क्रमशः पूजन करे।

एवं पंचमी षष्ठी सप्तमी अष्टमी नवमी दशमी एकादशी द्वादशी त्रयोदशी चतुर्दशी पौर्णमासीषु क्रमेण यथासंख्यं सुभगा, भगमालिनी, कालसंकर्षा, अपराजिता, रुद्राणी, भैरवी, महालक्ष्मी, पीठनायिका, क्षेत्रनायिका, चर्चिका, कुलकुमारीः पूजयेत्।

इसीप्रकार पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी व पौर्णमासी तिथियों को क्रमशः पूर्ववर्णित क्रम से ही सुभगा, भगमालिनी, कालसंकर्षा, अपराजिता, रुद्राणी, भैरवी, महालक्ष्मी, पीठनायिका, क्षेत्रनायिका, चर्चिका नामक कुलकुमारियों का पूजन करना चाहिए।

यदि एकस्मिन्नेव दिवसे नाना च पक्षाः कुमारीः पूजयेत् तदापि वयोनुसारेण संज्ञां कृत्वा पुष्पोदयपर्यन्तं जपेदिति। स्थिरचित्तश्चरत्वयं भवेत्।

यदि एक ही दिन अनेक प्रकार की कुमारियों का पूजन करना हो तो भी वय के अनुसार पूर्वोक्त नामकरण करके पुष्पोदय (रजोदर्शन) पर्यन्त नायिकाओं का पूजन करे। स्थिरचित्त से अर्चा करे ऐसा होना चाहिए।

तदुक्तं मुण्डमालायां—जैसा कि मुण्डमालातंत्र में कहा गया है।

कुमारी पूजनासक्तो नारीं स्वप्नेऽपि न स्मरेत् ।
इत्यन्यत्राऽपि कौलिक प्रख्यातास्तानकारयेदिति ।।२३।।

कुमारी पूजन में आसक्त साधक को स्वप्न में भी नारी का स्मरण नहीं करना चाहिए। इस सम्बन्ध में अन्यत्र भी जो कुछ कौलिकों द्वारा कहा गया है, उनका आचरण करे।।२३।।

तथोक्ते निष्ठुरस्यापि स श्रवणात्—उस सम्बन्ध में वहाँ जो कठोर कहा गया है, उसे भी सुनें।

तदुक्तं भावचूडामणौ—जो भावचूडामणि में कहा गया है।

न विष्णुस्तु हरिः शंभुर्न देवो नापि षोडशी ।
न च मृत्युंजयो नाम न न्यासो न च भावना ।।२४।।
तस्य मृत्युंजयो देवः प्रणमति न देवताः ।।२५।।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे कुमारीपूजनविधिर्नामसप्तदशं तत्त्वम्।।१७।।

न विष्णु, न इन्द्र, न शम्भु देवता, न षोडशी देवी और न मृत्युञ्जय का नामजप और न न्यास, न भावना, ही करनी चाहिए। मृत्युञ्जय देवता उसको प्रणाम करते हैं। अन्य देवता भी उसकी समानता नहीं कर सकते हैं।।२४-२५।।

श्रीराघवभट्ट विरचित कालीतत्त्व में कुमारी पूजनविधि नामक सत्रहवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई।।१७।।



अष्टादशतत्त्वम्

*** मालाविधिः ***

तदुक्तं कालीतन्त्रे—जो कालीतन्त्र में कहा है।

दंताक्षमालया चैव राजदंतेन मेरुणा जपेदिति शेषः।।१।।

नरदंत के दानों से बनी माला से जिसका सुमेरु, राजा के दाँत का बना हो, कालीमन्त्र का जप करना चाहिए।।१।।

तत्रैवानंदेन कालिकायां तु पूर्वोक्त भूबिन्दुसालिभाजीयामलेऽपि

वहीं आनंद के द्वारा कालिका की उपासना में पहले कहे **भूबिंदु-सालिभाजीयामल** में भी कहा गया है—

नवेभाष्वन्मुण्डानां छिन्नानां रणसंकुले ।
मालां च कारयेद्विद्वान् महाविद्यां सुसाधकः ।।२।।

किरण के मध्य नये चमकते हुए कटे हुए मुण्डों की माला विद्वान् साधकों द्वारा महाविद्याओं की साधना में उपयोग की जानी चाहिए।।२।।

अन्यत्राऽपि—अन्यत्र भी कहा है।

गजवाजि नराणां तु मुण्डानामक्षमालया ।
लक्षमावर्तयेन्मन्त्रं महाविद्या सुसाधकः ।।३।।

उत्तमसाधक हाथी, घोड़े और मनुष्य के मुण्डों से बनी माला से एकलाख बार महाविद्या का मन्त्र जप करे।।३।।

विशुद्धेश्वरमहातन्त्रे—विशुद्धेश्वरमहातन्त्र में भी कहा ह।

मालाविधानं परमं श्रृणु पार्वति तत्त्वतः ।
येन विज्ञानमात्रेण मंत्राः सिद्ध्यन्ति तत्क्षणात् ।।

हे पार्वती! अब तुम संक्षेप में उस श्रेष्ठ मालाविधान को सुनो जिसके ज्ञानमात्र से मन्त्र, तत्काल सिद्ध हो जाते हैं।।४।।

अनुलोम विलोमेन मंत्रस्यापि विभेदतः ।
मन्त्रेणान्तरिता वर्णान् वर्णानांतरितान्मनूम् ।।५।।
कुर्याद्वर्णमयीं मालां सर्वमन्त्र प्रदीपिनीम् ।
क्षार्णं च मेरुकं कुर्याल्लंघनं नैव कारयेत् ।।६।।

अनुलोम-विलोम क्रम एवं मन्त्रों के भेद से मन्त्रों के मध्य में वर्ण तथा वर्णों के बीच में मन्त्रों को रखकर बनाई हुई वर्णमयी माला सभी मन्त्रों को प्रदीप्त करने वाली होती है। इसमें क्ष वर्ण को मेरु मानकर उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए। इसमें अ से ह तक फिर क्ष वर्ण तत्पश्चात् ह से अ तक के वर्णों का प्रयोग किया जाता है।।५-६।।

एतत्परं रहस्यं हि मया प्रोक्तं यशस्विनी ।
तया गुप्ततरं कार्यं नाख्येयं यस्य कस्यचित् ।।७।।

हे यशस्विनी! यह मेरे द्वारा परमरहस्यमयतथ्य तुमसे कहा गया है। तुम्हारे द्वारा इसे विशेष गुप्त करना चाहिए। इसे किसी से भी नहीं कहना चाहिए।।७।।

यामलेऽपि—यामल में भी कहा है।

सर्ववर्णं समुच्चार्य पश्चान्मन्त्रं जपेत्सुधीः ।
क्षंमेरुकं कल्पयित्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।।८।।

सभी वर्णों को क्रमशः पहले बोले तथा सुधीसाधक मन्त्रजप करे। क्ष को सुमेरु मानकर, साधक अनन्यबुद्धि से मन्त्र जप करे।।८।।

अथ करमाला यथा, तदुक्तं बृहच्छ्रीक्रमे—अब करमाला के सम्बन्ध में कहते हैं, जो **बृहच्छ्रीक्रम** में कहा गया है।

तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत स तु पापकृत् ।।९।।

तर्जनी अंगुली के अगले और मध्यभाग से जो साधक जप करता है, वह पाप का भागी होता है।।९।।

अनामायास्त्रयं पर्व कनिष्ठायास्त्रयं तथा।
मध्यामायास्त्रय पर्व तर्जनीमूलपर्वणि।।१०।। जपेदित्यर्थः

अनामिका कनिष्ठा और मध्यमा के तीन-तीन पर्वों पर तर्जनी के आरम्भ वाले पर्व पर जप कर एकबार में दस मन्त्रों का जप पूर्ण करे। यहाँ शक्ति-करमाला कही गई है।।१०।।

हंसपारमेऽपि—हंसपारम में भी कहा गया है।

पर्वद्वयमनामायाः परिवर्त्तेन वैक्रमात् ।
पर्वत्रयमनामायास्तर्जन्यैकं समाहरेत् ।।११।।
शक्तिमाला समाख्याता सर्वमंत्रप्रदीपिनी ।
अपरं तु ब्रह्मग्रंथि सुमेरु विनिर्द्दिशेत् ।।१२।।

अनामिका पर्वद्वयों से आरम्भ कर परिवर्तित क्रम से अनामिका के तीनों पर्वों से होते हुए तर्जनी के एक पर्व, आदिपर्व तक, संग्रह करने से बनने वाली माला, शक्तिमाला कही जाती है जो सभी मन्त्रों को प्रदीप्त (जाग्रत) करने वाली है। इसके अतिरिक्तभाग को ब्रह्मग्रन्थि, सुमेरु समझना चाहिए।।११-१२।।

अनुलोम विलोमाभ्यां मातृकांतरितं जपेत् ।
तेन सर्वगुणोपेता जायते सर्वसिद्धिदा ।।१३।।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे मालाविधौनामाष्टादशतत्त्वम्।।१८।।

जब अनुलोम और विलोमक्रम से मातृकाओं के मध्य में मन्त्र को रखकर जप किया जाता है तो वह सब गुणों से युक्त तथा सबप्रकार की सिद्धिदायिनी, उत्तम, वर्णमयीमाला होती है।।१३।।

श्रीराघवभट्टविरचित कालीतत्त्व में मालाविधि नामक अट्ठारहवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई।।१८।।



एकोनविंशतितमतत्त्वम्

*** अथ कवचस्तवानि ***

स्वयं बोधव्यानि अपि युग्मविधानतः—कवच-स्तवों को स्वयं जानना चाहिए या युग्मविधान (गुरु-शिष्यसंवाद) से जानना चाहिए।

शिव-शक्ति धिया सर्वेचक्रमध्ये समर्चयेत् ।।१।।

चक्रमध्य में (चक्रार्चन के समय) पुरुष और स्त्रियों का शिवशक्ति की बुद्धि (भावना) से पूजन करना चाहिए।।१।।

तन्त्रान्तरे च—अन्यतन्त्रों में कहा है।

ततः पुष्पं समादाय गुरोः पात्रे निवेदयेत् ।
गुरवे च निवेद्याथ दूत्यै दत्वा स्वयं हरेत् ।।२।।

तब (युग्मविधान से अर्चन के बाद) पुष्प को लेकर पात्र में रखकर सर्वप्रथम गुरु को अर्पित करे, फिर दूती (शक्ति) को तत्पश्चात् स्वयं ग्रहण करे (यहाँ पुष्प शब्द लाक्षणिक है, यह तीर्थ भी हो सकता है)।।२।।

भावचूडामणौ च—भावचूडामणि में भी कहा है।

साक्षाद्यदि गुरुर्नस्यात्तदातोये निवेदयेत् ।।३।।

यदि उससमय साक्षात् गुरु उपलब्ध न हो तो गुरु का अंश जल में निवेदित करे।।३।।

अथोत्तरतन्त्रे—उत्तरतन्त्र में कहा है।

अनुज्ञां पुरतोलब्ध्वा गृहणामीति स्वयं वदेत् ।
जुहुष्वेत्यभ्यनुज्ञां गुरुणा वा कुलीनकैः ।।४।।

पहले अनुज्ञा प्राप्त करे, तब 'गृहणामि' ऐसा स्वयं कहे। 'जुहुष्व' इन शब्दों से गुरु या कुलीनकौल साधक से अनुज्ञा प्राप्त करे।।४।।

गृहणीयात्स्वयंसिद्धो बद्धपद्मासनः सुधी ।।५।।

ग्रहण कर सुधी साधक बद्धपद्मासन से स्वयंसिद्ध हो उपस्थित हो।।५।।

कुलार्णवे च—कुलार्णव में भी कहा है।

एकासने निविष्टा ये भुंजीत चैकभाजने ।
एकपात्रे पिबेत् द्रव्यं ते यान्ति नरकोऽधमाः ।।६।।

जो गुरु के साथ एक आसन पर बैठते हैं। एक पात्र में भोजन

करते हैं। एक पात्र में द्रव्य (तीर्थ) का पान करते हैं। वे अधम हैं और नरक में जाते हैं॥६॥

विना मंत्रेण या पूजा विना मंत्रेण या बलिः ।
विनाशक्त्या तु यत्पानं तत्सर्वं विफलं भवेत् ।।७।।

मन्त्र के बिना की जाने वाली पूजा एवं मन्त्रविहीनबलि तथा शक्ति के अभाव में जो पानकर्म किये जाते हैं। वे सब विफल हो जाते हैं॥७॥

स्वशक्तिं वीरशक्तिं वा दीक्षितां गुरुरग्रणीम् ।
पाययित्वा पिबेद्द्रव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः ।।८।।

अपनी शक्ति, वीर साधक की शक्ति या अपने से पहले गुरु द्वारा दीक्षित, शक्ति (स्त्रीपात्र) को पान कराकर ही साधक स्वयं द्रव्यपान करे। ऐसा आगमशास्त्रों का निश्चय (निर्णय) है॥८॥

न पद्भ्यां च स्पृशेत्पात्रं न बिन्दुं पातयेदधः ।
नैक हस्तेन दातव्यं न मुद्रावर्जितं पुनः ।।९।।

न तो पैर से पात्रों का स्पर्श करे और न तो बिन्दु का नीचे पतन ही होने दे। वह न एक हाथ से किसी को दे और न तो मुद्रारहित निवेदन ही करे॥९॥

नार्चयेदेकहस्तेन न पिबेदेकपाणिना ।
अन्योन्य वदनं कृत्वा पीत्वेदममृतं सुधीः ।।१०।।

सुधी (बुद्धिमानसाधक) एकहाथ से न तो पूजन करे और न एकहाथ से पान (तर्पण) ही करे। परस्पर एक दूसरे की ओर मुख करते हुए उसे अमृतपान करना चाहिए॥१०॥

सव्यं न चोद्धरेत् पात्रं मुद्राकृत्वापसव्यतः ।
विना संकेत योगेन न कुर्याद्द्रव्य संगतिम् ।।११।।

तीर्थग्रहण के समय अपसव्य (वामहस्त) से मुद्रा का प्रदर्शन कर सव्य (दक्षिण) हाथ से त्रिखण्डा पर पात्र स्थापित नहीं करना चाहिए। बिना संकेतयोग के पंचमद्रव्य की संगति भी न करे॥११॥

साधारं नोद्धरेत् पात्रं साधारेषु विनिक्षिपेत् ।
पात्रं न चालयेत्स्थानान्न कुर्यात्पात्रसंकरम् ।।१२।।

आधार के सहित पात्र को न उठावे अपितु आधारयुक्त पात्र में ही द्रव्य का निक्षेप करे। पात्र को स्थान से न तो हिलाना-डुलाना चाहिए और न पात्रों को परस्पर टकराना ही चाहिए॥१२॥

सशब्दं न पिबेद्द्रव्यं तथैवं न पूरयेत्।
उच्छिष्टं न स्पृशेदच्चक्रे कुलद्रव्यादि सुन्दरी ।।१३।।

हे सुन्दरि! शब्द करते हुए न तो द्रव्य पीये और न उसे पात्र में भरे। चक्रार्चन में पूजा सम्बन्धी कुलद्रव्य, उच्छिष्ट-अवस्था में स्पर्श भी न करे।।१३।।

बहिः प्रक्षाल्य च करौ कुलद्रव्याणि दापयेत् ।
निष्ठीवनं मधोवायुं वा चक्रमध्ये विवर्जयेत् ।।१४।।

साधक बाहर हाथों को धोकर ही कुलद्रव्य अर्पित करे। चक्रार्चन के मध्य थूकना या अधोवायु का त्याग न करे।।१४।।

नान्योयं ताडयेत्पात्रं न बिंदुं पातयेदधः ।
गुरुशक्तिं सुतानां च गुरुज्येष्ठकनिष्ठयोः ।
उच्छिष्टं भक्षेत्स्त्रीणां ताभ्यो नोच्छिष्टमर्पयेत् ।।१५।।

पात्रों को परस्पर न पीटे, न तो धरती पर बिन्दुपात ही करे। गुर की शक्ति और गुरु की छोटी एवं बड़ी कन्याओं का उच्छिष्ट, स्वयं भक्षण करे किन्तु उन्हें या स्त्रीमात्र को उच्छिष्टपदार्थ न दे।।१५।।

चक्रमध्येत्वनिखनं अन्यथा पतनं भवेत् ।
कनिष्ठानां स्वशिष्यानां दद्यादुच्छिष्ट चर्वणम् ।।१६।।

चक्रार्चन के समय हाथ या पैर के नाखून से जमीन खोदने का कार्य न करे। ऐसा करने पर साधक का पतन होता है। चक्रार्चन में साधक का अपने से छोटों को, अपने शिष्यों को अपना उच्छिष्ट चर्वण (खाद्यपदार्थ, मुद्रा) दे।।१६।।

शक्तिवीरप्रसादेन किं न सिद्ध्यते साधकैः ।।१७।।

साधकों द्वारा शक्ति एवं वीर की प्रसन्नता से क्या नहीं सिद्ध हो जाता अर्थात् सब कुछ उपलब्ध हो जाता है।।१७।।

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले ।
उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।१८।।

जो साधक बार-बार पान करता है। इतना पान करता है कि पीते-पीते जमीन पर गिर जाता है। तत्पश्चात् उठकर पुनः पीने वाला साधक पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता। (यहाँ यौगिक दृष्टि से कुण्डली के मूलाधार और सहस्रार के मध्य सं चरण का भी संकेत मिलता है)।।१८।।

ततः शांतिस्तवं पठेत्—तब शान्तिस्तव का पाठ करे।

तदुक्तं कुलडामरे—जैसा कुलडामर में कहा है।

पीत्वा पीत्वा जनैः सार्धं शान्तिस्तोत्रं ततः पठेत् ।।१९।।

चक्रार्चन के समय लोगों को (साधक के साथ पुनः-पुनः तर्पण) (पान) करने के पश्चात् साधक शान्तिस्तोत्र का पाठ करे॥१९॥

अथ शान्तिस्तोत्रम्

नश्यंतु प्रेतकूष्मांडा नश्यंतु दूषकानराः ।
साधकानां शिवाः संतु आम्नायपरिपालिनाम् ।।२०।।

शान्तिस्तोत्रप्रारम्भ

प्रेत और कूष्मांड नष्ट हों तथा दूषित करने वाले दुष्टजन भी नष्ट हो जायँ। आम्नायों से सम्बन्धित नियमों का पालन करने वाले साधकों का कल्याण हो॥२०॥

जयन्तु मातरः सर्वाः जयन्तु योगिनीगणाः ।
जयन्तु सिद्धयोगिन्यो जयन्तु गुरुपंक्तयः ।।२१।।

सभी मातृकाओं की जय हो, योगिनियों के समुदाय की जय हो, सिद्धियोगिनियों की जय हो तथा गुरुपंक्तियों की जय हो॥२१॥

जयन्तु सिद्धिडाकिन्यो जयन्तु गुरवः सदा ।
जयन्तु साधकाः सर्वे विशुद्धा कौलिकाश्चये ।।२२।।

सिद्ध डाकिनियों की जय हो, गुरुओं की सदैव जय हो। जो विशुद्ध (एकनिष्ठ) कौलिक साधक हैं उन सभी साधकों की जय हो॥२२॥

समयाचारसम्पन्नाः जयंतु पूजकानराः ।
अणिमाद्याश्च सिद्धिश्च नंदंतु भैरवादयः ।।२३।।

समयाचार से पूजन करने वाले साधकों की जय हो। अणिमा आदि आठसिद्धियाँ तथा भैरव आदि देवगण प्रसन्न हों॥२३॥

नंदंतु देवताः सर्वाः सिद्धविद्याधरादयः ।
सदाम्नाय विशुद्धा ये मन्त्रिणः शुद्धबुद्धयः ।।२४।।

सभी सिद्धविद्याधर आदि और देवगण प्रसन्न हों तथा आम्नाय की रीतियों के अनुपालन से शुद्धबुद्धि वाले जो मन्त्रवेत्ता साधक हैं, वे विशुद्धमांत्रिक भी सदा प्रसन्न रहें॥२४॥

सर्वदानंदहृदया नंदंतु कुलपालकाः ।
इन्द्राद्यास्तृप्तिमायांतु तृप्यन्तु वास्तुदेवताः ।।२५।।

साधकों के हृदय सदैव प्रसन्न रहें। कुलपालक (कुलधर्म का पालन करने वाले) साधक प्रसन्न हों। इन्द्र आदि देवता तृप्ति को प्राप्त करें तथा वास्तुदेवता भी तृप्त हों॥२५॥

चन्द्रसूर्यादयो देवास्तृप्यन्तु मम भक्तितः ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यादि महाबलाः ।।२६।।

चन्द्रमा, सूर्य आदि देवता व अन्तरिक्ष में विचरण करने वाली महान्बलशाली और भयानक डाकिनी आदि मेरी भक्ति से तृप्त हों॥२६॥

नंदंतु पितरः सर्वे मासाः संवत्सरादयः ।
खेचराभूचराश्चैव तृप्यंतु मम भक्तितः ।।२७।।

सभी पितृगण, मास और संवत्सर आदि कालमान, प्रसन्न हों तथा सबप्रकार के आकाश एवं पृथ्वी पर भ्रमण करने वाले तत्त्व, मेरी भक्ति से प्रसन्न हों॥२७॥

अन्तरिक्षचरा ये च ये चान्ये देवयोनयः ।
सर्वे च सुखिनो भूतास्सर्पानद्यश्च पक्षिणः ।।२८।।

जो अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले और अन्य देवयोनियाँ हैं वे सभी और सभी सर्पप्राणी, नदियाँ तथा पक्षीगण सुखी हों॥२८॥

पशवः स्थावराश्चैव पर्वताः कंदरागुहाः ।
ऋषयो ब्राह्मणा सर्वेशांति कुर्वन्तु मे सदा ।।२९।।

सभी पशु, स्थावर, पर्वत, कन्दरा, गुफाएँ, ऋषि एवं ब्राह्मण मेरे लिए सदैव शांति सुलभ करायें॥२९॥

तीर्थानि बहवोरोधा ये चान्ये पुण्यभूमयः ।
वृद्धाः पतिव्रतायास्ताः शांतिकुर्वंतु मे सदा ।।३०।।

बहुत से तीर्थ, पुण्यभूमि (पवित्र क्षेत्र) आदि जो रोध हैं, वे तथा वृद्ध एवं पतिव्रताएँ मेरे लिए सदा शांति करें॥३०॥

शिवं सर्वत्रमेवास्तु पुत्रदारधनादिषु ।
राजानो सुखिनो यान्तु क्षेमं कुर्वन्तु मे सदा ।।३१।।

सभी स्थान पुत्र, दारा, धन आदि की दृष्टि से कल्याणकारी हों। राजागण सुखी हों तथा मेरे लिए सदैव क्षेम करें॥३१॥

शुभा मे दिवसायांतु मित्रा नंदंतु सर्वदा ।
साधका जयिनः संतु शिवं तिष्ठन्तु सर्वदा ।
शुभा मे विदिताः सन्तु सर्वदा भुवि पूजकाः ।।३२।।

मेरे दिन शुभ व्यतीत हों, सर्वदा मेरे मित्र आनंदित रहें। साधक जयी हों, सिद्धिप्राप्ति करें। सर्वदा मेरे कल्याण के लिए उपस्थित रहें। पूजन करने वालो सभी शुभ पृथ्वी पर मुझे ज्ञात हों॥३२॥

ये ये पापधियः स्वदूषणरतामन्निंदकाः पूजने ।
वेदाचार विसर्गनष्ट हृदया भ्रष्टा च ये साधकाः ।
दृष्ट्वा चक्रमपूर्व दुष्ट हृदया नष्टाश्च ये कौलिका ।
ते ते यान्तु विनाशमत्र समये श्री भैरवस्याज्ञया ।।३३।।

जो जो पापबुद्धि साधक अपने दोषों में आसक्त हो, मेरी निन्दा करने वाले हैं। जिनका हृदय वेदाचार की वीथियों में भटकते-भटकते नष्ट हो गया है, ऐसे भ्रष्ट-भ्रमित साधक, अद्भुत चक्रार्चन को देखकर जिनका हृदय दूषित हो जाता है, इसप्रकार के कौलिक साधक, वे सभी इसीसमय भैरव की आज्ञा से विनाश को प्राप्त हों।।३३।।

साधकानां च द्वेष्टारः सदैवाम्नायदूषकाः ।
डाकिनीनां मुखे यान्तु तृप्तां भूत्पिशितैस्तु ताः ।।३४।।

जो साधकों से द्वेष करने वाले तथा सदैव आम्नाय में दोष निकालने वाले हैं ऐसे व्यक्ति डाकिनियों के मुँह में जायँ तथा उनसे भूत-पिशाच तृप्त हों।।३४।।

शत्रवोनाशमायान्तु ममनिंदाकराश्च ये ।
द्वेष्टारः साधकानांच विनश्यन्तु शिवाज्ञया ।।३५।।

शत्रुगणनाश को प्राप्त हों। जो मेरी निन्दा करने वाले हैं वे तथा साधकों से द्वेष करने वाले, भगवान् शिव की आज्ञा से विनाश को प्राप्त हों।।३५।।

इति शांतिस्तोत्रं सदा पठेत्–इसप्रकार के शान्तिस्तोत्र का सदैव पाठ करना चाहिये।

देवताग्रे च संभोगे देवता प्रीणनं भवेत् ।
संभोगं तु परं कृत्वा देवीं हृदि समानयेत् ।।३६।।

देवता के आगे संभोग करने से देवता प्रसन्न होते हैं। परंसंभोग करके देवी का हृदय में समानयन करे।।३६।।

कृतकृत्यो भवेन्मन्त्री नात्र कार्या विचारणा ।
अभिवंदनमाचार्यमद्यामृतं पिवेत्ततः ।।३७।।

ऐसा करने से मन्त्रसाधक कृतकृत्य हो जाता है। इसमें कोई विचार (सन्देह) नहीं करना चाहिए। तत्पश्चात् आचार्य का अभिवंदन कर, मद्यामृत का पान करे।।३७।।

न्युब्जीकृत्य स्वयं पात्रं तत्र पुष्पं विनिःक्षिपेत् ।
प्रक्षाल्यगोपयेत्पात्रं तत्र चिंतापरो भवेत् ।।३८।।

साधक पहले अपने पात्र को उल्टा कर उसपर पुष्प छोड़े तब उसे स्वच्छ कर, गुप्त रख दे तत्पश्चात् वहीं चिन्तापरायण हो ध्यान करे।।३८।।

ततस्तदमृतस्निग्धं भूमौ कनिष्ठांगुलिना माया बीजं विलिख्य।

तब उस अमृत, से सिंचितभूमि पर अपनी कनिष्ठिकांगुलि से मायाबीज लिखे।

यं यं स्पृशति पादेन यं यं पश्यति चक्षुषा ।
स एव दासतां याति यदि शक्रसमो भवेत् ।
इति मंत्रेण तिलकं कृत्वा स्वयं यथा सुखं विहरेदिति ।।३९।।

इस **'यं यं............भवेत्'** मन्त्र से तिलक करके साधक स्वयं अपने सुख के अनुसार धरती पर विचरण करे।

मन्त्रार्थ—वह इन्द्र के समान हो तो भी ऐसा साधक, जिस-जिस को पैर से स्पर्श करता है या जिस-जिस को आँखों से देखता है, वह उसकी दासता को प्राप्त होता है।।३९।।

पात्रनिर्माणं यथा तदुक्तं कुलसारे—पात्रनिर्माण कैसा हो, जैसा **कुलसार** में कहा है।

नयनाग्निबाणसंख्यैः कर्षैस्तु परमेश्वरि ।
हेतुपानं प्रकर्तव्यमित्युक्तं कुलशासने ।।४०।।

हे! परमेश्वरि नयन (२) अग्नि (३) बाण (५) ५३२ कर्ष का पानक बनाये, ऐसा कुलशासन में कहा गया है।।४०।।

इत्यप्यधिकं पानं च न कर्त्तव्यं तु साधकैः ।

साधकों को इससे अधिक पान नहीं करना चाहिए।

कर्षलौकिक तोलकमित्यर्थः ।

कर्ष एक लौकिक तोलक (बाँट) हैं ऐसा अर्थ समझे।

तदुक्तं कुलोड्डीशे—जो **कुलोड्डीशतन्त्र** में कहा है।

गुंजा द्वादशमाषःस्यात्तदष्टौ कर्ष उच्यते।।४१।।

१२ मासे की एक गुंजा (रत्ती), उसके आठ गुने अर्थात् आठ गुंजा का एक कर्ष कहा जाता है।।४१।।

अथ पद्धतिः—अब पद्धति कहते हैं।

विधिवदर्घ्य पात्रादि संस्थाप्य, हेतुना संपूज्य विधिवत् संशोध्य-ऐं क्लीं सौः

ब्रह्मांडरससम्भूत अशेषरस संभवे ।
आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमावहेत् ।।४२।।
अखंडैकरसानंद करे परसुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणमत्रनिधेह्य कुलरूपिणी ।।४३।।
अकुलस्थामृताकारे सिद्धिज्ञानकरे परे ।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनिक्लिन्नरूपिणी ।।४४।।
तद्रूपेणैकरस्यं च कृत्वा चैतत्स्वरूपिणी ।
भूत्वापरामृताकारं अयि विस्फुरणं कुरु ।।४५।।

इति मंत्रेण पठित्वा तत्र पुष्पाणि निक्षिव्य विधिवद्देवतां पूजयित्वा।

सर्वप्रथम अर्घ्य-पात्रादि पात्रों को स्थापित कर विधिपूर्वक उसे हेतु (कारणद्रव्य) से भलीभाँति उनका पूजन एवं संशोधन कर **ऐं क्लीं सौः ब्रह्माण्ड रससम्भूत........विस्फुरणं कुरु।** इस मन्त्र को पढ़कर वहाँ पुष्पों को चढ़ाते हुए विधिपूर्वक इष्टदेवता का पूजन करे।

मन्त्रार्थ—ऐं क्लीं सौः ब्रह्माण्ड रस से उत्पन्न समस्त रसस्वरूप जो महापात्र में पूरित पीयूषरस अमृत है, मैं उसका आवाहन करता हूँ। हे कुलरूपिणी! अखंड, एकरस, परमानन्दकारक, सुधास्वरूपिणी! आप यहाँ (मुझमें), स्वच्छन्द स्फुरण की योजना कीजिये। हे अकुल में स्थित अमृतस्वरूपिणी! आप परम-ज्ञान और सिद्धि प्रदान करने वाली हैं। हे क्लिन्नरूपिणी! आप यहाँ उपस्थित कारणद्रव्य में अमृतत्त्व की स्थापना करें। उस रूप से इसे एकरस करके स्वयं, उसी रूप में होकर परा, दिव्यअमृतरूप का मेरे में विस्फुरण करें।।४२-४५।।

तत्पात्रे आनन्दभैरवाय निवेद्य च चक्राकारेण पंक्त्या पंक्त्याकारेण वा भिन्नासनेषु शक्तियोगपक्षे युग्मक्रमेण पद्मासनेन साधकानुपवेश्यते।

उस पात्र का आनन्दभैरव को निवेदन कर चक्राकारपंक्तिरूप में या पंक्ति के रूप में क्रमशः अलग-अलग आसनों पर साधकों को पद्मासन में बिठायें। यदि उससमय शक्ति (स्त्रीपात्रों) की उपस्थिति हो तो शक्तिसहित साधकों को युगलक्रम में बिठायें।

तेषां ललाटे चंदनं दत्त्वा शिवशक्तिबुद्ध्या पुष्पादिकं निवेद्य स्वगुरुं च चंदनादिभिस्संपूज्य तत्पात्रे—

अखण्डैकरसाकार परे परतरात्मनि ।
स्वच्छंद स्फुरणमन्त्री निधेह्यकुलरूपिणी ।।४६।।

ह्रीं श्रीं परमस्वामिनी परमाकाशशून्यवाहिनी ।
चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणी पात्रं विशविश स्वाहेति ।।४७।।
मंत्रेण पुष्पं दत्वा शुद्धिसहितं तस्मै समर्प्य प्रणमेत् ।

तदनन्तर उनके ललाटों पर चन्दन का लेप कर शिव-शक्ति की बुद्धि (भावना) से उन्हें पुष्पादि पूजोपचार निवेदित करे।

तब अपने गुरु का चन्दनादि से पूजन करने के पश्चात् गुरुपात्र में आवाहन कर **अखण्डैकरसाकार........विश विश स्वाहा** इस मन्त्र से पुष्प (शुद्धि सहित तीर्थ) उन्हें देकर प्रणाम करें।

मन्त्रार्थ—हे एक एवं अखण्डरसाकारस्वरूपणि! हे श्रेष्ठे! आप परमात्मरूपिणी हो। हे अकुलरूपिणी! आप इसे स्वच्छन्दस्फुरण का निधान कीजिये। ह्रीं श्रीं आप परमस्वामिनी, परमाकाश, सहस्रार में विचरण करनेवाली, चन्द्र-सूर्य, अग्नि तीनों ही का भक्षण करने वाली अपने में इडा, पिंगला, सुषुम्ना तीनों ही नाड़ियों के सम्मिलन के पश्चात् भी स्थित कुण्डलिनी शक्ति हो। आप इस पात्र में प्रवेश करें। यह आपको अर्पित है।।४६-४७।।

गुरोरभावे तत्पात्रं जले निक्षिपेत्—यदि गुरु न हों तो उस गुरुपात्र के द्रव्य का जल में निक्षेपण कर दे।

ततः शक्तिपात्रं साधकपात्राणि च ज्येष्ठान् क्रमेण वीरपात्रामृतेन सम्पूज्य पूर्ववदेकैकं पुष्पं दत्वा तेषामग्रे आधारेषु संस्थाप्य भक्त्या हस्ताभ्यां तैरपि गृहीत्वा तदुपरि मूलमंत्रं अष्टधा प्रजप्य।

तब शक्तिपात्र एवं साधकपात्रों को उनकी ज्येष्ठता के क्रम से वीरपात्र के अमृतद्रव से, पहले ही की तरह भली-भाँति एक-एक पुष्प प्रदान कर उनके आगे स्थापित आधारों पर पात्रों की स्थापना करे। वे साधकादि भी अपने-अपने पात्रों को भक्तिपूर्वक अपने हाथ में लेकर उसके ऊपर मूलमन्त्र का आठबार जप करें।

आनन्दभैरव आनन्दभैरव्यो गुरुं देवतां च संतर्प्य स्व-स्व कल्पोक्त-विधिना तत्त्वशुद्धिं विधाय—आनन्दभैरव, आनन्दभैरवी, गुरु एवं देवता का भलीभाँति तर्पण-पूजन करके।

श्रीमद्भैरवेत्यादिना अभिवंद्य वामहस्तेन पात्रमुत्तोल्य परस्परं वंदनं कृत्वात्रगृह्णामीतिशक्तिसाधकेभ्योह्याज्ञां गृहीत्वा तैश्च जुहश्चेत्यभ्यनुज्ञातो मूलाधारात् कुण्डलिनीमिष्टदेवता स्वरूपा माहान्तं विभाव्य गुरुपादुकां

स्मृत्वा शिवोहमिति विचिन्त्य हस्ताभ्यां पात्रं धृत्वा मूलमंत्रमुच्चरन्कुंडलिनीमुखे देवी संतर्पयेदिति।

अपनी-अपनी पूजा पद्धति में निर्दिष्ट विधि से, तत्त्वशुद्धि करके **श्रीमद्भैरव......**इत्यादि से अभिवंदन कर, बायें हाथ से पात्र को उठाकर, परस्पर एक दूसरे की वन्दना करते हुए **गृह्णामि** इससे शक्तिसाधकों से आज्ञा लेकर उनके द्वारा **जुहस्व** इसप्रकार की आज्ञा लेकर मूलाधार से कुण्डिलिनी रूपी इष्टदेवता की अपने अन्तःकरण में भावना करते हुए गुरुपादुका का स्मरण कर, मैं शिवस्वरूप हूँ। ऐसी भावना करते हुए हाथों में पान-पात्र लेकर, मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए कुण्डलिनी के मुख में देवी का तर्पण करे।

ततोकांक्षाचेत्तत्पात्रमाधारोपरि संस्थाप्य पूर्ववत् संस्थाप्य हैमं मीन रसावहमित्यादिनाभिमन्त्र्य पूर्ववत्स्वीकृत्य पुनरप्याकांक्षायां सत्यां मध्यंमीनरसावहमित्यादिनाभिमन्त्र्य यावत्तृप्तिर्नस्यात् स्वयमपि तथा विधाय शांति स्तोत्रं तैः सह पठित्वा तत्रैव देवताग्रे शक्तियोगप्रक्षेप परानंदं विधाय द्रव्यस्निग्धभूमौ मायाबीजं विलिख्य यं यमित्यादिकं निवेद्य प्राणायाम षडंगन्यासौ विधाय यथासुखं विहरेदिति।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे कवचस्तवननामकः एकोनविंशतितमतत्त्वम्॥१९॥

तब भी यदि आकांक्षा हो तो उसी पात्र को आधार पर स्थापित करके पहले स्थापित पात्र की ही भाँति **हैमं मीन रसावह.....**इत्यादि से अभिमंत्रित कर पहले पात्र की ही भाँति उसे स्वीकार करे। यदि पुनः आकांक्षा शेष हो तो **मध्यं मीन रसावह.....** इत्यादि से अभिमंत्रित कर जब तक तृप्ति न हो पान करे। साधक स्वयं भी वैसा ही करे। अन्त में उन सबके साथ ही शान्तिस्तोत्र पढ़कर, वहाँ ही देवता के आगे यदि शक्ति का योग हो तो परानन्द का विधान करे। तदुपरान्त द्रव्य से सिंचितभूमि पर ही मायाबीज लिख कर **यं यं** इत्यादि से निवेदित कर प्राणायाम और षडंगन्यास करके। यथासुख (यथेच्छ) विचरण करे।

श्रीराघवभट्टविरचित कालीतत्त्व में कवचस्तवन नामक
उन्नीसवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई॥१९॥



विंशतितमतत्त्वम्

*** मन्त्रविधिः ***

अथ मन्त्रविधिरुच्यते—मन्त्रविधि कही जाती है।

तदुक्तं कालिकाश्रृतौ—जो कालिकासृति में कही गयी है।

अथाह सर्वां विद्यां प्रथमैकैकांद्वयं त्रयं वा नामपुटितं कृत्वा जपेत्।

पहले सभी विद्याओं को एक-एक, दो-दो या तीन-तीन बीजों व नाममन्त्र से युक्त कर जप करे।

गतिस्तस्यास्ति नान्यस्य इहगति द्योमसत्यं तत्सत्—ऐसे करने वाले की ही सिद्धि होती है, अन्य की नहीं। इस लोक में भी यही गति है, वही सत् स्वरूप है।

अथ गुरुं परितोष्य गृहणीयान्मन्त्रराजं गुरुस्तमपि शिष्याय सत्कुलीनाय विद्याभक्ताय शुश्रूषवे स्त्रियं स्पृष्टवा स्वयं परिपूज्य निशायां निह्नवे एकाकी शिवगेहे गत्वा लक्षं तदर्धं वा जाप्त्वा देयं ॐ सत्यं।

इस हेतु पहले गुरु को साधक संतुष्ट कर उनसे मन्त्रराज ग्रहण करे। गुरु भी इसे सद्कुल में उत्पन्न अथवा कुलमार्गग्रहणेच्छु, विद्या (शक्ति या शक्तिमंत्र) भक्त, सेवापरायण, स्त्री का स्पर्श एवं पूजनकर, रात्रि में नीरव (शान्त), अकेले शिवमन्दिर में जाकर एक लाख अथवा उसका आधा (पचास हजार) मन्त्र जपकर, उसे उपर्युक्त लक्षण सम्पन्न शिष्य को प्रदान करे। यही सत्य है।

ततो नान्य प्रकारे सिद्धिर्भवतीहैवेति—इससे भिन्न किसी अन्य उपाय से इस लोक में सिद्धि नहीं हो सकती।

कालीतन्त्रे च—कालीतन्त्र में भी कहा है।

कालीहृदयविद्यां च सिद्धविद्यां महोदयाम् ।
पुरा येन यथा सिद्धिमाप्नुयुश्च दिवौकसः ।।१।।
कामाक्षरं वह्निसंस्थमिन्दिरानादबिन्दुभिः ।
मन्त्रराजमिदंख्यातं दुर्लभं पापचेतसाम् ।।२।।

कालीहृदयविद्या, जो सिद्धविद्या है और महान उन्नति देने वाली है। जिसकी उपासना से प्राचीनकाल में देवताओं ने इष्टसिद्धि प्राप्त की है, वह-

कामाक्षर (क), वह्नि (र), इन्दिरा (ई), नादविन्दु (चन्द्रबिन्दु) संयुक्त हो मन्त्रराज (क्रीं) कही गयी है जो पापीचित्तवाले साधकों को अत्यन्त दुर्लभ है॥१-२॥

सुकृतानां शुभं भक्त्या साधकानां महात्मनाम् ।
त्रिगुणापि विशेषेण सर्वशास्त्रप्रबोधिका ।
अनया सदृशी विद्या न हि सारस्वतप्रदा ।।३।।

यह भक्तिपूर्वक साधना, करने वाले महान् आत्मसाधकों, सुकृति पुण्यात्माओं के लिए शुभ है। यही तीन गुना हो **क्रीं क्रीं क्रीं** इस रूप में साधकों के लिए, सभी शास्त्रों का बोध कराने वाली हो जाती है इसके समान विद्याप्रदान करने वाली अन्य कोई विद्या नहीं है॥३॥

ध्यानं पूजादिकं सर्वं साधनं च पुरस्कृया ।
अनिरुद्धसरस्वत्या समानं न समीरितम् ।।४।।

ध्यान-पूजा आदि सभी प्रकार की साधनाएँ या पुरश्चरण आदि की क्रियाएँ भी अनिरुद्धसरस्वती के समान नहीं कही गयी हैं॥४॥

कुलचूडामणौ च–कुलचूडामणि में भी कहा है।

ब्रह्मा सरस्वती युक्तौ देवतामुखसंस्थितः ।
बीजशक्तिसमायुक्तः कालीमंत्रमुदाहृतः ।।५।।

ब्रह्मा (क) सरस्वती (र) से युक्त तथा देवतामुख (ई) एवं बीज तथा शक्ति से युक्त हो कालीबीज (क्रीं) कहा गया है॥५॥

एकं वा द्विगुणं वापि त्रिगुणं वापि भैरव ।
जप्त्वा चाकर्षयेत्सर्वं स्थावरं जंगमादिकम् ।।६।।

हे भैरव! उपर्युक्त **क्रीं** मन्त्र का एक-दो या तीन का, एक साथ जप करके साधक, सभी स्थावर एवं जंगम पदार्थों का आकर्षण कर लेता है॥६॥

एषा विद्या महाविद्या गुह्यात्गुह्यतरा परा ।।७।।

यह विद्या महाविद्या है और गुह्य से भी गुह्य अर्थात् अत्यन्त गोपनीय, श्रेष्ठविद्या है॥७॥

* कालिका ध्यान *

करालास्यां महादंष्ट्रां रक्तनीलविलोचनाम् ।
स्फुरच्छवकरश्रेणी कृतकांचीं दिगम्बराम् ।।८।।
वीरासनसमासीनां महाकालोपरिस्थिताम् ।
श्रुतिमूलसमाकीर्णसृक्किणीं चंडनादिनीम् ।।९।।

मुण्डमालागलद्रक्तचर्चितां पीनरस्तनीम् ।
मदिरामोदितास्फाल कंपिताखिलमेदिनीम् ।।१०।।
वामे खड्गं च मुण्डं च धारिणीं दक्षिणे करे ।
वराभययुतां घोरां दक्षिणां लोलजिह्वकाम् ।।११।।
शकुंतकपक्षसंयुक्त वामकर्णविभूषिताम् ।
शिवाभिर्घोररावाभिः सेवितां प्रलयोदिताम् ।।१२।।
चण्डहासचंडनादचंडास्फालैश्च भैरवैः ।
गृहीत्वा नरकंकाल जयशब्दपरायणैः सह ।।१३।।
सेविताखिलसिद्धौध मुनिभिः सेवीतां पराम् ।
एवं कालिकां ध्यात्वा पूजयेत् कुलनायकः ।।१४।।

भगवती कालिका भयानकमुखवाली तथा बड़े-बड़े दांतों से युक्त हैं। उनके नेत्र लाल और नीले रंगों वाले हैं। वे दिगम्बरावस्था में हैं किन्तु उन्होंने तत्काल शव से अलग हुए हाथों की करधनी, धारण की हुई है। वे महाकाल (शिव) पर वीरासन की मुद्रा में विराजमान हैं। उनके गह्वर, कानों के समीप तक फैले हुए हैं। वे भयानक स्वर कर रही हैं। वे रक्त चूते हुए मुण्डों की माला से सुशोभित हैं, उनके स्तन मोटे हैं। मदिरा से मत्त अपनी धड़कन से वे सम्पूर्ण पृथ्वी को कंपित कर रही हैं। वे अपने बायेंहाथों में खड्ग एवं मुंड तथा दाहिनेहाथों में वर और अभय मुद्राएँ धारण की हुई हैं। वे दक्षिणा, उनकी जिह्वा रक्तमयी लपलपा रही है। शकुन्तक (नीलकण्ठ) पक्षी के पंख से उनका बायां कान सुशोभित है। वे प्रलय को तत्पर भयानकस्वर वाली शिवाओं (सियारिनों) से घिरी हुई हैं। वे भयानकहँसी, भयानकध्वनि, भयानकधड़कन, तथा नरकंकाल लेकर जय शब्द करते भैरवों सहित स्थित हो, समस्त सिद्ध-समुदाय और मुनियों से सेवित हैं। वे ही पराशक्ति हैं। इसप्रकार से कालिका का ध्यान करता हुआ कुलनायक साधक, देवी का पूजन करे।।८-१४।।

यां विना परपुरावास विद्ध एतः प्रसर्पणम् ।
व्यक्ति वेत्कुलसिद्धिस्तु जायते न मनागपि ।।१५।।
सर्वसिद्धिप्रदा देवी हेलयापिह चिंतिता ।
ततः सा एषा सादक्षिणानाम्नी त्रिषुलोकेषु गीयते ।।१६।।

जिसके बिना परलोकवास से विद्धगमन को व्यक्ति न हीं जानता है तथा वह रंचमात्र भी, कुलसम्बन्धी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसी देवी सबप्रकार की सिद्धि, प्रदान करने वाली हैं। वह क्रीड़ामात्र से ही अपनों

के प्रति चिंतित हो जाती हैं। इसीलिये वे दक्षिणा नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं।।१५-१६।।

विद्यातत्त्वं प्रवक्ष्यामि मुक्तकर्णावतंसिनी ।
मायाद्वयं कूर्चयुग्ममैन्द्रान्तमादनत्रयम् ।।१७।।
मायां बिन्द्वीश्वरयुतम् दक्षिणे कालिकेपदम् ।
संहारक्रमयोगेन बीजसप्तकमुद्धरेत् ।
एकविंशाक्षरो मंत्रस्ताराद्यो विश्वपूजितः ।।१८।।

अब मैं मुक्तकर्णावतंसिनी के विद्यातत्त्व को कहूँगा– दो मायाबीज **(ह्रीं ह्रीं)** दो ऐन्द्रान्त कूर्चबीज **(हूँ हूँ)**, माया **(ई)**, ईश्वर **(चन्द्रबिन्दु)** अनुस्वार सहित ऐन्द्र **(र)** से युक्त तीन मादन बीज ककार के योग से बने **(क्रीँ क्रीँ क्रीँ)** तब **दक्षिणे कालिके** शब्द के पश्चात् पूर्वोक्त सात बीज संहार (विपरीत) क्रम में कहे, इन सबके प्रारम्भ में तार **(ॐ)** लगाने से विश्वपूजित एकविंशाक्षरी (एक्कीस बीजाक्षरों वाला) मन्त्र **ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं** बनता है।।१७-१८।।

आकाशं वामकर्णेनयुतं विन्दुतः पुनः ।
चतुर्थबीजमाख्यातं त्रैलोक्येवशकारणम् ।।१९।।
स्वाहान्तश्च त्र्योविंशाक्षरोयं मंत्रराजकः ।
स्वाहाविनैक विंशत्यक्षरः कामदोमनुः ।।२०।।
विंशत्यर्णामहाविद्या स्वाहा प्रणव वर्जिता ।
ध्यानपूजादिकं सर्वदक्षिणावदुपाचरेत् ।।२१।।

वामकर्ण ऊ से युत बिन्दु सहित आकाश (ह) चतुर्थ बीज कहा गया है जो तीनों लोकों को वशीभूत करने वाला है।

स्वाहा से युक्त यही तेईस अक्षरों वाला मन्त्रराज हो जाता है। स्वाहा के बिना भी यह मन्त्र, इक्कीस वर्णों वाला, सभी कामनाओं को पूरा करने वाला है। यही **ॐकार** एवं **स्वाहा** से वर्जित हो, बीस अक्षरों वाला मन्त्र बन जाता है जो महाविद्या कहा गया है। इन सबकी साधना में ध्यान-पूजा-न्यासादि सब कुछ दक्षिणाकालिका की भाँति ही करनी चाहिए।।१९-२१।।

बीसाक्षरी (महाविद्या)–**ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं।**

इक्कीसाक्षरी– **ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं।**

बाईसाक्षरी– ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

तेईसाक्षरी– ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

अथ वक्ष्ये महाविद्यांसर्वविद्योत्तमोत्तमाम्।
ईश्वरेण पुरा प्रोक्तां देवीहृदयसंस्थिताम्।
यस्या ज्ञान प्रभावेन कलयाभिजगत्त्रयम्।।२२।।

अब मैं उस महाविद्या को कहता हूँ जो सभी विद्याओं में भी उत्तम विद्या है। जो प्राचीन काल में शिव द्वारा कही गई है और जो देवी के हृदय में प्रियवरस्थित है, जिसके ज्ञान के प्रभाव से ही तीनों लोकों का अस्तित्व है।।२२।।

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य हृल्लेखाबीजमुच्चरेत्।
रति बीजं समुद्धृत्य प पंचमं भगान्वितम्।
ठ द्वयेन समायुक्ता विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता।।२३।।

पहले प्रणव **ॐकार** का उच्चारण कर हृल्लेखा (ह्रीं) का उच्चारण करे तब रतिबीज (क्रीं) प कार से पाँचवें वर्ण (म) जो भग (ए) से युक्त हो वह, ठद्वय **स्वाहा** से युक्त हो। विद्याराज्ञी **ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा** कहा जाता है।।२३।।

अनया सदृशी विद्या कालीतंत्रेषु दुर्लभा।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः विराट्छन्दउदाहृतम्।।२४।।
सिद्धिकाली ब्रह्मरूपा देवता भुवनेश्वरी।
रतिर्बीजमस्या हृल्लेखाशक्तिरुच्यते।।२५।।

इसके समान विद्या कालीतन्त्रों में दुर्लभ है। **भैरव** इसके **ऋषि** तथा **विराट्** इसका **छंद** कहा गया है। ब्रह्मरूपवाली, भुवनेश्वरी, **सिद्धि-काली** इसकी **देवता,** रतिबीज (क्रीं) बीज एवं हृल्लेखा (ह्रीं) शक्ति कही जाती है।।२४-२५।।

हृल्लेखाषड्दीर्घार्णाढ्यं प्रणवाद्येन कल्पयेत्।
अंगषट्कं ततोन्यस्य ध्यात्वा देवीं शिवो भवेत्।।२६।।

जो हृल्लेखा छः दीर्घवर्णों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) के पहले प्रणव (**ॐकार**) लगाकर षडंगन्यास करे। तत्पश्चात् देवी का ध्यान करने से साधक स्वयं शिवस्वरूप हो जाता है।।२६।।

*** ध्यान ***

खड्गोद्भिन्नेन्दु बिम्बामृतरसाप्लावितांगी त्रिनेत्रा।
सव्येपाणौ कपाला कुलामृतमथो मुक्तकेशी पिबन्ती।।
दिग्वस्त्रा बद्धकांची मणिमयमुकुटाद्यैर्युतादीप्तजिह्वा।
पायान्नीलोत्पलाभारविशशिविलसत्कुंडलालीढपादा ।।२७।।

देवी कालिका, स्वयं तीन नेत्रों वाली हैं। उनके हाथ में स्थित खड्ग पर स्थित चन्द्रबिम्ब से उत्पन्न अमृतरस से उनके अंग प्लावित हैं। वे अपने दाहिने हाथ में स्थित कपालपात्र में पूरित कुलामृत का पान कर रही हैं। उनके केश खुले हुए हैं। वे दिगम्बरा हैं। उन्होंने कमर में कांची तथा शिर पर मणिमयमुकुट धारण किया है, उनकी जिह्वा, प्रज्ज्वलित हो रही है अर्थात् लपलपा रही है। वे नीले कमल के समान आभावाली हैं। सूर्य एवं चन्द्रमा उनके कुण्डल के रूप में सुशोभित हो रहे हैं। वे आलीढ़पाद अर्थात् दाहिने पैर को आगे बढ़ा, बायें से झुकी हुई हैं। ऐसी देवी मेरी रक्षा करें।।२७।।

जपेद्यद्विंस साहस्त्रं सहस्त्रैकेन संयुतम् ।
होमयेत्तद्दशांशेन मूलपुष्पेन मंत्रवित्त ।।२८।।

मन्त्रवेत्ता साधक उपर्युक्त मन्त्र का एक हजार के साथ बीस अर्थात् इक्कीसहजार जप करे और मूलपुष्प से उसका दशांश होम करे।।२८।।

त्रिकोणं कुण्डमासाद्य सिद्धिविद्याः शिवो भवेत् ।
पूजनं च प्रयोगं च दक्षिणवदुपाचरेत् ।।२९।।
एकाक्षर्या महाकाल्याः समानं सर्वमेव वा ।।३०।।

इस निमित्त त्रिकोणकुण्ड प्राप्तकर, सिद्धविद्या, कल्याणकारिणी हो जाती है। इस विद्या का पूजन और प्रयोग दक्षिणकालिका के समान करे अथवा महाकाली के एकाक्षरीमन्त्र की भाँति सबकुछ करे।।२९-३०।।

स्वतन्त्रतन्त्रेऽपि—स्वतन्त्रतन्त्र में भी कहा है।

श्मशानकालिकामन्त्रं शृणु सावहिता शिवे ।
वाणीं मायां ततो लक्ष्मीं कामबीजं ततः परम् ।।३१।।
कालिके सम्पुटत्वेन चतुष्कं बीजमालिरवेव ।
एकादशांर्णा देवेशि चतुवर्गफलप्रदा ।।३२।।

हे शिवे! अब तुम **श्मशानकालिका** के मन्त्र को सुनो—

वाणी (ऐं) माया (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं) तब कालिके लिख कर उसे इन्हीं चारों बीजों से सम्पुटित करने पर हे देवेशी! ग्यारह अक्षरों कीं,

चतुर्वग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) प्रदान करने वाली, श्मशानकालीविद्या– **ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिके क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं** बनती है।।३१-३२।।

ऋषिर्भृगुर्निचृच्छंदो श्मशानाद्या च कालिका ।
प्रीतये ऐं बीजशक्तिं कल्पयित्वा महेश्वरि ।
कीलकं कामबीजं तु शृणुपूजाविधिं प्रिये ।।३३।।

हे महेश्वरि! इस विद्या के ऋषि भृगु, निऋत् छन्द, श्मशान प्रारम्भ में है। ऐसी कालिका देवता, की प्रीति हेतु ऐं बीज, ह्रीं शक्ति की कल्पना करे। कामबीज क्लीं इसका कीलक है। हे प्रिये! अब इसकी पूजाविधि सुनो।।३३।।

चतुस्त्रिंशच्चततुर्धणौर्विद्यामन्त्रैः षडङ्गकम् ।
विन्यस्य ध्यानं कुर्वीत् कालिकायाःसमाहितः ।।३४।।

ऐं, ह्रीं, श्रीं, क्लीं इन चारों वर्णों से चार तथा कालिके इन तीन वर्णों से पाँचवें और **क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं** इन चारों से छठे अंग का इस प्रकार **ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, श्रींमध्यमाभ्यां वषट्, क्लीं अनामिकाभ्यां हुं, कालिके कनिष्ठाभ्यां वौषट्, क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं अस्त्राय फट्** ऐसा अङ्गन्यास तथा इसी से हृदयादिन्यास, सम्पन्न करके कालिकादेवी का समाहितचित्त से ध्यान करे।।३४।।

अथ श्यामाकालिकाध्यानम् (श्यामाकालिका का ध्यान)—

अंजनाद्रिनिभां देवीं श्मशानालयवासिनीम् ।
त्रिनेत्रां मुक्तकेशीं च शुष्कमांसातिभीषणाम् ।।३५।।
पिंगाक्षीं वामहस्तेन मद्यपूर्णकपालकम् ।
सद्यः छिन्नशिरो दक्ष हस्तेन दधतीं शिवाम् ।।३६।।
स्मितवक्त्रां सदा मांसचर्वण तत्परंपराम् ।
नानालंकारभूषाङ्गी नग्नां मत्तां सदाशिवेः ।।३७।।

श्मशानकाली देवी अञ्जन के पर्वत के समान आभावाली, श्मशानरूपी गृह में निवास करने वाली, लालनेत्रों तथा खुलेकेश वाली हैं। उनके शरीर का मांस मानों सूख गया है इसीलिए वे भयानक भी हैं। उनके नेत्र पीले हैं। उन्होंने अपने बायें हाथ में मद्य से भरा हुआ कपालपात्र धारण किया है तथा अपने दाहिने हाथ में शीघ्र कटा हुआ शिर धारण की हुई हैं। वे शिवा, कल्याणकारिणी हैं। उनका मुख मुस्कानयुक्त है तथा वे श्रेष्ठ देवी सदैव मांसचर्वण में तत्पर हैं। इसप्रकार वे श्रेष्ठ हैं। उनके अंग अनेक आभूषणों से सुशोभित हैं। वे नग्नशरीर वाली और आसवपान से सदैव मत्त हैं।।३५-३७।।

एवं ध्यात्वा यजद्देवीं श्मशानेषु विशेषतः ।
गृहे चापि गृहस्थश्च मत्स्यमांसै सभोजनैः ।
नग्नो भूत्वा महापूजां कुर्याद्रात्रौ समाहितः ।।३८।।

इसप्रकार से देवी का ध्यान करके उनका यजन-पूजन करे। यह कार्य विशेष रूप से श्मशान में करना चाहिए। यदि साधक गृहस्थ हो तो वह गृह में कर सकता है। इसमें रात्रि में मछली और मांसयुक्त भोजन (नैवेद्य) अर्पित कर, नग्न होकर साधक, रात्रि में समाहित चित्त से महापूजा करे।।३८।।

पद्मं चाष्टदलं वृत्तं तद्बाह्ये धरणीतलम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तम् मध्येमूलं समालिखेत् ।।३९।।

उक्त पूजन करते समय पहले अष्टदल कमल तब एक वृत्त उसके बाहर चार द्वारों से युक्त धरणीतल (भूपुर) बनाये। यन्त्र के मध्य में मूलमन्त्र भलीभाँति लिखे।।३९।।

दलाष्टकेषु देवेशि कवर्गाद्यष्टवर्गकम् ।
धरण्यां विलिखेदाद्यं चतुष्कं च तदा भवेत् ।।४०।।
ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं पूर्वादि उत्तरांतायां मध्ये देवीं प्रपूजयेत्।

हे देवेशि! अष्टदलकमल के आठों दलों में क्रमशः क वर्ग से प्रारम्भ कर आठ वर्गों को लिखे। तब पूर्व से प्रारम्भ कर उत्तरपर्यन्त दिशाओं के मध्य ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चतुष्क लिखकर, मध्य में देवी का पूजन करना चाहिए। इससे प्रथम चतुष्क सम्पन्न हो जाता है।।४०।।

ब्राह्मयाद्याः पूजयेन्मातृर्दलष्ट स्वर पूर्वतः ।
भैरवानासितांगाद्यान् धरण्यां पूजयेच्छिकं ।।४१।।

हे देवि! तत्पश्चात् अष्टदल कमल के अष्टदलों में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं तथा भूपुर की आठ शिराओं में आसितांगादि आठ भैरवों का पूजन करे।।४१।।

असितांगं रुरुं चंडं क्रोधमुन्मत्तभैरवम् ।
कपाली भीषणं चैव संहारं चाष्टमं यजेदिति ।।४२।।

भैरवपूजन क्रम में असितांग, रुरु, चंड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण, संहार इन आठ भैरवों का, आठों दिशाओं में यजन करे।।४२।।

भव लक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशेन होमयेत्।।४३।।

भव (ग्यारह) लाख मन्त्र जपे, तत्पश्चात् उसके दशांशमन्त्र से होम करे।।४३।।

अथ मन्त्रान्तरं–अब अन्य मन्त्र कहते हैं।

कामबीजं समालिख्य कालिकायै पदंवदेत् ।
नमोंतेन च देवेशि सप्तार्णो मनुरुत्तमः ।।४४।।

हे देवेशि! पहले कामबीज **क्लीं** तब **कालिकायै** शब्द और अन्त में **नमः** लिखने से **क्लीं कालिकायै नमः** यह उत्तम सप्ताक्षर मन्त्र बनता है।।४४।।

सर्वांगं कालिकादेवी तत्सर्वं पूर्ववत्तथा ।
श्रीगुरोः कृपया लब्ध्वा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।।४५।।

सर्वांग में कालिकादेवी का न्यास करे अन्यथा अन्य सब कुछ पूर्ववत् आचरण करे। ऐसा करने से श्रीगुरु की कृपा को प्राप्तकर, साधक को सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।।४५।।

अथ पंचदशी– अब पंचदशी के विषय में कहते हैं।

तदुक्तं तत्रैव–जो वहीं बताया है।

कामबीजत्रयं दत्वा कूर्चयुग्ममथोलिखेत् ।
लज्जायुग्मं समाभाष्यं संबोध्य पदे ततः ।
पश्चात् वह्नि प्रियायोज्या विद्या पंचदशाक्षरी ।।४६।।

पहले तीन कामबीज (**क्रीं क्रीं क्रीं**) लिखकर दो कूर्च (**हूँ हूँ**) तत्पश्चात् लज्जायुग्म (**ह्रीं ह्रीं**) कहकर सम्बोधनपद **श्मशानकालिके** और अन्त में **वह्निप्रिया** (स्वाहा) के योग से **क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं श्मशानकालिके स्वाहा** यह कालिका पंचदशाक्षरीमन्त्र बनता है। (श्मशान कालिका के स्थान पर किसी भी कालिका का सम्बोधन जो छः वर्णों का हो लिखा जा सकता है)।।४६।।

पूजनं च प्रयोगश्च दक्षिणावदुचरेत्–यहाँ पूजन और प्रयोग दक्षिणाकालिका की भाँति करना चाहिए।

अन्यत्रापि–अन्यथा भी कहा है।

वर्गाद्यं वह्नियुक्तं व्विधुरतिलिलितन्तत्रङ् कूर्चयुग्मं
लज्जाद्वन्द्वं च पश्चात्स्मितमुखी तदधष्ठद्वयं योजयित्वा।
मातर्ये ये जपन्ति स्मरहर महिले भावयं ते स्वरूपंते
लक्ष्मीलास्य लीलाकमलदलदृशः कामरूपा भवन्ति।।४७।।

हे स्मितमुखी! हे स्मरहर महिला! शिवा! हे माता! जो साधक अग्नि (रकार) परास्थित विधु (चन्द्रबिन्दु) और रति (ईकार) से युक्त

आद्यवर्ग **क** वर्ग के प्रथमाक्षर क का **क्रीं** रूप और उसके तीन गुना **क्रीं क्रीं क्रीं** तब कूर्चयुग्म **हूँ हूँ** और लज्जाद्वंद्व **ह्रीं ह्रीं** और अन्त में ठद्वय, **(स्वाहा)** का योग कर, आपके स्वरूप (सम्बोधन), दक्षिण कालिका आदि की भावना करते हुए, २२ अक्षर वाली विद्याराज्ञी का जप करते हैं, वे साधक लक्ष्मी के नृत्य-क्रीडा केन्द्र कमलदल की भाँति ही श्रीसम्पन्न हो, कामदेव के समान सुन्दररूप वाले हो जाते हैं॥४७॥

अनया सदृशी विद्या न भूता न भविष्यति ।
यामासाद्य शिवो ब्रह्मा शिवतत्त्वाद्युपेयुष ।।४८।।इति

इसके समान न तो कोई विद्या है और न भविष्य में होगी, जिसको प्राप्त कर शिव, ब्रह्मा आदि देवताओं ने शिवत्वादि अर्थात् अपने यथार्थ तत्त्व को प्राप्त किया है॥४८॥

कुलोड्डीशतन्त्रोक्तम्–कुलोड्डीशतन्त्र में कहा है।

शापस्तुद्वाविंशत्यक्षरी परो ज्ञेया–बाईसअक्षरीविद्या से अलग शापादि की विद्या, जानना चाहिए।

अन्यत्र प्रमाणभावात्तदुक्तं सिद्धविद्या सम्प्रदाये–अन्यत्र सिद्धविद्या सम्प्रदाय में प्रमाण के अभाव में कहा गया है।

द्वाविंशत्यक्षराविद्या क्षिप्रसिद्धिप्रदायतः ।
तेन जिह्वा महेशेन संवादे हरमहिलयोः ।।४९।।

बाइस अक्षरों वाली यह विद्या, महेश और हरमहिला (देवी) के संवाद में जिह्वा के योग के कारण शीघ्र सिद्धिप्रदान करने वाली होती है॥४९॥

महाविद्या पुटाकारः सम्बोधन प्रकल्पयेत् ।
एवं गुरु प्रसादेन सिद्धिर्भवति भैरवि ।।५०।।

इति श्रीराघवभट्ट विरचिते कालीतत्त्वे मन्त्रविधिर्नामविंशतितमतत्त्वम्॥२०॥

हे भैरव! महाविद्या सम्बोधन (देवीनाम) को बीजों से सम्पुटित करके उच्चारण करे। ऐसा करने से गुरुकृपा से वह सिद्ध हो जाती है॥५०॥

श्रीराघवभट्टविरचित कालीतत्त्व में विधिनाम नामक बीसवें तत्त्व की कल्याणी टीका सम्पूर्ण हुई॥२०॥



एकविंशतितमतत्त्वम्

*** विद्यामाहात्म्यम् ***

तदुक्तं कालीतन्त्रे—जो कालीतन्त्र में कहा है।

एवं समस्त विद्यानां राज्ञी स्तोतु न शक्यते ।
वक्त्रकोटिसहस्त्रैस्तु जिह्वाकोटि शतैरपि ।।१।।
सर्वसिद्धिप्रदा देवी अनिरुद्धासरस्वती ।
तस्मादस्या ज्ञानमात्रात्सिद्धयः संभवति हि ।।२।।

इसप्रकार (पूर्ववर्णित) विद्याराज्ञी की स्तुति हजारकरोड़ मुखों, सैकड़ोंजिह्वा से भी नहीं की जा सकती। देवी अनिरुद्धा सरस्वती, सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाली हैं। अतः इनके ज्ञानमात्र से ही सभी सिद्धियाँ संभव हो जाती हैं।।१-२।।

अनिरुद्धसरस्वत्याः ज्ञानमात्रेण साधकः ।
पांडित्वे च कवित्वे च वागीश समतां व्रजेत् ।।३।।

अनिरुद्धासरस्वती के ज्ञानमात्र से ही साधक, पांडित्य और कवित्व में बृहस्पति की समता को प्राप्त करता है।।३।।

तस्य पांडित्यवैदग्ध्यं विचित्रपदकल्पनम् ।
देवा अपि विलज्जंते किंपुनर्मानुषादयः ।।४।।

उसका पांडित्यवैदग्हय, और अद्भुत पद की अद्भुत कल्पना योजना देखकर देवतागण भी लज्जित हो जाते हैं तो मनुष्यों की क्या बात है।।४।।

आस्ति चेत्त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोस्ति चेत् ।
अनिरुद्धसरस्वत्यास्समो मन्त्रोस्ति चेत्तदा ।।५।।

यदि तुम्हारे समान नारी और मेरे समान पुरुष संभव हो तभी अनिरुद्धसरस्वती का मंत्र सम्भव है।।५।।

अस्या जपो ब्रह्मजपो ज्ञानमस्यात्मचिन्तनम् ।
योग संधारणात्सम्यक् ज्ञानमस्या नसंशयः ।।६।।

इसका जप ही ब्रह्म जप है, इसका ज्ञान ही आत्मचिन्तन है। योग संधारणा से ही सम्यकज्ञान होता है। इसमें कोई संशय नहीं है।।६।।

महापदि महामार्यां महाग्रहनिवारणे ।
महाभये महोत्पाते महाशोके महोत्सवे ।।७।।
महामोक्षे महासौख्ये महादारिद्र्यसंकटे ।
महारणे महाशून्ये महाज्ञाने महारणे ।।८।।

दुरध्वानि दुरावासे दुर्भिक्षे दुर्निमित्तके ।
संग संक्लेश संघाते स्मरणादेव नाशयेत् ।।९।।

महान् आपत्ति, महामारी, महान्ग्रहदोष, महान् भय, महान् उपद्रव, महान् शोक, महान् उत्सव, महान् मोक्ष, महान् सुख, महती दरिद्रता या महान् संकट, महायुद्ध, महान् अभाव, या महान् अज्ञान, महान् संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होने, दुर्गमरास्ते, दुर्गमनिवास, दुर्भिक्ष, दुर्निमित्तभयसंग, कष्ट, संघात की स्थितियों में इसके स्मरणमात्र से ही वे नष्ट हो जाते हैं। (तात्त्विक दृष्टि से उत्सवादि भी बन्धन ही हैं)।।७-९।।

अस्यज्ञानं समं ज्ञानं ध्यानमस्यात्मदर्शनम् ।
तस्माद्विद्या समविद्या नास्तितंत्रे नसंशयः ।।१०।।

इसके ज्ञान के समान ज्ञान, ध्यान के समान आत्मदर्शन, विद्या के समान कोई अन्य विद्या तन्त्र शास्त्र में नहीं हैं। इसमें कोई संशय नहीं है।।१०।।

श्मशानशयनेवीरः कुलस्त्रीभिर्विहारवान् ।
कुलामृतसेवी च काली तत्त्वार्थ कोविदः ।
ब्रह्मादि भुवने तस्य समोनास्ति न संशयः ।।११।।

जो वीरसाधक श्मशान में शयन करने में वीर (निर्भय) होता है, जो कुलनायिकाओं के साथ विहार करता है, जो कुलामृत का सेवन करता है, जो कालीतत्त्व के अर्थ का ज्ञाता है, ब्रह्मादि लोकों में भी कोई उसके समान नहीं होता है। इसमें किसीप्रकार का संशय नहीं है।।११।।

स एव सुकृती लोके स एव कुलभूषणः ।
धन्या च जननी तस्य येन देवी समर्चिता ।।१२।।
वक्त्रे सरस्वती तस्य लक्ष्मी तस्य सदागृहे ।
तीर्था देहे तिष्ठन्ति येन देवी समर्चिता ।।१३।।
गानेन तुम्बरु साक्षाद्दानेन कर्णसमोपमः ।
दत्तात्रेय समो ज्ञानी येन देवी समर्चिता ।।१४।।

जिस साधक के द्वारा देवी की भलीभाँति अर्चना की गई होती है वह साधक ही संसार में सुकृती, यशस्वी है, वही कुल का भूषण है। उसकी माता धन्य है। उसके मुख में सरस्वती का, घर में लक्ष्मी का सदैव वास रहता है। उसके शरीर में तीर्थ निवास करते हैं। वह गायन में साक्षात् तुम्बरु, दान में कर्ण की समता करने वाला, दत्तात्रेय के समान ज्ञानी होता है।।१२-१४।।

धनेस धननाथश्च वह्निरिवरिपोरपि ।
गंगेव मलनाशकः शुचौ शुचि समः साक्षात् ।।१५।।
इन्द्रेव सुखप्रदः पितृदेवसमः शास्ता ।
कालस्येव दुरासदः वारीश इव गम्भीरो ।।१६।।

निर्ऋतेरिवदुर्द्धरः बृहस्पतिसमोवक्ता ।
धरणीसदृशः क्षमी कन्दर्पसदृशः स्त्रीषु येन देवीसमर्चिता ।।१७।।

जिसके द्वारा देवी भलीभाँति पूजी जाती हैं, वह धन के स्वामित्व में धननाथ (कुबेर), शत्रु के प्रति अग्नि के समान विनाशक, गंगा की भाँति सबप्रकार का मल (दोष) नाश करने वाला, पवित्रता की दृष्टि से साक्षात् पवित्रता की मूर्त्ति, इन्द्र के समान सुख देने वाला, शासनकर्त्ताओं में पितृदेव (यम) के समान शासक, काल के समान दुर्जय, समुद्र के समान गम्भीर, निर्ऋति के समान दुर्धर, बृहस्पति के समान वक्ता, पृथ्वी के समान क्षमाशील तथा स्त्रियों के मध्य, कामदेव के समान मोहक होता है॥१५-१७॥

अहोभाग्यमहोलोके कुलज्ञानीपरायणः ।
तेषां मध्ये च यः कोपि कालीसाधनतत्परः ।।१८।।

जो कुलज्ञानियों की सेवा करता है उसका भाग्य और लोक (सांसारिक जीवन) दोनों ही धन्य हो जाता है। उनमें भी जो काली की साधना में तत्पर है वह परम धन्य है॥१८॥

त्यजसित्वं कदान्मां पुमांस परमं तथा ।
मादृशस्तुक्वचित्काले त्यजसि त्वं जगन्यये ।
कालिज्ञानिनमासाद्य न त्यजसि कदाचन ।।१९।।

हे जगन्मये शिवे! आप कभी मुझे छोड़ सकती हैं। परमपुरुष परमात्मा को छोड़ सकती हैं। आप मेरे जैसे योग्यतम साधकों को भी समय आने पर छोड़ देती हैं किन्तु कालीज्ञानियों (कालिकोपासकों) को प्राप्त आप, उन्हें कभी नहीं छोड़तीं॥१९॥

नहि काली समं फलं नहि काली समं तपः ।
ये गुणः परमेशस्य पंचकृत्व धायिनः ।
ते गुणाः संति सर्वज्ञे कालीतत्त्वस्यनान्यथा ।।२०।।

काली के समान न कोई फल है और न कोई तपस्या ही है। पंचकृत्व विधायी परमेश्वर के जो गुण बताये गये हैं, हे सर्वज्ञे (सब-कुछ जानने वाली)! वे सब गुण, विशेषताएँ कालीतत्त्व की ही हैं। इससे अलग नहीं॥२०॥

कालिकाहृदयज्ञानी लतासाधनतत्त्वरः ।
देववन्मानवोभूत्वा लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ।।२१।।

कालिका के हृदय (रहस्य) का ज्ञानी, लतासाधन में तत्पर, मनुष्य, देवता के समान होकर, चारोंप्रकार की मुक्ति को प्राप्त करता है॥२१॥

इति ते कथितं देवि कालिका तत्त्वमुत्तमम् ।
अनेन सम्यगास्थाय सदा कर्मफलं लभेत् ।।२२।।

हे देवि! यह तुमसे उत्तम कालिकातत्त्व कहा गया। इसमें सम्यग् रूप से स्थित होकर कर्मफलसिद्धि प्राप्त करना चाहिये है।।२२।।

श्रीदेव्युवाच–

भवान्प्रसीद देवेश सर्वप्राणिहितेरतः ।
येनावश्यं भवेत्सिद्धिरूपायं वदशंकर ।।२३।।

श्रीदेवी बोलीं–हे देवेश! आप सभी प्राणियों के हित में तत्पर रहते हैं। ऐसे कृपालु आप प्रसन्न हों। हे शंकर! जिस उपाय से अवश्य (निश्चित रूप से) सिद्धि प्राप्त हो, वह मुझसे बताइये।।२३।।

श्रीईश्वर उवाच–

शृणु देवि परंतत्त्वं सर्वज्ञानोत्तमोतमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण क्षिप्रं विद्या प्रसीदति ।।२४।।

श्रीईश्वरबोले–हे देवि! सभीज्ञानों में उत्तम से भी उत्तम, सर्वोत्तम, परंतत्त्व को सुनो। जिसके जानने मात्र से ही शीघ्र ही सभीप्रकार की विद्याएँ, प्रसन्न (सिद्ध) हो जाती हैं।।२४।।

मूले च धेनुकाशक्तिर्भुजगाकार रूपिणी ।
तद्भ्रमावृत्त यातोऽयं प्राणइत्युच्यतेबुधैः।।२५।।

मूल (मूलाधार) में सर्पाकार रूप में जो धेनुका (सिद्धिदायिनी कुण्डलिनी) शक्ति स्थित है, उसके भ्रमण की आवृत्ति ही विद्वानों द्वारा प्राणशक्ति कही जाती है।।२५।।

झिल्लिभिर्व्यक्तमधुराः कूजंति सर्वतोस्थिताः।
गच्छन्ती ब्रह्मरन्ध्रेण प्रविशंति स्वकेतनौ ।।२६।।

भेदन के पश्चात् वह झिल्लीझंकार से युक्त मधुरवाणी बोलती हुई सब ओर से उठकर ब्रह्मरन्ध्र से जाते हुए अपने परमधाम में प्रवेश करती है।।२६।।

यातां यातक्रमेणैव तत्र कुर्यान्मनोलयम् ।
तेन मंत्र शिखायाता सर्वमंत्रप्रदीपिका ।।२७।।

आवागमन के क्रम से ही विभिन्न चक्रों में मन का लय कराने से अन्त में मन, उस परमतत्त्व रूपी शिखर को प्राप्त करता है जो सभी मन्त्रों को जागृत करने वाला है।।२७।।

तमः पूर्णे गृहे तद्वन्न किंचित् प्रतिभारवेः ।
शिखा हीनास्तथा मंत्रान सिद्धयन्ति कदाचन् ।।२८।।

जिसप्रकार अन्धकार से भरे घर में सूर्य की कोई प्रतिमा (प्रभाव) नहीं दीखती, उसीप्रकार पूर्वोक्त शिखा के अभाव में मन्त्र कभी सिद्ध नहीं होता है।।२८।।

शिखोपदेश सर्वत्र गोपितः परमेश्वरि ।
विनायेन न सिद्धिःस्याद्वर्षकोटिशतैरपि ।।२९।।

हे परमेश्वरि! शिखा का उपदेश सर्वत्र सामान्यतः गोपनीय है तथा बिना इसका प्रयोग किये सौकरोड़ वर्षों तक साधना के बाद भी सिद्धि नहीं होती।।२९।।

तस्मात्त्वयापि गिरिजे गोपनीयः प्रयत्नतः ।
नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति न वा मित्रारिदूषणम् ।।३०।।

हे गिरिजा! इसलिए तुम्हें भी प्रयत्नपूर्वक इसे गोपनीय रखना चाहिए। इसमें न तो सिद्ध आदि मन्त्र की विशेषताओं की अपेक्षा होती है एवं न मित्र-शत्रु आदि दोषों का विचार ही होता है।।३०।।

सर्वं एव शुभः कालो नाऽशुभो विद्यते क्वचित् ।।३१।।

शिखायुक्त जप के लिए सभी समय शुभ है। कहीं भी अशुभ नहीं होता।।३१।।

अत्रादि शब्देन शयन निद्रदितादि दोषाभावो ग्राह्यः–यहाँ सिद्धादि में प्रयुक्त आदि शब्द से शयननिदित आदि दोषों का भाव ग्रहण करना चाहिए।

अतएवांतिशाचारेत्यादिक मंत्रायास्तमिति–इसलिए यहाँ अतिशाचार आदि के मन्त्र अस्त निरुद्देश्य हैं।

कुलपथि कुलतंत्रे गुप्तभावैकभाजा
गुरुभजनपरेण श्रीमतराघवेण ।
विविधविधिगरिष्टं पुस्तकं गंडपस्तं
प्रकटकुलमकारि प्रीतये कौलिकानाम् ।।३२।।

राघवभट्टकथन–जिसने विविध प्रकार के पुस्तकों को अपने गण्डस्थल (मस्तिष्क) में स्थापित कर लिया है, ऐसे ख्यात् भट्ट कुल में उत्पन्न, कुलमार्गानुयायी, श्रेष्ठ, कौलतन्त्रों में गुप्त को भावों (रहस्यों) को धारण किये हुए, गुरुभजन (गुरु की सेवा) में रत श्रीराघवभट्ट के द्वारा कौलिकसाधकों की प्रसन्नता के लिये इस तन्त्र की रचना की गई है।।३२।।

कल्मषध्वंसि विध्वंसि वंदे धामेन्दुशेखरम् ।
श्रीयुत राघवेणज्यो वक्ष्याराद्यं त्रिमूर्तिमत् ।।३३।।

इति श्रीराघवभट्टविरचिते कालीतत्त्वे विद्यामाहात्म्यनाम एकविंशतितमतत्त्वम्।।२१।।

श्रीयुत् राघवभट्ट के द्वारा पूज्य दर्शनीय, प्रारम्भिक त्रिमूर्ति के समान कल्मष दोषों को न केवल ध्वस्त करने अपितु विशेष रूप से नष्ट करने वाले इन्दुशेखरशिव का जो धाम अर्थात् विश्वेश्वरपुरी काशी है, मैं उसकी वन्दना करता हूँ।।३३।।

श्री दक्षिणकालिकादेवी की कृपा से श्रीमद्राघवभट्टविरचित कालीतत्त्व में विद्यामाहात्म्य नामक इक्कीसवें तत्त्व की कल्याणी (हिन्दी) टीका सम्पूर्ण हुई।।२१।।



परिशिष्ट

अथ श्रीकालिकाखड्गमालाविधानम्

* विनियोगमन्त्र *

ॐ अस्य श्री दक्षिणकालिकाखड्गमालामन्त्रस्य श्रीभगवान् महाकालभैरव ऋषिः उष्णिक् छन्दः शुद्ध ककार त्रिपंच भट्टारकपीठस्थित महाकालेश्वराङ्कनिलया महाकालेश्वरी त्रिगुणात्मिका श्रीमद् दक्षिणकालिका महाभयहारिका देवता क्रीं बीजं, ह्रीं शक्तिः, हूं कीलकं मम सर्वाभीष्ट सिद्ध्यर्थे खड़गमालामन्त्र जपे विनियोगः।

* प्रथमावरण *

यन्त्र के मध्य में बिन्दु पर—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्रीमद् दक्षिणकालिका-खड़ग-मुण्ड-वराभयकरा महाकालभैरव सहिता श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री हृदयदेवी सिद्धिकालिकामयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री शिरोदेवी महाकालिकामयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री शिखादेवी गुह्यकालिकामयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।४।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री कवचदेवी श्मशानकालिकामयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।५।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री नेत्रदेवी भद्रकालिकामयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।६।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री अस्त्रदेवी श्रीमद्दक्षिणकालिका-मयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।७।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं सर्वसम्पत्प्रदायक-चक्रस्वामिनी नमस्ते नमस्ते स्वाहा ।।८।।

उपरोक्त आठवें मन्त्र पर अभिवादन करते हुए यन्त्र के केन्द्र बिन्दु पर देवी को प्रणाम करे।

* द्वितीयावरण *

अब बिन्दु की चारों दिशाओं में निम्नलिखित मन्त्रों से पूजा करें—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं जयासिद्धिमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रींअपराजितासिद्धिमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं नित्यसिद्धिमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं अघोरसिद्धिमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।४।।

अब हाथ जोड़कर निम्नलिखित मन्त्र से यन्त्र में प्रणाम करें—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं सर्वमङ्गलमयी-
चक्रस्वामिनी नमस्ते नमस्ते स्वाहा ।

* तृतीयावरण *

अब यन्त्र के बिन्दु की बायीं तरफ प्रथमपंक्ति में निम्नलिखित मन्त्र से श्री गुरुदेव की पूजा करें—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री गुरुमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री परमगुरुमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री परात्परगुरुमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री परमेष्ठिगुरुमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।४।।

दोनों हाथ जोड़कर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ें और प्रणाम करें—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं सर्वसम्पत्प्रदायक-
चक्रस्वामिनी नमस्ते नमस्ते स्वाहा ।

*** चतुर्थावरण ***

इससे आगे द्वितीयपंक्ति में निम्नलिखित मन्त्रों से पूजा करें।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं महादेव्यम्बामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री महादेवानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री त्रिपुराम्बामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री त्रिपुरभैरवानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।४।।

इसीप्रकार तृतीयपंक्ति में निम्नलिखित मन्त्रों से पूजा करें।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री ब्रह्मानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री कुशलानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री भीमसुरानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री सुधाकरानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री मीनानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री गोरक्षानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री भोजदेवानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री देवानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।८।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री प्रजापत्यानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।९।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री मूल देवानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१०।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री रन्तिदेवानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।११।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री विघ्नेश्वरानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्रीहुताशनानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्रीसमरानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्रीसन्तोषानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१५।।

अब करबद्ध होकर निम्नलिखित मन्त्र से प्रणाम निवेदन करें।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री सर्वसम्पत्प्रदायक-
चक्रस्वामिनी नमस्ते नमस्ते स्वाहा ।।

* पञ्चमावरण *

इस आवरण की पूजा पाँचों त्रिकोणों के तीनों रेखाओं पर करते हुए प्रत्येक त्रिकोण में जायेंगे जैसा कि आगे वर्णन है—

* प्रथमत्रिकोण *

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री कालीदेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री कपालिनीदेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री कुल्लादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।

* द्वितीयत्रिकोण *

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री कुरूकुल्लादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री विरोधिनीदेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री विप्रचित्तादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।

* तृतीयत्रिकोण *

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री उग्रादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री उग्रप्रभादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री दीप्तादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।

* चतुर्थत्रिकोण *

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री नीलादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री घनादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री बलाकादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।

* पञ्चमत्रिकोण *

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री मात्रादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री मुद्रादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री मितादेवी नित्यामयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।

इसके बाद दोनों हाथ जोड़कर पूर्ण सम्मानयुक्त निम्नलिखित मन्त्र बोलकर प्रणाम करें।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री सर्वेप्सितफलप्रदायक-
चक्रस्वामिनी नमस्ते नमस्ते स्वाहा ।।

* षष्ठावरण *

त्रिकोणों से बाहर एक वृत्त हैं जिसमें आठ कमलदल बने हुए हैं। यहाँ पर प्रत्येक दल में निम्नलिखित मन्त्रों से पूजा करें—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री ब्राह्मीदेवीमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री नारायणीदेवीमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री माहेश्वरीदेवीमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री चामुण्डादेवीमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री कौमारीदेवीमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ श्री अपराजिता देवीमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री वाराहीदेवीमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री नारसिंहीदेवीमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।८।।

अब फिर करबद्ध होकर निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ करके यन्त्र में प्रणाम करें।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री त्रैलोक्यमोहन-
चक्रस्वामिनी नमस्ते नमस्ते स्वाहा ।

*** सप्तमावरण ***

आपने जिन कमलदलों में उपरोक्त पूजा की थी वहीं पर कमलदलों के मध्यभाग में निम्नलिखित मन्त्रों से अष्टभैरवों की पूजा करें—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री असिताङ्गभैरवमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्रीं रुरुभैरवमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री चण्डभैरवमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री क्रोधभैरवमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री उन्मत्तभैरवमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री कपालीभैरवमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री भीषणभैरवमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री संहारभैरवमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।८।।

निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर प्रणाम करें—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री सर्वार्थदायक-
चक्रस्वामिनी नमस्ते नमस्ते स्वाहा ।।

* अष्टमावरण *

पूर्वोक्त पूजन की भाँति यह पूजा होगी परन्तु स्थान होगा कमल दल के अग्रभाग पर—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री हेतु बटुकानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री त्रिपुरान्तकबटुकानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री बेताल बटुकानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री वह्नि जिह्वबटुकानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री काल बटुकानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ श्री कराल बटुकानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि. नमः तर्पयामि स्वाहा ।।६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री एक पादबटुकानन्दनाथमयी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।७।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री भीमबटुकानन्दनाथमयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।८।।

पूर्वनमस्कारों की भाँति ही इसबार भी निम्नलिखित मन्त्र को पढ़कर यन्त्र में प्रणाम करें।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री सर्वसौभाग्यदायक-चक्रस्वामिनी नमस्ते नमस्ते स्वाहा ।।

* नवमावरण *

इसबार अष्टदलों के बाहर निम्नलिखितमन्त्रों से आठयोगनियों की पूजा करें।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं हूँ फट् स्वाहा सिंहव्याघ्रमुखीयोगिनी-देवीमयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं हूँ फट् स्वाहा सर्पाखुमुखीयोगिनी-देवीमयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं हूँ फट् स्वाहा मृगमेषमुखीयोगिनी-देवीमयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं हूँ फट् स्वाहा गजबाजिमुखीयोगिनी-देवीमयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।४।।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं हूँ फट् स्वाहा क्रोष्टाखुमुखीयोगिनीङ-देवीमयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।५।।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं हूँ फट् स्वाहा लम्बोदरीयोगिनी-देवीमयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।६।।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं हूँ फट् स्वाहा ह्रस्वजंघायोगिनी-देवीमयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।७।।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं हूँ फट् स्वाहा तालजंघाप्रलम्बोष्ठीयोगिनी-देवीमयी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।८।।

पूर्वोक्त नमस्कार की भाँति ही इसबार भी निम्नलिखित मन्त्र को पढ़कर प्रणाम करें।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं हूँ फट् स्वाहा सर्वार्थदायक-चक्रस्वामिनी नमस्ते नमस्ते स्वाहा ।।

*** दशमावरण ***

यन्त्र के भूपूर (चौकोर) में पूर्वादि दिशा से क्रमशः दिक्पालों को तथा उनके अस्त्रों की निम्नलिखित मन्त्रों से पूजा करें—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं इन्द्रमयीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं अग्निमयीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।२।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं यममयीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।३।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं निर्ऋृतिमयीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।४।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं वरूणमयीदेवी श्रीपादुकां पजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।५।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं वायुमयीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।६।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं कुबेरमयीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।७।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं ईशानमयीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।८।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं ब्रह्मामयीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।९।।

निर्ऋृति और वरुण के मध्य में निम्नलिखित मन्त्र से पूजा करें।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं अनन्तमयीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा ।।१०।।

अब अस्त्र पूजा करें—

इस पूजा के निम्नलिखित मन्त्र हैं।

ॐ वज्रायै नमः।।१।। ॐ शक्तयै नमः।।२।। ॐ दण्डायै नमः।।३।। ॐ खड्गायै नमः।।४।। ॐ पाशायै नमः।।५।। ॐ अंकुशायै नमः।।६।। ॐ गदायै नमः।।७।। ॐ त्रिशूलायै नमः।।८।। ॐ पद्मायै नमः।।९।।

ईशान और इन्द्र के मध्य निम्नलिखित मन्त्र से अस्त्रपूजा होगी।

ॐ चक्रायै नमः।।१०।।

* एकादशावरण *

यन्त्र के मध्य में स्थित बिन्दु पर देवी के अस्त्रों की पूजा निम्नलिखित मन्त्रों से करें।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं खड़गमयीदेवी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं मुण्डमयीदेवी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं वरमयीदेवी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामी स्वाहा।।३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं अभयमयीदेवी
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।।४।।

अब करबद्ध होकर निम्नलिखित मन्त्र से देवी को प्रणाम करें।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हूँ ह्रीं श्री सर्वसंक्षोभण-
चक्रस्वामिनी नमस्ते नमस्ते स्वाहा।।

इस भाँति से यन्त्र पूजन सम्पन्न होता है। अब समापन करने के लिए पुष्पादि हाथों में लेकर निम्नलिखित पंक्तियाँ बोलें फिर प्रणाम करें।

चतुरस्त्राद् बहिः सम्यक् संस्थिताश्च समन्ततः।
ते च सम्पूजिताः सन्तु देवाः देवि गृहे स्थिताः।।
सिद्धाः साध्या भैरवाः गन्धर्वाश्च वसवोऽश्विनो।
मुनयो ग्रहा तुष्यन्तु विश्वेदेवाश्च उष्मयाः।।
रुद्रादित्याश्च पितरः पन्नगः यक्षचारणाः।
योगेश्वरोपासका ये तुष्यन्ति नरकिन्नराः।।
नागा वा दानवेन्द्राश्च भूत-प्रेत-पिशाचकाः।
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणी मन्त्रयन्त्रार्चनक्रियाः।।
शान्तिं कुरु महामाये सर्वसिद्धिप्रदायिके।
सर्वसिद्धिचक्रस्वामिनी नमस्ते नमस्ते स्वाहा।।
सर्वज्ञे सर्वशक्ते सर्वार्थप्रदे शिवे।
सर्वमङ्गल मये सर्वव्याधि विनाशिनी।।

सर्वाधार स्वरूपे सर्वमङ्गलदायक ।
चक्रस्वामिनी! नमस्ते नमस्ते स्वाहा ।।

क्रीं ह्रीं हूँ क्ष्यीं महाकालाय, हौं महादेवाय, क्रीं कालिकायै, हौं महादेव महाकाल सर्वसिद्धिप्रदायकदेवी भगवती चण्डचण्डिका चण्डचितात्मा प्रीणातु दक्षिणकालिकायै सर्वज्ञे सर्वशाक्ते श्री महाकाल सहिते श्री दक्षिण कालिकायै नमस्ते स्वाहा।।

✸

अष्टगन्धवर्णनम्

शक्ति अष्टगन्ध

चन्दनागुरुकर्पूर चोर कुंकुमरोचनाः ।
जटामांसी कपियुताशक्ते गन्धाष्टकं विदुः ।।१।।

चन्दन, अगुरु, कपूर, कुंकुम, गोरोचन, जटामांसी कपि (लोबान), चोर (गुग्गुल) इन आठों को शक्तिअष्टगंध जानते हैं।।१।।

विष्णु अष्टगन्ध

चन्दनागरुह्रीवेर कुष्ठकुंकुम सेव्यकाः ।
जटामासी मुरामिति विष्णोर्गंधाष्टकं विदुः ।।२।।

चन्दन, अगुरू, कुष्ठ, कुंकुम, सेव्यका, जटामांसी, मुरा, ह्रीवरे इन आठ को विष्णुअष्टगंध जाने।।२।।

शिव अष्टगन्ध

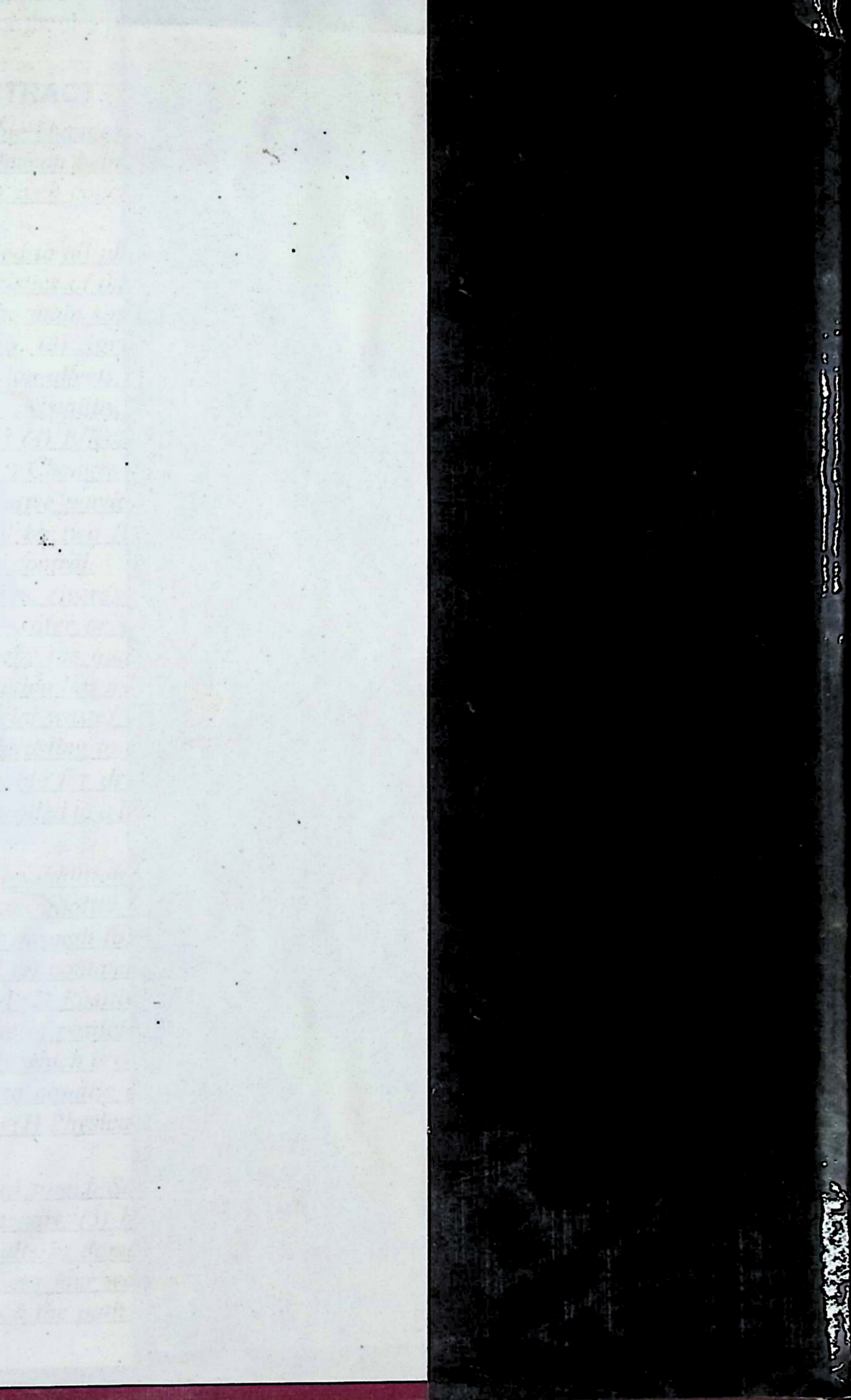
चन्दनागुरुकर्पूर तमाल जल कुंकुमं ।
कुशीत कुष्ठ संयुक्त शैवे गंधाष्टकम् विदुः ।।३।।

चन्दन, अगुरू, कपूर, कुंकुम, कुशीत, कुष्ठ, तमाल, जल, इन आठों के योग को शैवगंधाष्टक कहना चाहिए।।३।।

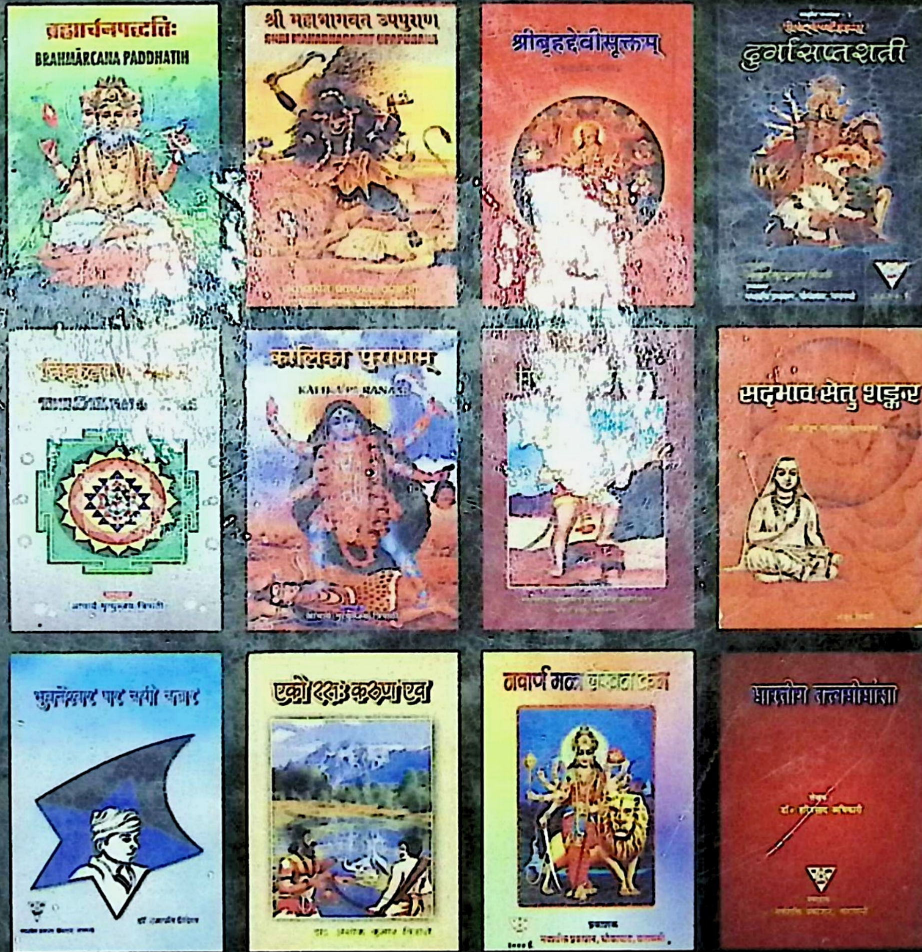
तारो द्विजानां वसुधाच राज्ञां विशां तथा श्रीरिति नामधेय ।
शूद्रस्य माया युवतेरनंगः पंचप्रकारं प्रणवं विधत्ते ।।४।।

द्विजों के लिए तार (ॐकार), राजाओं के लिए वसुधा (ह्रींकार), वैश्यों के लिए श्री (श्रींकार), शूद्रों के लिए माया (ह्रीं), युवतियों के लिए अनंग (क्लीं) इन पाँच रूपों को प्रणव धारण करता है।।४।।





हमारे प्रकाशन





नवशक्ति प्रकाशन

चौकाघाट, वाराणसी

दूरभाष : 0542-2202237, 09956014704

मुद्रकः प्रभा प्रेस, चौकाघाट, वाराणसी, मो०: ९८३८९२६०९९